डॉ. टी. राजेश्वरानन्द शर्मा

हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप-विकास

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप-विकास

(तुलनात्मक अध्ययन)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्. उपाधि हेतु स्वीकृत शोधप्रबन्ध

लेखक

डॉ. टी. राजेश्वरानन्द शर्मा

एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (तेलुगु), डी. फिल्

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

प्रकाशक

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

प्रकाशक

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

लेखक

डॉ. टी. राजेश्वरानन्द शर्मा

प्रथम संस्करण, 1986

मूल्य .

मुद्रक

किरण प्रिन्टर्स

5-2-674, रिसाला अब्दुल्ला

(नया उस्मानगंज)

हैदराबाद–500 195.

प्रस्तावना

'हिन्दी और तेलुगु में महाकाव्य का स्वरूप-विकास' इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की डी. फिल. उपाधि के लिए स्वीकृत मेरे शोध-प्रबन्ध का संशोधित रूप है। इस ग्रन्थ मे भारत की दो प्रमुख भाषाओं मे समानान्तर रूप मे विकसित एक विशिष्ट काव्य-विधा का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वास्तव मे युग-युग के विदेशी आक्रमण, भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायो का प्रचार-प्रसार और विविध भाषाओं के प्रचलन के बावजूद भारत का जनमानस एक है। भारत की सास्कृतिक एकता के आधारतत्व धर्म मे दर्शन मे, जीवन मे चिन्तन मे, और काव्य मे कला मे सुरक्षित है। इन आधार तत्वो का अन्वेषण राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाने के पावन कार्य मे महत्त्व रखता है। इस दिशा मे उक्त दोनो भाषाओं के साहित्यो का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। जैसे ललित कलाओं मे साहित्य का प्रमुख स्थान है, वैसे ही साहित्य की अनेक विधाओ के बीच महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। इसी कारण उक्त भाषा-साहित्यो मे महा-काव्य का स्वरूप-विकास प्रस्तुत अध्ययन का विषय बना है।

तेलुगु मे महाभारत का प्रणयन ईसा की ग्यारहवी शताब्दी मे आरभ हुआ और इससे पहले रचित साहित्य अब उपलब्ध नही होता। इस कृति की कतिपय रचना-पद्धतियाँ तेलुगु महाकाव्यो मे गृहीत हुई हैं। हिन्दी साहित्य मे महाकाव्य इस काल-सीमा के बाद ही रचित हुए हैं। अत प्रस्तुत अध्ययन की पूर्ववर्ती सीमा तेलुगु के आदिकवि नन्नयभट्ट का समय है। तब से अद्यावधि परिस्थिति-सापेक्ष रूप मे महाकाव्य के स्वरूप मे विकास होता रहा है। आधुनिक युग मे पाश्चात्य शिक्षा-सस्कारो का प्रभाव, स्वतन्त्रता-आन्दोलन आदि परिस्थितियो के कारण भारतीयों के जीवन-क्षितिज का विस्तार हुआ और नये मूल्यो के प्रति नयनोन्मेष सभव हुआ। फलत भारतीय साहित्य मे नई-नई काव्य-विधाएँ दृष्टिगत होने लगी और पुरानी काव्य-विधाओ का नवीन रूप सामने आया। हिन्दी और तेलुगु मे उन्नीसवी शताब्दी के चतुर्थ चरण के आरभ तक आधुनिक युग अवतरित हुआ। किन्तु बीसवी शताब्दी मे ही महाकाव्य का आधुनिक रूप स्पष्टतः लक्षित होता है। अत. प्रस्तुत अध्ययन की परवर्ती सीमा के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी को ग्रहण किया गया है।

प्रस्तुत शोधप्रबंध में संस्कृत के आलंकारिकों के द्वारा निरूपित महाकाव्य-लक्षण का विवेचन तो किया ही गया है। पाश्चात्य धारणाओं की किंचित् मीमांसा चिरन्तन मूल्यों के देशकाल-निरपेक्ष होने की दृष्टि से की गयी है। मुख्य रूप से आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में दृष्टिगत विशेषताओं और प्रवृत्तियों के आधार पर इस काव्य-रूप को व्याख्यायित करने का प्रयत्न हुआ है। महाकाव्य-रचना की प्रेरक राजनैतिक धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए भिन्न भाषा क्षेत्रों की दृष्टि से वातावरणगत साम्य एवं अन्तर को उजागर करने का प्रयास किया गया है। उभय क्षेत्रों में लब्धप्रतिष्ठ तथा महाकाव्य-संज्ञा के अधिकारी प्रमुख प्रबन्धकाव्यों को प्रतिनिधि रूप में माध्यम बनाकर इस काव्य-विधा के स्वरूप-विकास का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है। तुलना के लिए वस्तु-योजना, चरित्रचित्रण, रसव्यंजना, अलंकार-विधान, छन्दविधान और भाषा-प्रयोग के आधार गृहीत हुए हैं। साथ ही रस, अलंकार, छन्द आदि के विषय में उक्त साहित्यों में प्रचलित दृष्टि की भी मीमांसा की गई है। अन्त में इस अध्ययन की उपलब्धि को निष्कर्ष रूप में प्रतिपादित करके विषय का समापन किया गया है।

इस अध्ययन के दौरान आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों में कतिपय समानताएँ मुझे दृष्टिगत हुईं। भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता के अन्वेषण में मेरे इस नम्र प्रयास का भी स्थान रहे, यह आकांक्षा स्वाभाविक है। भिन्नताओं को भी मैंने अनुभव किया है। एक क्षेत्र में किसी विशिष्ट महाकाव्य-प्रकार का आधिक्य और दूसरे क्षेत्र में उस प्रकार का एकदम अभाव, सोचने के लिए बाध्य करनेवाला तथ्य है। ऐसे स्थानों पर मैंने कार्यकारण सम्बन्ध की व्याख्या की चेष्टा की है। साहित्य-शोध में मतभेद के लिए हमेशा अवकाश है। विद्वान पाठक महोदयों से निवेदन है कि वे इन व्याख्याओं को सहृदयता से ग्रहण करें।

प्रस्तुत शोध-विषय के प्रति श्रद्धेय गुरुवर आचार्य एस. टी. नरसिंहाचारी ने मेरे मन में रुचि जागृत की थी। प्रबन्ध का लेखन आदरणीय प्रोफेसर रघुवंश के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। सम्माननीय डॉक्टर साहब की प्रखर आलोचना दृष्टि एवं सहृदयता से मैं विशेष प्रभावित हूँ। उन्होंने समय समय पर सत्परामर्शों से मुझे अनुगृहीत किया। इस शोधकार्य के समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष मित्रवर प्रो. बी. वी. सूर्यनारायण ने तेलुगु साहित्य के विषय में अमूल्य सुझाव देकर बड़ी सहायता की। डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. हरदेव बाहरी तथा डॉ. राजेन्द्र कुमार वर्मा से मुझे प्रेरणा, प्रोत्साहन और पुस्तकादि की सहायता मिलती रही। एतदर्थ इन सब विद्वानों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की आर्थिक सहायता श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के माध्यम से प्राप्त हुई है। इसलिए आयोग तथा विश्वविद्यालय के अधिकारियों का आभारी हूँ। अन्त में मैं उन सभी के प्रति, विशेष रूप से सहृदय-शिरोमणि प्रोफेसर भीमसेन निर्मल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके सद्भाव से यह शोधप्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है।

तिरुपति
5-7-1985

टी॰ राजेश्वरानन्द शर्मा

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

महाकाव्य का स्वरूप

भारतीय एव पाश्चात्य अवधारणा मे विभिन्न काव्यविधाओ के बीच महाकाव्य को प्रमुख स्थान प्राप्त है। दृश्यकाव्यो मे नाटक को एव श्रव्यकाव्यो मे महाकाव्य को रचनाकार की कलात्मक प्रतिभा की चरम परिणति की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण स्थान मिला है। सस्कृत के आदि महाकाव्य रामायण से लेकर अब तक लिखित विभिन्न भारतीय महाकाव्यों की लम्बी परम्परा ही यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि महाकाव्य-सृजन को कवि एव प्रमाता अत्यन्त महत्व देते आये है। मुक्तक रचनाओ की अपेक्षा महाकाव्य या 'सर्गबन्ध' को श्रेष्ठ दो आधारो पर माना गया है, यथा—(1) मुक्तक के सीमित कलेवर मे रस-परिपाक के सभी अगो—विभावादि की सम्यक् योजना सम्भव नही। महाकाव्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है, जिसमे मुक्तको का अन्तर्भाव हो जाता है। विभिन्न पात्रो की चरित्रगत विशेषताओं को विकसित एव स्पष्ट करने के लिए कतिपय प्रसगो की योजना, कथा के प्रसगो के माध्यम से रमणीक प्रकृति-वर्णनो के लिए अवकाश निकालना, किसी एक जाति के जीवन के भव्य आदर्शो का रसमय प्रतिपादन, उपक्रम एव उपसहार से युक्त तथा मार्मिक प्रसगो से अलकृत कथानक का सुन्दर निर्वाह आदि, महाकाव्य अर्थात् निबद्ध काव्य रूप मे ही सम्पन्न हो सकते है, अनिबद्ध काव्यो मे यह सम्भव नहीं होता।

(2) इसके अतिरिक्त कवि की प्रतिभा मुक्तको की रचना से आरम्भ होकर निबद्ध काव्य के रूप मे परिणत हो जाती है। निबद्ध काव्य के—महाकाव्य एव खण्डकाव्य—इन दोनो रूपो मे विस्तृति के आधार पर महाकाव्य ही उत्तम है।

मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध के महत्त्व का प्रतिपादन करनेवाले प्रमुख आचार्यो के मतों का अवलोकन करना यहाँ पर समीचीन होगा।

आचार्य वामन के अनुसार असकलित (मुक्तक) काव्यों मे चारुता नही आती, जैसे अग्नि के अलग-अलग परमाणु प्रकाशित नही होते है। जिस प्रकार अग्नि के परमाणु मिलकर ही प्रकाशित होते है, उसी प्रकार प्रबन्धकाव्य ही शोभित होते है, मुक्तक नही। इसके अतिरिक्त माला और मौर के समान अनिबद्ध और निबद्ध काव्यो की सिद्धि क्रमश. होती है।[1] कहने का यही अभिप्राय है कि जिस प्रकार माला गूँथने के बाद ही मुकुट गूँथना सम्भव है,

---

1 'हिन्दी काव्यालङ्कार सूत्र'. पृष्ठ 59

उसी प्रकार मुक्तक-रचना मे सिद्धि प्राप्त करने के उपरान्त ही प्रबन्ध-रचना मे सफलता मिलती है।

आचार्य कुन्तक के अनुसार भी प्रबन्ध काव्य का श्रेष्ठतम रूप है। कुन्तक ने प्रबन्धकाव्य को महाकवियो का कीर्तिकन्द अर्थात् यश का मूल आधार माना है।

'प्रबन्धेषु कवीन्द्राणां कीर्तिकन्देषु किं पुन'[1]

हिन्दी के समीक्षकों मे आचार्यप्रवर पण्डित रामचन्द्र शुक्ल मुक्तककार की प्रतिभा की तुलना मे प्रबन्धकार की प्रतिभा को ही श्रेष्ठ मानते थे। इस सम्बन्ध मे उनकी 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका एव 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे अभिव्यक्त मत द्रष्टव्य हैं, जो निम्नाकित है—

"यदि कोई इसके विचार का आग्रह करे कि प्रबन्ध और मुक्तक इन दोनो क्षेत्रो मे कौन क्षेत्र अधिक महत्व का है, किस क्षेत्र मे कवि की सहृदयता और भावुकता की पूर्ण परख हो सकती है तो हम बार-बार यही कहेगे जो गोस्वामी जी की आलोचना मे कह आये हैं, अर्थात् प्रबन्ध के भीतर आयी हुई मानव जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओ के साथ जो अपने हृदय का पूर्ण सामजस्य दिखा सके, वही पूरा और सच्चा कवि है। प्रबन्ध क्षेत्र में तुलसीदास जी का जो सर्वोच्च आसन है, उसका कारण यह है कि वीरता, प्रेम आदि, जीवन का कोई एक ही पक्ष न लेकर उन्होंने सम्पूर्ण जीवन को लिया है और उसके भीतर आनेवाली अनेक दशाओ के प्रति अपनी गहरी अनुभूति का परिचय दिया है।"[2]

"मुक्तक मे प्रबन्ध के समान रस की धारा नही रहती, जिसमें कथा-प्रसग की परिस्थिति मे अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है।"[3] आचार्य शुक्ल मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध को श्रेष्ठ, प्रबन्ध के कथाशरीर की विस्तृति एवं सम्यक् रसनिरूपण के कारण ही मानते है। उनकी व्यावहारिक समालोचनाओ के उपजीव्य यद्यपि 'मानस' एवं 'पद्मावत' ही रहे हैं तथापि शुक्ल जी ने कही भी इन दोनो काव्यो के लिए 'महाकाव्य' शब्द का प्रयोग नहीं किया। डा. शम्भूनाथ सिंह का अनुमान है कि संस्कृत काव्यशास्त्र मे निर्दिष्ट शास्त्रीय लक्षणो के सम्यक्

1. 'हिन्दी वक्रोक्तिजीवित', पृष्ठ 541
2. 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका, पृष्ठ 202
3. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ 247

पालन के अभाव मे शुक्ल जी ने 'महाकाव्य' सज्ञा नही दी ।[1] तेलुगु के प्रख्यात समालोचक आचार्य पिंगलि लक्ष्मीकांतम् जी ने काव्य-भेदो की चर्चा करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—'सन्धि-सामग्री से युक्त प्रकृष्ट बधवाला विस्तृत एव उदात्त इतिवृत्त का काव्य निबद्ध काव्य है। दण्डी के द्वारा प्रतिपादित सर्गसन्ध या महाकाव्य और तेलुगु साहित्य में लोकप्रिय प्रबन्धकाव्य यही है। काव्य के सभी पद्यों में एकसूत्रता लानेवाला इतिवृत्त एव उस कथा को अलकृत करनेवाले वर्णन, उसको आगे बढ़ानेवाले पात्र आदि से युक्त और आदि से अन्त तक अविच्छिन्न सम्बन्ध रखनेवाला काव्य निबद्धकाव्य है।'[2] गीति-कविता के सम्बन्ध मे लक्ष्मीकातम् जी का मत है कि गीति, कवित्व के विकासक्रम मे आरम्भ दशामात्र है।[3] उक्त आचार्य ने इतिवृत्त प्रधान कविता को वस्तुकविता के नाम से अभिहित करके इसी को कवित्व-शिल्प की पराकाष्ठा एव कवि को प्रजापति के समकक्ष ठहरानेवाली मानकर उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि वस्तुकाव्य, गद्य, पद्य, चम्पू, श्रव्य एव दृश्य इनमे से किसी भी रूप मे हो सकता है।[4]

कवि सम्राट श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के अनुसार कवित्व चार प्रकार का होता है—प्रवन्ध-कवित्व, आशुकवित्व, बन्धकवित्व एव चाटुकवित्व। इन चारो मे भारतीय परम्परा के अनुसार प्रबन्ध-कवित्व ही सर्वश्रेष्ठ है, फुटकर कविता या मुक्तककाव्य केवल विनोद या मनोरजन मात्र के लिए रचित काव्य है और उसमे रस की सिद्धि नही होती।[5]

केवल भारत मे ही नही, पाश्चात्य मनीषियो ने भी फुटकर कविता की तुलना मे 'एपिक' या महाकाव्य की श्रेष्ठता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। ड्रैडेन के अनुसार महाकाव्य मानवीय मेधा की सर्वोत्तम रचना है और इसकी सिद्धि कठिन अवश्य है परन्तु सफल होने पर कवि प्रशसा का पात्र बनता है।[6] साम्यूल जानसन के अनुसार आलोचको का यह सर्वमान्य तथ्य है

---

1. 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास', पृष्ठ 397
2. 'साहित्यशिल्पसमीक्षा', पृष्ठ 188
3. वही, पृष्ठ 210
4. वही, पृष्ठ 211
5. 'महती' निबन्ध संग्रह मे 'मैं और मेरी साहित्यिक रचनाएँ' नामक लेख। पृष्ठ 2
6. An Anthology of critical statement—J. Dryden. The author's Apology for Heroic poetry and poetic lisence Page 130

कि महाकाव्यकार की प्रतिभा ही सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य रचनाओं के लिए किसी एक प्रकार की प्रतिभा पर्याप्त है तो महाकाव्य सृजन के लिए उन सब प्रतिभाओं का सम्यक् समन्वय आवश्यक है ।[1]

इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि मे महाकाव्य के महत्वपूर्ण स्थान के विवेचन के अनन्तर महाकाव्य के स्वरूप-विषयक संस्कृत के काव्याचार्यों, तेलुगु एवं हिन्दी के आलोचकों एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों का अवलोकन करना उचित होगा। किन्तु यहाँ पर यह स्मरणीय है कि लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण लक्ष्यग्रन्थों के प्रणयन के बहुत बाद में उन काव्य-ग्रन्थों के पर्याप्त प्रचार-प्रसार, पठन-चर्वण, चर्चा-समालोचन के फलस्वरूप होता है। जो लक्षण किन्हीं कला-कृतियों को दृष्टि मे रखकर किसी समय-विशेष या देश-विशेष मे बनाये जाते है, वे सार्वकालिक एवं सार्वभौम नहीं होते हैं। विकास की प्रक्रिया में से प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक प्राणी एवं प्रत्येक भाव-विचार गुजरते रहते है तो काव्यरूपों मे भी विकास अवश्य होता है। यदि विकास की प्रक्रिया के लिए कोई वस्तु अपवाद है तो वह नामरूपात्मक जगत् से भिन्न एवं त्रिकालाबाधित ब्रह्म ही है। अस्तु, उत्कृष्ट प्रतिभा के कवि काव्यशास्त्रियों के लक्षणों के अकुश को स्वीकार भी नहीं करते है। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि पूर्ववर्ती रचनाओं एवं प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से प्रभावित सामाजिक चेतना से अनन्तरकाल के साहित्यकार असपृक्त रहते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि रचना की स्रोतस्विनी परम्परा एवं प्रयोग के कूलों के बीच निरन्तर आगे बढ़ती रहती है।

आलोच्य साहित्यों (हिन्दी एवं तेलुगु) के महाकाव्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में प्रणीत भारतीय महाकाव्यों की अविच्छिन्न कड़ियाँ हैं। अतएव संस्कृत के आचार्यों के द्वारा निरूपित लक्षणों की मीमांसा यहाँ पर आवश्यक है। परन्तु पाश्चात्य महाकाव्यों एवं अरस्तू आदि के लक्षणों से हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्य न्यूनाधिक मात्रा मे प्रभावित हुए हों (आधुनिक महाकाव्य को छोडकर) इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। फिर भी पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय दृष्टि की किंचित् चर्चा मानवीय-मन एवं चिरन्तर मूल्यों के देश-काल निरपेक्ष होने के कारण प्रस्तुत सन्दर्भ मे की जायेगी।

---

1. "By the general consent of critics the first praise of genius is due to the writer of an epic poem, as it requires an assemblage of all the powers which are singly sufficient for other compositions"—An Anthology of critical statements–S. Johnson : Lives of the poets–Milton, Page 156

संस्कृत के महाकाव्यों के लिए एवं महाकाव्य विषयक लक्षण-निरूपण के लिए आदि कवि वाल्मीकि का रामायण-काव्य ही मूल स्रोत रहा है, यह संस्कृत के विद्वानों का मत है।

संस्कृत साहित्य के इतिहासकार एम. कृष्णमाचार्य के अनुसार काव्य-शास्त्रियों के द्वारा निरूपित सभी लक्षण (महाकाव्य संबंधी) रामायण में प्राप्त होते हैं और संस्कृत महाकाव्यों के रचना-विधान के लिए आदिकाव्य ही आदर्श रहा है।[1]

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "वाल्मीकि हमारे आदिकवि ही नहीं है, प्रत्युत् आदि आलोचक भी है। काव्य का नैसर्गिक रूप क्या होता है, महाकाव्य के भीतर किन मौलिक उपादानों का ग्रहण होता है, आदि प्रश्नों का प्रथम उत्तर हमें 'वाल्मीकि रामायण' में उपलब्ध होता है। संस्कृत साहित्य में 'महाकाव्य' की कल्पना रामायण के साहित्यिक विश्लेषण का निश्चित परिणाम है।[2] इसके अतिरिक्त संस्कृत महाकाव्य का विश्वविख्यात आलोकस्तम्भ 'रघुवंश' काव्य भी वाल्मीकीय रामायण का कतिपय दृष्टियों से ऋणी है। कथावस्तु के अलावा निसर्ग मधुर शैली के आधारभूत प्रसाद एवं माधुर्य नामक काव्यगुण, वैदर्भी रीति, पात्र-चित्रण-विधान उपमौचित्य आदि विशेषताएँ वाल्मीकि से कालिदास ने उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त की और काव्य के अवतारिका भाग में कालिदास ने वाल्मीकि स्तुत की है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत के महाकाव्य विषयक निरूपण के उपजीव्य वाल्मीकि रामायण एवं कालिदास के महाकाव्य रहे है। भाषा (देशी भाषा तेलुगु, हिन्दी इत्यादि) के कवियों के लिए कम से कम रामकथा पर लेखनी-विन्यास करनेवाले तुलसी, केशव, रामभद्र, रंगनाथरामायणकार आदि के सामने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूप से कालिदास एवं वाल्मीकि का रहना नितान्त स्वाभाविक था।

संस्कृत के आचार्यों के लक्षण:

संस्कृत के आचार्यों में कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम भामह ने महा-काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में लक्षण-निरूपण किया था। उनके अनुसार महाकाव्य सर्गों में निबद्ध होता है, महान का प्रतिपादन करता है, अभिव्यक्ति

1. 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर', पृष्ठ 82
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास-परिबृंहित संस्करण, पृष्ठ 36
3 रघुवंश—1–4

सम्बन्धी ग्राम्यता से रहित और अलकार-सहित होता है, सदाश्रय होता है, इसमें मन्त्र, दूत, प्रयाण युद्ध एवं नायक का अभ्युदय वर्णित होते है, अति-व्याख्या का इसमे अभाव होता है, पंचसंधियो से युक्त इसका कथानक होता है, चतुर्वर्ग फलप्राप्ति का निरूपण लोकस्वभाव का चित्रण और विभिन्न रसों की पृथक्-पृथक् योजना इसमे होती है। महाकाव्य के आरम्भ मे ऐसे व्यक्ति का वर्णन निरर्थक है, जिसका चरित्र समूचे काव्य मे परिव्याप्त नही होता अथवा नायक के अभ्युदय में जो योगदान नही देता।[1] भामह के इस लक्षण मे महा-काव्य की रूप सम्बन्धी विशेषताएँ स्पष्टत प्रतिपादित है, यद्यपि बाह्य रूढ़ियों एवं वर्णनीय विषयों की विस्तृत सूची का इसमें अभाव है।

भामह के लक्षण मे महाकाव्य का लक्ष्य, कथानक का सगठित रूप, भाषा शैली की अलकारमयता एवं उदात्तता, नेता के चरित्र प्रतिपादन का विधान, जीवन के विविध पक्षों का अकन-सभी मुख्य तत्व आ गये है।

भामह के उपरान्त आचार्य दण्डी का लक्षण विवेचनीय है, जिसके बहुप्रचलित एव लोकप्रिय होने के कतिपय प्रमाण उपलब्ध होते हैं। दण्डी की परिभाषा मे भामह-निरूपित सर्गबन्धत्व, कथानक का सदाश्रयत्व, चतुर्वर्ग फलायतत्व एवं पचसंधियुक्तत्व का अनुमोदन है। साथ ही मगलाचरण के रूप मे निबद्ध काव्यरूढ़ि का प्रतिपादन है जो 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश' इन तीन

---

1. सर्गबन्धो महाकाव्यं महताचमहच्च यत्।
   अग्राम्य शब्द यर्थ्यं च साल्ंकारं सदाश्रयम ॥
   मंत्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैश्चयत्।
   पचभि: सन्धिभिर्युक्त नाति व्याख्येयमृद्धिमत ॥
   चतुर्वर्गाभिधानेपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
   युक्त लोकस्वभावेन रसैश्च सकलै: पृथक् ॥
   नायक प्रागुपन्यस्य वशवीर्य श्रुतादिभि:।
   न तस्यैव वध ब्रूया दन्योत्कर्षाभिधित्सा ॥
   यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते।
   न चाभ्युदय भाक्तस्य मुधादौ ग्रहण स्तवे ॥
   'काव्यालकार आफ भामह' । —1—19—23

में से किसी एक रूप मे हो सकता है ।[1] वर्णनीय घटनाओं में नगर वर्णन, शैल, ऋतु चंद्र, अर्कोदय, उद्यान, सलिल क्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्र, दूत, प्रयाण, युद्ध और नायक अभ्युदय' को दण्डी ने समाविष्ट किया । भामह की 'सालंकार' अग्राम्य भाषा का अनुमोदन 'अलकृत' शब्द से दण्डी ने किया । इस प्रकार दण्डी की परिभाषा मे काव्य-रूढियो की स्पष्ट योजना के कारण तदनन्तर काव्यशास्त्रियो एव महाकाव्य प्रणेताओ को गतानुगतिक रूप मे भी इसे स्वीकार करना पड़ा ।

रुद्रट की परिभाषा भामह एव दण्डी के उपरान्त अपनी व्यापकता एव माननीयता के सन्दर्भ मे हिन्दी के कुछ विद्वानो की चर्चा का पात्र बनी । रुद्रट की दृष्टि राजसम्बन्धी कथानक के विवरण प्रस्तुत करने की अधिक रही है । इसके अतिरिक्त रुद्रट ने कथानक के उत्पाद्य एव अनुत्पाद्य तथा महत्-लघु भेद किए है । अवान्तर कथाओं के गुम्फन को भी अपने लक्षण के अन्तर्गत समाविष्ट किया है । विविध घटनाओ को चित्रित करने की बात विस्तारपूर्वक कही । अन्य बाते भामह एव दण्डी के समान ही है ।[2] डॉ सत्यदेव चौधरी के अनुसार 'महाकाव्य का स्वरूप इस ग्रन्थ मे सर्वाधिक विशद् एव स्वच्छ रूप मे प्रस्तुत हुआ ।'[3] डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार—'रुद्रट ने महाकाव्य के सकीर्ण लक्षणो का नही, उसके व्यापक और आवश्यक तत्वों का निर्देश किया है ।'[4] किन्तु उपर्युक्त मान्यताओ मे सत्याश ही है, क्योकि "महाकाव्य

---

1. सर्गबन्धोमहाकाव्यमुच्यतेतस्य लक्षणम् ।
   अशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशोवापि तन्मुखम् ।।
   इतिहास कथोद्भूत मितरद्वा सदाश्रयम् ।
   चतुवर्ग फलायत्त चतुरोदात्त नायकम् ।।
   नगरार्णव शैलर्तुचन्द्रार्कोदय वर्णनै ।
   उद्यान सलिल क्रीडा मधुमान रतोत्सवै: ।।
   विप्रलभै विवाहश्च कुमारोदय वर्णनै. ।
   मन्त्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि ।।
   अलकृत मसक्षिप्त रसभावनिरन्तरम् ।
   सर्गै रनतिविस्तीर्णै. श्रव्यवृत्तै· सुसन्धिभि· ।।—काव्यादर्श 1–14–20
2. रुद्रट—काव्यालकार, षोडशोध्याय:, पृष्ठ 1, 32
3. रुद्रट—काव्यलंकार, भूमिका, डॉ. सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ 21
4. हिन्दी महा-काव्य का स्वरूप-विकास- पृष्ठ 45

की कथा मे अवान्तर कथाओ का समावेश जिस पर उन्होंने बल दिया है, कोई मौलिक मान्यता नही ।'''मूल कथा से असम्बद्ध कथाओ का समावेश कथा-सगठन की दृष्टि मे शुभ नही हो सकता । '' जीवन के विविध प्रसगों और व्यापारो की सूची बनाना और विशेष वस्तुओ और घटनाओ का ब्यौरा प्रस्तुत करना अधिक अपवादो को ही आमन्त्रित करना है ।''[1]

भोज के लक्षण मे दण्डी के लक्षण की प्रतिध्वनि है, क्योकि उनके अनुसार महाकाव्य मे कवि एसा इतिवृत्त ग्रहण करता है, जो स्वत: अपने मूलस्रोत मे सुन्दर हो अथवा असुन्दर, बल्कि महाकाव्य रचयिता की प्रतिभा से सुष्ठु रूप ग्रहण करता है ।[2] इसके अतिरिक्त भोज ने महाकाव्य की विशेषताओ को प्रबन्धगुण एव प्रबन्धालकार के नाम से प्रतिपादित किया । यद्यपि ये विशेषताए भोज की मौलिकता का परिचय नही देती है तथापि उनका प्रतिपादन गुण एव अलकार के रूप मे करना भोज की मौलिकता अवश्य है। भोज के द्वारा प्रबन्ध गुण तीन प्रकार के बताये गये है—शब्दगुण, अर्थगुण एव उभयगुण । सक्षिप्त ग्रन्थत्वम्, अविषमवन्धत्वम्, श्रव्यवृत्तत्वम्, अनतिविस्तीर्ण सर्गादित्वम् शिष्ट-सन्धित्व—शब्दगुण है । चतुर्वर्ग फलायत्तत्वम्, चतुरोदात्तनायकत्वम्, रसभाव-निरन्तरत्वम्, विधिनिषेधव्युत्पादकत्व, सुसूत्रसविधानकत्व ये पाँच अर्थगुण है । रसानुरूप सन्दर्भत्व, पात्रानुरूपभाषत्व, अर्थानुरूपछन्दस्त्व समस्त लोकरजकत्व, सदलंकार वाक्यत्व—ये उभयगुण हैं ।[3] शब्दगुण महाकाव्य के बाहरी रूपविधान मे सम्बन्धित हैं तो अर्थगुण आन्तरिक वस्तु या कथानक से सम्बन्धित है। उभयगुण बाहरी रूप एव आन्तरिक वस्तु दोनो से सम्बन्ध रखते है। इसी प्रकार भोज ने शब्दालंकार, अर्थालंकार एव उभयालकार का प्रतिपादन किया जो क्रमश: महाकाव्य के बाह्य रूप, वर्णनीय वस्तुओ तथा कथानक के संगठन से सम्बन्धित हैं ।[4]

शब्दालकार—नमस्काराद्युपक्रमत्व, सम्बन्धादिममताक्यत्व, भिन्न वृत्तत्व ।
अर्थालङ्कार—नगराश्रमशैल सैन्यावासादि वर्णन, ऋतु, रात्रि आदि का वर्णन ।
उभयालङ्कार—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकारी, कार्योपकल्पनम् आदि ।

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य मे रूप—विधाएँ, पृष्ठ 62, 63
2 यस्मिन्नितिहासार्थानिपेशलन्पेशलान् कविः कुरुते ।
   स हयग्रीव वधादि प्रबन्ध इब सर्गबन्धस्यात् ॥
   —भोज श्रृंगारप्रकाश, पृष्ठ 627
3. भोजस श्रृगार प्रकाश . पृष्ठ 313
4. वही. पृष्ठ 403

चौदहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ एव विद्यानाथ के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ पठन एव पाठन की दृष्टि से अधिक प्रचलित रहे है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। महाकाव्य की कथा इतिहाससम्मत अथवा सज्जनाश्रित होती है, उसका नायक सद्वशज, क्षत्रिय या देवता होता है। एक वंश के अनेक राजा या अनेक कुलीन राजा भी नायक बन सकते है। शृगार, वीर एव शान्त इनमे से कोई एक रस अगी होता है, आदि मे नमस्क्रिया, वस्तुनिर्देश, आशीर्वाद—इन तीनो मे से किसी एक रूप मे मगलाचरण होता है। खलों की निन्दा एवं सज्जनो का गुणकीर्तन होता है। पूरे सर्ग मे एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग होता है, परन्तु सर्ग के अन्त मे भिन्न वृत्त का प्रयोग होता है। सर्ग न तो अति स्वल्प होने चाहिए और न अति दीर्घ। सख्या में सर्ग आठ से अधिक होते हैं। वर्णनों की सूची मे सध्या, सूर्य, इन्दु, रजनी, दिवस, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, ऋतु, पर्वत, सयोग, वियोग, मुनि, यज्ञ, युद्ध, प्रयाण आदि है। वर्णन यथायोग्य और सागोपाग होना चाहिए।[1] इस प्रकार विश्वनाथ की परिभाषा मे सस्कृत के गण्यमान महाकाव्यो के लक्षण समाविष्ट होते है और दण्डी आदि पूर्वाचार्यों के लक्षणो का पुनराख्यान भी इसमे प्राप्त होता है।

---

1 सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः
सद्वशः क्षत्रियोवापि धीरोदात्त गुणान्वितः।
एकवंशभवाभूपाः कुलजा बहवोपिवा ॥
शृगारवीरशान्तानामेकांगी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेपिरसाः सर्वे नाटकसंधय. ॥
इतिहासोद्भव वृत्त मन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकंच फल भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एववा।
क्वचिन्निन्दा खलादीना सताचगुणकीर्तनम् ॥
एकवृत्तमयैः पद्यै रवसानेन्यवृत्तकैः।
....
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्त वासराः
....
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगामी इह ॥

—साहित्यदर्पण 6-315-324

विद्यानाथ की परिभाषा यद्यपि महाकाव्य सम्बन्धी सभी विशेषताओं को समाविष्ट नहीं करती, तथापि केवल एक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और वह दृष्टि अन्य साहित्यरूपों से इस विशिष्ट विधा के भेदक लक्षण के प्रतिपादन से सम्बन्धित है। विद्यानाथ के अनुसार नगर, अर्णव, शैल, ऋतु, चन्द्र, अर्कोदय, उद्यान, सलिलक्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय मन्त्र, द्यूत, प्रयाण, आजि, नायकाभ्युदय ये अठारह वर्णन जिस काव्य में किये जाते है, वही महाकाव्य है और इन वर्णनों में से कुछ कम भी हो सकते है।[1] इस लक्षण मे महाकव्य मे वर्णनीय अष्टादश वस्तुओं की सूचीमात्र है। नायक, रस, कथानक, मगलाचरण, छन्द-विधान आदि के सम्बन्ध मे विद्यानाथ एकदम मौन है, केवल वर्णन का ही उल्लेख करने से महाकाव्य के अन्य तत्वों की अपेक्षा वर्णनप्रधानता पर उपर्युक्त आचार्य का बल है। इस लक्षण से यही प्रतीत होता है कि पुराण, इतिहास आदि अन्य साहित्यिक विधाओ से महाकाव्य को पृथक् करने के लिए संस्कृत के आचार्यों के एक वर्ग ने मुख्यरूप से वर्णनो को ही भेदक लक्षण माना है। केवल विद्यानाथ ने ही यह प्रतिपादन किया है, तो भी तत्कालीन कतिपय काव्यशास्त्रियो एवं कवियो के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व विद्यानाथ करते है। विद्यानाथ ने दण्डी के द्वारा निरूपित, नगर, अर्णव, शैल, ऋतु, चन्द्र, अर्कोदय, उद्यान, सलिलक्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्र, दूत, प्रयाण, युद्ध, नायकाभ्युदय—इन अष्टादश वर्णनो को ज्यो के त्यों शब्दत: ग्रहण किया है।

संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ आचार्यों के मतो के अवलोकन के फलस्वरूप महाकाव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

(1) महाकाव्य सर्गबद्ध पद्यमय काव्यरूप है और ये सर्ग अत्यल्प भी नहीं होने चाहिए और न अतिविस्तृत।

(2) पुराण, इतिहास आदि अन्य विधाओं से महाकाव्य की पृथकता उसकी

---

1. नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनम्।
   उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवा.॥
   विप्रलम्भो विवाहश्च कुमारोदय वर्णनम्।
   मन्त्रद्यूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदया अपि॥
   एतानि यत्र वर्ण्यन्ते तन्महाकाव्य मुच्यते।
   एषामष्टा दशानां यैः कैश्चिदूनमपीष्यते॥
   प्रतापरुद्रयशोभूषणम्, काव्यप्रकरण 68-70

वर्णन-प्रधानता के कारण है। ये वर्णन अष्टादश या कुछ कम भी हो सकते है।

(3) अपने मूलरूप में असुन्दर, स्फीत अथवा विशृंखलित एव अनौचित्यमय होने पर भी, कवि की प्रतिभा के कारण महाकाव्य मे स्वीकृत हो जाने के उपरान्त इतिवृत्त मे चारुता आ जाती है। इस चारुता के सम्पादन के निमित्त कवि पच-सन्धियो से युक्त सगठित रूप में कथानक का निर्वाह करता है।

(4) महाकाव्य मे वर्णित नायक धीरोदात्त होता है, जिसका चरित्राकन आदि से अन्त तक काव्य के कलेवर मे परिव्याप्त रहता है और अन्ततोगत्वा नायक के अभ्युदय का प्रतिपादन किया जाता है।

(5) भारतीय जीवन-दृष्टि के आधारभूत चतुर्वर्गफल एव विधि-निषेध की व्यजना महाकाव्य में सम्म एव व्यग्य रूप मे होती है।

(6) इस काव्य-विधा मे कतिपय रसो की योजना की जाती है, किन्तु शृंगार, वीर, शान्त—इनमे से कोई एक रस अगी रूप मे तथा अन्य रस गौण रूप मे होते हैं। धर्माविरुद्ध काम के प्रतिपादन के लिए शृंगार, लोक की स्थिति एव कल्याण के निमित्त दुष्ट प्रवृत्तियो के भजन के लिए वीर तथा परम सत्य की ओर नयनोन्मेष के लिए शान्तरस की स्थिति अगीरूप मे होती है।

(7) रसानुरूप छन्दो की योजना और अग्राम्य नागर पदावली का प्रयोग महाकाव्य में होता है। अलंकृत शैली महाकाव्य की विशेषता है। सर्ग के अन्त मे भिन्न वृत्त की योजना की जाती है।

(8) काव्यादि मे मगलाचरण का विधान है। यह मगलाचरण आशीर्वाद, नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश इनमे से किसी भी रूप मे हो सकता है।

सस्कृत महाकाव्य के इन सभी लक्षणों के दो भेद किये जा सकते हैं—बाह्य और आभ्यन्तरिक। वस्तु, नेता एव रस से सम्बन्धित विशेषताएँ आन्तरिक स्वरूप की हैं और शेष बाह्यरूप सम्बन्धी हैं। कृष्णमाचार्य के अनुसार—"सक्षेप में कहा जाय तो महाकाव्य वृहदाकार रचना है, जिसमें विविध वर्णन, विस्तृत निर्माण, धार्मिक अथवा ऐतिहासिक कथानक होता है और प्रकथन की सुविधा के लिए जो सर्गो में विभाजित किया जाता है।[1]"

1. Shortly stated a Mahakavya is a Writing of considerable length, varying discription and elaborate construction embracing a narrative theological or historical theme and is divided into Sargas or Cantos for convenience of narration.
History of classical Sanskrit literature, Page 81

पाश्चात्य मान्यताएँ :

पाश्चात्य विद्वानो में सर्वप्रथम अरस्तू ने महाकाव्य के स्वरूप के विषय में अपने मत प्रकट किए है। उनके लक्षण होमर के 'इलियड' और 'ओडेसी' को आदर्श महाकाव्य मानकर निरूपित हुए है। अरस्तू ने यद्यपि स्वतन्त्र रूप मे इस काव्य-विधा का विवेचन नही किया है, परन्तु त्रासदी से इसके साम्य एव भिन्नता के स्पष्टीकरण से महाकाव्य की विशेषताओ पर भी प्रकाश पडता है। अरस्तू ने कहा कि महाकाव्य समाख्यानात्मक होता है, इसमे केवल एक ही प्रकार का छन्द ग्राह्य होता है और इसकी कथा का निर्माण त्रासदी के समान नाटकीय ढग से होना चाहिए। महाकाव्य का विषय आदि, मध्य और अवसान से युक्त समग्र एव अन्वितिपूर्ण घटना होती है। वस्तु-सगठन की दृष्टि से ऐतिहासिक रचनाओ से महाकाव्य भिन्न है, क्योकि इतिहास मे एक ही कार्य को नही, बल्कि एक काल-खण्ड मे एक या अनेक व्यक्तियो से सम्बन्धित सभी घटनाओं का समावेश होता है। किन्तु होमर ने युद्ध के एक विशेष भाग का चयन करके शेष के लिए अवान्तर कथाओ की योजना की है, जिसके कारण जीवन के विविध रूपो का चित्रण हो सका।[1] अरस्तू ने महाकाव्य की समाख्यानात्मकता, उसमे प्रयुक्त एक ही षटपदी छन्द, नाटकीय कार्यान्विति, ऐतिहासिक कथानक और बृहद् आकार का प्रतिपादन किया है। साथ ही इस आचार्य ने शैली की दृष्टि से 'इलियड' को सरल शैली का दुर्घटनापूर्ण काव्य और 'ओडेसी' को जटिल और नैतिकतापूर्ण काव्य माना है। भाषा के सम्बन्ध मे अरस्तू ने माना कि वह भावानुकूल एवं सहज अलकृत होनी चाहिए।

---

1. As to that poetic imitation which is narrative in form and employs a single metre the plot manifestly ought, as in a tragedy to be constructed on dramatic principles. It should have for its subject a single action whole and complete with a beginning middle and an end. It will thus resemble a living organism is all its unity and produce the pleasure proper to it. It will differ ir structure from historical composition which of necessity present not a single action but a single period . .
—Aristotle's theory of poetry and Fine Art–S. H. Butcher. Kalyani Publishers. Indian Edition Page 89

कूपर के अनुसार महाकाव्य विशेषत: एक बृहदाकार रचना है, जो किसी जातीय कथावस्तु पर आधारित होती है, वीर पात्र अपने साहसपूर्ण कृत्यो मे चित्रित होते हैं और प्रकथन उदात्त शैली मे कथानक की असख्य पद्धतियों का अवलम्बन लेकर किया जाता है ।[1]

कासेल के सम्पादित कोश मे महाकाव्य के विषय मे लिखा हुआ है कि वह लम्बा प्रकथनप्रधान पद्यकाव्य है जो वीर कृत्यो पर आधारित है, सामान्यत एक मुख्य नायक होता है, जिसका सुदृढ राष्ट्रीय महत्व होता है ।[2] उपर्युक्त दोनों परिभाषाओ मे किसी जाति के भव्य जीवनादर्शो का प्रतिपादन, कलेवर की विस्तृति, वीर नायक के वीरतापूर्ण कृत्यो का वर्णन एव उदात्त गभीर शैली महाकाव्य के आवश्यक तत्व माने गये है । इन परिभाषाओ के निर्माताओ के सामने होमर के द्वारा रचित यूनानी महाकाव्य 'इलियड' एव 'ओडेसी' ही रहे है, जिनके स्वरूप के सम्बन्ध मे अरस्तू के लक्षण का ही अनुसरण किया गया है । वास्तव मे पाश्चात्य भाषाओ मे भी 'एपिक' का विकास होता रहा और किसी पूर्व निर्मित परिभाषा या लक्षण के सकुचित क्षेत्र मे महाकाव्य की रूप सम्बन्धी सभी विशेषताओ का समाहार नही हो सकता था । देश और काल की सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार इस काव्यरूप मे नई-नई विशेषताएँ प्रकट होने लगी । निम्नाकित पक्तियो मे इसी तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है—"ससार मे जितने राष्ट्र और जितने कवि है, महाकाव्य की सचमुच ही, उतनी ही परिभाषाएँ है और महाकाव्य रचना के उतने ही नियम है ।[3]"

'इलियड' और 'ओडेसी' के आदर्श पर निर्मित होने पर भी 'पारडाइज लास्ट' आदि परवर्ती पाश्चात्य महाकाव्य पर्याप्त अन्तर रखते हैं । इस अन्तर को द्योतित करने के लिए आलोचकों ने महाकाव्य के दो भेद माने है, जैसे विकसनशील महाकाव्य और अलकृत महाकाव्य । महाकाव्य के वस्तु-संगठन के सम्बन्ध मे अरस्तू का मत है कि इस विधा मे वर्णित कार्य परिपूर्ण एव

---

1 प्रिफेस टू पोएट्री, पृष्ठ 407

2 Epic is a long narrative poem, recounting heroic actions usually of one principal Hero and of ten with a strong national significance.
—catsets Encyclopaedia of Literature Page 195

3 गोपीकृष्ण गोपेश . 'विदेशो के महाकाव्य' (भूमिका), पृष्ठ 13

एक ही होना चाहिए, जो आदि, मध्य एव अवसान से युक्त है ।[1] अरस्तू के अनुसार सम्पूर्ण महाकाव्य एक ही प्रकार के छन्द मे निर्मित होता है और उसका पद्यबद्ध होना भी आवश्यक है ।[2] किन्तु 'बुक आफ एपिक' के सकलन-कर्ता ने गद्य पद्य काव्यो का भी सग्रह किया है । इस प्रकार हम देखते है कि पाश्चात्य धारणा के अनुसार महाकाव्य का वीररसप्रधान होना, पद्यमय होना उदात्त गभीर शैली मे वर्णित होना, वस्तु का सगठित-रूप मे होना और किसी जाति के भव्य जीवनादर्शों का प्रतिपादन करना उसकी प्रमुख विशेषताएँ है । भारतीय धारणा मे वीररस के अतिरिक्त शृगार एवं शान्तरस प्रधान भी महाकाव्य होते है । जहाँ भारतीय आलकारिकों ने पचसधियो का विधान किया है तो पाश्चात्यो ने 'कार्य के आदि मध्य एव अवसान से युक्त होने की बात कही है । उदात्त गभीर शैली के लिए 'अलंकृत' 'अग्राम्य' शब्दो का प्रयोग भामह और दण्डी ने किया है ।

हिन्दी मे महाकाव्य-विषयक धारणा .

हिन्दी और तेलुगु में परम्परागत प्रसिद्धि एव प्रचलन की दृष्टि से जिन काव्यो को महाकाव्य साधारणतया माना जाता है और जिनके आन्तरिक लक्षणो के आधार पर इन भाषाओं के काव्यशास्त्रियों एव नवीन आलोचको ने इस विशिष्ट विधा की रूपात्मक विशेषताएँ प्रतिपादित की है, उनके अवलोकन से ही आलोच्य भाषाओं में महाकाव्य का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है । आदिकाल के मुक्तकेतर निबद्ध काव्यो मे हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज की गौरव-गाथा को लक्ष्य बनाकर विरचित 'पृथ्वीराज रासो' को, उत्तर-भारत के लोक-नायक तुलसी से निर्मित 'रामचरितमानस' को, प्रमुख सूफी कवि जायसी प्रणीत 'पद्मावत्' को और केशव की 'रामचन्द्रिका' को महाकाव्य माना जाता है ।

---

1. With respect to that species of poetry which imitates by narration and is verse it is obvious that the plot ought to be dramatically constructed like that of tragedy and that it should have for its subject one entire and perfect action having a beginning, a mddle and an end.
   —Loci critici–George Saints bury, Page 19
2. Epic poetry agreeas so for with tragic as it is an imitation of great characters and action by means of verse, but in this it differs that it makes use of only one kind of Metre throught and that it is narrative. Ibid Page 4

एक अतिवादी दृष्टि यह भी दिखाई पडती है—'हिन्दी मे यद्यपि लम्बे आकार के अनेक सर्गबद्ध काव्यग्रन्थो की रचना हुई, किन्तु उनमे से केवल कुछ को ही महाकाव्य कहा जा सकता है और सच्चे अर्थ मे तो महाकाव्य का प्राय अभाव ही समझना चाहिए। वास्तव मे हिन्दी भाषा के सम्पूर्ण विकास-काल में महाकाव्य की रचना के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव रहा है।"[1] किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रत्येक युग एव देश मे महाकाव्य रचे जाते है, और उनके स्वरूप मे विकास होता रहता है। विकास की इस प्रक्रिया को स्वीकार नही करने के कारण ही 'मानस' को पुराण काव्य 'पद्मावत' को 'कथाकाव्य' और रामचन्द्रिका को 'असफल प्रबन्ध काव्य' कहकर इन ग्रन्थों के महाकाव्यत्व को अगीकार नही किया गया है। किन्तु पौराणिक तत्वो से युक्त होने पर भी 'मानस' महाकाव्य है, प्रेमाख्यान होते हुए भी 'पद्मावत' महाकाव्य है और आलोचको की सहानुभूति से वचित होने पर भी 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य है। हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे रीतिकाल मे रचित हिन्दी के लक्षण ग्रन्थो मे चर्चा होनी चाहिए थी, परन्तु नहीं हो सकी, क्योकि रीतिकाल के आचार्य पहले कवि थे और बाद मे आचार्य। उनके आचार्य पक्ष की अपेक्षा कवि-पक्ष ही सबल था। उन लोगों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के कतिपय अगों का पद्यबद्ध अनुवाद मात्र प्रस्तुत किया था। ऐसे ग्रन्थो से मौलिक उद्भावना और समग्र लक्षण-निरूपण की आशा नही की जा सकती। चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, कुमारमणि, भिखारीदास, प्रतापसिंह आदि काव्य के सर्वागनिरूपक आचार्यों ने काव्य-भेदो की चर्चा के प्रसग में शब्द-शक्तियो के आधार पर उत्तम, मध्यम और अधम काव्यो की बात अवश्य कही है, किन्तु महाकाव्य आदि काव्य-विधाओ का उल्लेख तक नही किया है तो उनके लक्षण-निरूपण का प्रश्न ही नही उठता। मेरे इन निष्कर्ष की पुष्टि रीतिकाव्य के विशेषज्ञ डा. जगदीश गुप्त से हुई है। हिन्दी के रीति-निरूपको मे इस अभाव का यही कारण प्रतीत होता है कि उस युग मे कवियों की यह प्रवृत्ति ही नही थी। इसके विपरीत तेलुगु के लक्षण ग्रन्थो मे 14 वी शताब्दी से ही कुछ काव्य-विधाओं पर प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी के आधुनिक विद्वानों मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सफल प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य माना और गीतिकाव्य के लिए अधिकतर प्रगीत मुक्तक शब्द प्रयोग में लाया है। शुक्ल जी की दृष्टि मे महाकाव्य के आवश्यक गुणो

---

1 हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग) पष्ठ 580

मे मानव जीवन के पूर्ण दृश्य की योजना सर्वोपरि है और वस्तु सगठन के लिए उन्होने घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला शब्द का प्रयोग किया, रसवादी होने के कारण 'नाना भावो का रसात्मक अनुभव करनेवाले प्रसगो' की बात कही है। 'प्रबन्धकाव्य मे मानव जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमे घटनाओ की सम्बद्ध शृखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले नाना भावो का रसात्मक अनुभव करानेवाले प्रसगो का समावेश होना चाहिए।[1] यह सर्वविदित है कि शुक्ल जी की मान्यताये जायसी और तुलसी के महाकाव्यो के चर्वण के फलस्वरूप निकली है। अत 'मानस' एव 'पद्मावत' पर उन लक्षणों का घटित होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराजरासो' को भी शुक्ल जी ने महाकाव्य माना है—"चन्दवरदाई—ये हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते है और इनका पृथ्वीराजरासो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है।[2]"

शुक्लजी के बाद के इतिहासकारो ने भी रासो को महाकाव्य माना है, जैसे—'इसे महाभारत की तरह एक विशाल महाकाव्य मान सकते है।[3]" रामचन्द्रिका के विषय मे शुक्ल जी का मत है कि "उसमे प्रबन्धकाव्य के वे गुण नही हैं जो होने चाहिए।[4]" शुक्ल जी की उपयुक्त मान्यता से प्रभावित होने के कारण ही कुछ विद्वानो को यह कहने मे विलम्ब नही लगता कि उसको महाकाव्य क्या, एक प्रबन्धकाव्य भी नही माना जा सकता।[5]" रामचन्द्रिका के महाकाव्यत्व का निराकरण तीन आधारों पर किया गया है—(1) सम्बन्ध निर्वाह, (2) कथानक का समग्र प्रतिपादन, (3) जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन। कथानक और समग्र प्रतिपादन पर बल देनेवाले लोग यह विस्मृत कर देते है कि महाकाव्य वर्णनप्रधान काव्य-विधा है और इतिवृत्त की अपेक्षा आलंकारिक शैली एवं रमणीय वस्तु वर्णन ही इस विशिष्ट विधा को इतिहास और पुराण आदि से पृथक् कोटि में पहुँचाते है। पं जगन्नाथ तिवारी ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है—"महाकाव्य जीवन-चरित अथवा इतिहास नही है, जिसमे कथानक के सब विवरणो का रहना

---

1 जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ 66

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 36

3. सम्पा डा. नगेन्द्र : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ट 60

4. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृष्ठ 201

5. हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग), पृष्ठ 582

आवश्यक है । कवि उन्ही स्थलो को चुन लेता है जिनमे उसकी वृत्ति रमती है और उन्ही का क्रमिक वर्णन करता है और इस क्रमिक वर्णन मे प्रबंधत्व स्वत. ही आ जाता है ।[1]

स्वर्गीय लाला भगवानदीन के शब्दो मे—"महाकाव्य का प्रधान लक्षण यह है कि वह वर्णन-प्रधान होना चाहिए । इसी प्रधानता का ध्यान रखते हुए केशव ने सामारिक प्रधान दृश्यो तथा सामाजिक और विशेषकर राजा सम्बन्धी पदार्थो के वर्णन एक भी नही छोडे ।[2]" इसलिए केशव युग एव उनकी स्वय की मान्यताओ को आधार मानकर 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन करे तो उसके महाकाव्यत्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा । अतः यह कथन असगत प्रतीत नही होता कि "रामचन्द्रिका केशव का ऐसा असाधारण महा-काव्य है, जिसमे परम्परा-पालन के स्थान पर वैशिष्ट्य-सन्निवेश का अधिक ध्यान रखा गया है ।[3]"

'पद्मावत' को डॉ. गणिपतिचद्र गुप्त महाकाव्य स्वीकार नहीं करके उसको रोमाचक शैली का कथा-काव्य मानते है ।[4] उनका तर्क यह है कि महाकाव्य के मूल मे आदर्शवादी या आदर्शपरक चेतना है जो किसी महान पुरुप के चरित का अवतरण करती हुई उदात्त सन्देश की व्यंजना करती है, जब कि कथाकाव्य की मूल-चेतना स्वच्छन्दपरक होती है । डॉ. गुप्त के अनुसार कथाकाव्य मे आदर्श की स्थापना की अपेक्षा सौन्दर्य और प्रेम की अभिव्यजना का तथा लोकमगल की अपेक्षा लोकरंजन का लक्ष्य अधिक रहता है । किन्तु 'पद्मावत' में शैली एव भावयोजना की दृष्टि से उदात्तता एव गभीरता का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है । प्रेमकथाओं की परम्परा में रचित होने पर भी प्राचीन काव्य-शास्त्रियों के गिनाये हुए सभी लक्षणो के प्राप्त नही होने पर भी इसी उदात्तता के आधार पर 'पद्मावत' को महाकाव्य माना जा सकता है । इस सन्दर्भ मे प. परशुराम चतुर्वेदी का कथन युक्तियुक्त है—"महाकाव्य सबधी धारणा का आज तक पिछली कई शताब्दियो से विकास होता आया है और इसमे सन्देह नही कि उसमे और परिवर्तन या परिमार्जन की आवश्यकता होगी । इसके सिवाय सूफी प्रेमाख्यानो के वर्ण्य विषय तथा उनके विकास-

---

1 सक्षिप्त रामचन्द्रिका (प्रस्तावना), पृष्ठ 8
2. रामचन्द्रिका वक्तव्य, पृष्ठ 6
3. सम्पा. डा. नगेन्द्र 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृष्ठ 246
4. वही, पृष्ठ 161

क्रम को प्रभावित करनेवाले आदर्शों की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि उनके स्वरूप-निर्माण मे अनेक प्रकार के कारणो ने सहयोग प्रदान किया होगा और इसी कारण इनका महाकाव्यत्व भी बहुत भिन्न लक्षणो पर आश्रित हो सकता है[1] ।" कथानक के समुचित निर्वाह के लिए भारतीय आलंकारिको ने उसका सर्गबद्ध होना आवश्यक माना है। 'पद्मावत' के शुक्ल जी एव वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सम्पादित सस्करणो मे स्तुतिखण्ड, मानसरोदक खण्ड इत्यादि खण्डविभाजन प्राप्त होता है । इस खण्डविभाजन से आलंकारिको का 'अनतिविस्तीर्ण सर्गत्व' का उद्देश्य सिद्ध नही होता, क्योकि कुछ परिमाण मे अत्यल्प है तो कुछ अतिविस्तृत हो गये है। इसके अतिरिक्त 'पद्मावत' की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियो मे खण्डविभाजन दिखाई नही पडता[2] । संस्कृत के महाकाव्यो के अनन्तर एव हिन्दी के महाकाव्यो से भी पूर्व प्राकृत एव अपभ्रंश भाषाओ मे 'सर्गबन्ध' मे भिन्न महाकाव्यो की रचना की परम्परा थी, जिसका रूप हमे वाक्पतिराज के प्रसिद्ध महाकाव्य 'गउडवहो' तथा हरिभद्र कवि के 'णेमिणाह-चरिउ' मे प्राप्त होता है[3] । इस प्रकार 'पद्मावत' में कुछ परम्परागत विशेषताएँ प्राप्त नही होती । तो भी उदात्ता एव गंभीरता के आधार पर उसको महाकाव्य माना जाता है ।

'रामचरितमानस' के काव्यरूप के विषय मे डा. श्रीकृष्णलाल का मत है कि वह पुराणकाव्य है, महाकाव्य नही । उनके शब्दो मे रामचरितमानस रामभक्ति का काव्य है, रामचरित का काव्य नही, रामकथा का भी काव्य नही', अतः वे मानस को पुराण कहना ही अधिक उचित मानते है । साथ ही यह भी स्वीकार करते है कि "रामचरितमानस का शरीर तो महाकाव्यो जैसा है, परन्तु इसकी आत्मा पूर्णतः पुराणो जैसी है[4] ।" वस्तुतः पुराण उस रचना के लिए प्रयुक्त शब्द है जो सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर एव वंशानुचरित—इन पाँच लक्षणों से युक्त होता है । वस्तु योजना, काव्यकलात्मक मार्मिक प्रसंगो की योजना, नादसौन्दर्यमय सालकार भाषाशैली, आदि से अन्त तक परिव्याप्त एक धीरोदात्त नायक का चरित्र-चित्रण आदि ऐसे तत्व है, जिनके सद्भाव मे 'मानस' पुराण की अपेक्षा महाकाव्य की कोटि मे ही स्थान पाने

---

1. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्, पृष्ठ 274
2. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृष्ठ 418
3. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 274
4 मानस दर्शन पृष्ठ 147

योग्य है। 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' रचना के लिए यह आवश्यक नही है कि वह पुराण ही हो। 'रामचरितमानस' मे पौराणिकता के अत्यधिक प्रभाव को कही-कही दृष्टिगत होनेवाले शिथिल कथानक और अवान्तर कथाओ तथा प्रसगो के आधिक्य मे लक्षित किया जाता है। विशेषकर बालकाण्ड एव उत्तरकाण्ड मे इस स्थिति का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त माहात्म्य और स्तोत्र, सैद्धान्तिक विवेचनो और प्रचारात्मक उपदेशो के आधिक्य को भी मानस की काव्यकला को दबानेवाला अश माना जाता है।[1] किन्तु इस सन्दर्भ मे यह स्मरणीय है कि मध्यकाल के धार्मिक जागरण के फलस्वरूप 'मानस' मे भी पर्याप्त धार्मिक अंश विद्यमान है। किन्तु आशिक धर्मभावना के कारण उसे पुराणकाव्य कहना युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। अत 'मानस' को पुराण काव्य कहना उसकी समूची काव्य-सवेदना को कुण्ठित करना है।

इन काव्यो के अलावा हिन्दी मे 'छत्रप्रकाश', 'सुजान-चरित' 'राजविलास', 'हम्मीररासो' आदि वीरकाव्यो की एक समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है। डॉ. टीकम सिंह तोमर ने इनको महाकाव्य माना है।[2] किन्तु डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने इन ग्रन्थो को महाकाव्य स्वीकार नही किया है।[3] इनका मत युक्तियुक्त प्रतीत नही होता, क्योकि 'आल्हाखण्ड' जैसी रचना को महाकाव्य सज्ञा प्रदान करके भारतीय वीरत्व के प्रतिरूप यशस्वी नेताओ के भव्य चित्रण से सम्पन्न निबद्धकाव्यों को 'महाकाव्य' पद से वंचित करना उचित नही है। वीरता का अच्छा परिपाक, ओजस्वी वाणी मे युद्ध आदि का वर्णन एव आदर्शमय वीरचरित्र की अवतारणा के कारण 'छत्रप्रकाश' आदि वीररसात्मक काव्यों को महाकाव्य मान सकते है।

हिन्दी के कतिपय विद्वानो ने महाकाव्य की परिभाषा दी है। बाबू गुलाबराय के अनुसार—"महाकाव्य वह विषय-प्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार मे, जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यो द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकाक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।[4]" यहाँ पर स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अध्ययन के उपरान्त भारतीय एव पश्चिमी विचारधाराओ का समन्वय करके परिभाषा निश्चित की गयी है।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, पृष्ठ 58
2. हिन्दी वीरकाव्य, पृष्ठ 37
3. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृष्ठ 671-74
4. काव्य के रूप, पृष्ठ 95

डा. नगेन्द्र ने 'कामयनी' के विवेचन के सन्दर्भ मे लिखा—"मैं महाकाव्य के उन्ही मूल तत्वो को लेकर चलूँगा जो देशकाल सापेक्ष नही है, जिनके अभाव मे किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नही बन सकती और जिनके सद्भाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता। वे मूल तत्व है—(1) उदात्त कथानक, (2) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य, (3) उदात्त चरित्र, (4) उदात्त भाव, (5) उदात्त शैली अर्थात् औदात्य ही महाकाव्य का प्राण है।[1]" उदात्तता को महाकाव्य का प्राण स्वीकार करने मे कोई मतभेद नही हो सकता। परन्तु यह सापेक्ष शब्द है, जिसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न रूपों मे व्याख्याकारो की चतुरता के अनुसार सम्भव है। इसमें स्पष्टता का अभाव है।

हिन्दी साहित्य में आरम्भ से लेकर मध्यकाल तक की अवधि मे रचित प्रमुख महाकाव्यों के निजी लक्षणो तथा उनकी आन्तरिक प्रवृत्तियो के परिशीलन से रूप सम्बन्धी निम्नोक्त विशेषताएँ बताई जा सकती हैं। महाकाव्य पद्यमय काव्यरूप है, जिसका कथानक प्रकथन की सुविधा के लिए काडो प्रकाशो, समयों अथवा अध्यायो के नाम से सर्गबद्ध होता है। कुछ महाकाव्यो मे सर्गविभाजन की पद्धति दृष्टिगत नही होती। पुराण, इतिहास आदि धर्म या उपदेश प्रधान रचनाओ की भाँति इसका साहित्यिक स्तर गौण नहीं होता। आन्तरिक संवेदना एव मूलचेतना की दृष्टि से धर्मोपदेश और दार्शनिक विवेचनवाले पक्ष की अपेक्षा इस काव्य-विधा का साहित्यिक पक्ष प्रबल होता है। कथानक तथा वर्णित प्रसगो के अनुरूप सरस वर्णनों की योजना की जाती हैं। इन वर्णनों की सख्या नियत नहीं है। इस विधा में स्वीकृत इतिवृत्त अपने मूलरूप मे पौराणिक ऐतिहासिक और लोककथात्मक स्रोतो में प्रख्यात होता है। कवि की प्रतिभा के कारण संग्रह, त्याग और मौलिक उद्भावना की प्रवृत्ति के अधीन होकर वस्तु को नया रूप प्राप्त होता है। महाकाव्य में चित्रित नायक काव्य के समूचे कलेवर मे परिव्याप्त रहता है। यह नेता देशगौरव की रक्षा करनेवाला अथवा जनजीवन को उदात्तता की प्रेरणा देनेवाला महान व्यक्ति ही होना है। विविध रसो की योजना होने पर भी शान्त, शृंगार, वीर इनमे से कोई एक अंगीरूप मे प्रतिष्ठित होता है। अभिव्यक्ति में उदात्तता का निर्वाह शिष्ट और अलंकृत भाषा के प्रयोग से किया जाता है। स्पष्ट है कि हिन्दी

---

1. आस्था के चरण, पृष्ठ 538

मे महाकाव्य सस्कृत के आलकारिको के द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो का पूर्णरूप से अनुगमन नही करता ।

तेलुगु महाकाव्य का स्वरूप :

तेलुगु के लक्षण ग्रन्थो मे चौदहवी शताब्दी के विन्नकोट पेद्दन प्रणीत 'काव्यालकार-चूडामणि' मुख्य है। इस ग्रन्थ मे कवि ने काव्य-भेदो की चर्चा करते हुए यह बताया कि गद्य पद्य और मिश्र के भेद से काव्य तीन प्रकार के होते हैं। इन प्रकारों मे नगर-वर्णन आदि अष्टादश वर्णनो से युक्त काव्य को 'भव्यप्रबन्ध' कहा जाता है।[1] यहाँ पर महाकाव्य के लिए ही इस 'भव्य-प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग कवि ने किया है। इस लक्षणकार ने अष्टादश वर्णनो की सूची प्रस्तुत की और प्रत्येक वर्णन के लिए लक्षण और उदाहरण स्वरचित पद्यो के रूप मे दिये। सोलहवी शताब्दी के 'रामराजभूषण' के अनुसार भी महाकाव्य में अष्टादश वर्णनों की योजना आवश्यक है। इन अठारह मे से कुछ वर्णनों के कम होने पर भी उस रचना को महाकाव्य माना जा सकता है।[2] इन दोनो लक्षणग्रन्थों ने सस्कृत के प्रसिद्ध अलंकारग्रन्थ 'प्रतापरुद्रीयम्' का अनुगमन किया है। स्मरणीय है कि 'प्रतापरुद्रीयम्' तेलुगु प्रान्त मे रचित अलकारग्रन्थ है और उसका प्रभाव तेलुगु के लक्षणग्रन्थो पर पडना स्वाभाविक था। वस्तुसगठन, सर्गबन्धत्व, छन्दयोजना, शिल्पविधान आदि अन्य विशेषताओ पर उपर्युक्त लक्षणग्रन्थो में प्रकाश डाला नही गया। जैसे पहले कहा जा चुका है, काव्यशास्त्रियों के एक वर्ग ने अन्य काव्य रूपो से महाकाव्य को पृथक् करने मे वर्णनात्मकता को ही भेदक लक्षण के रूप मे ग्रहण किया होगा। तेलुगु के रीतिग्रन्थो के अलावा सृजनात्मक साहित्य मे भी इस मान्यता का आभास मिलता है। कम से कम चौदहवी शताब्दी के बाद के तेलुगु साहित्य में आधुनिक काल के आरम्भ तक वर्णनात्मकता ही महाकाव्य का मुख्य लक्षण है। वर्णनो की संख्या अष्टादश कहने पर भी कुछ कम होने की छूट भी दी गयी है। अप्पकवि नामक एक लाक्षणिक ने महाकाव्य मे वर्णनीय वस्तुओं की सूची देते हुए सख्या अठारह से बाईस तक बढाई है।[3] इससे यही स्पष्ट होता है कि वर्णनों पर अधिक बल दिया गया है और उन वर्णनो के अठारह, उससे कम या अधिक होना इतिवृत में सन्निविष्ट प्रसगों के आधार पर है।

---

1. काव्यालकारचूडामणि, तृतीय उल्लास, पृष्ठ 91
2. काव्यालकारसग्रहमु, द्वितीय आश्वास— पृष्ठ 165, 166, 167
3. अप्पकवीयमु, प्रथम आश्वास- पद्य 28

तेलुगु साहित्य का इतिहास 11 वीं शताब्दी के नन्नय भट्ट के 'महाभारत' ग्रन्थ के प्रणयन से आरम्भ होता है और तदादि निबद्ध काव्यों की एक लम्बी परम्परा अद्यावधि दिखाई पडती है। प्रौढ साहित्यिक एवं परिनिष्ठित भाषा-शैली की यह निबद्ध काव्य-परम्परा, शतककाव्य, गीत आदि मुक्तक रचनाओं की अपेक्षा साहित्यिकों का आदर पा सकी। नन्नयभट्ट, तिक्कना, एर्राप्रेगड, श्रीनाथ, श्रीकृष्णदेवराय, अल्लसानि पेद्दनार्य, पिंगलि सूरनार्य, रामराजभूषण आदि प्रतिभाशाली कवियों ने निबद्ध काव्य परम्परा को समृद्ध बना दिया था। एक हजार वर्ष की अवधि में रचित इन काव्यों में युगानुरूप धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक चेतना के फलस्वरूप वैविध्य एवं विकास का सुस्पष्ट क्रम भी दृष्टिगत होता है। कहने का यही अभिप्राय है कि पूर्ववर्ती कवियों के साहित्य से अनन्तरकालीन कवि प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित हुए और यह प्रत्यक्ष प्रभाव पूर्वकवि स्तुतियों, वर्णनों की योजना, छन्दों का विन्यास आदि से स्पष्ट होता है। प्रत्यक्ष प्रभाव का मुख्य कारण यही मालूम पडता है कि काव्यों में प्रयुक्त भाषा का रूप प्राय. एक ही प्रकार का रहा है। कवियों की निजी प्रतिभा के कारण काव्य-भाषा में नवीन गुणों का समावेश स्वाभाविक रूप से होते रहने के बावजूद भाषा की संरचना एवं व्याकरण प्राय एक ही प्रकार के रहे हैं। ठीक इसके विपरीत स्थिति हिन्दी में है। अर्थात् चन्दबरदाई के काव्य को जायसी ने, जायसी के महाकाव्य को तुलसी ने और तुलसी को केशव ने पढा हो और पढकर अपनी रचनाओं को रूप प्रदान किया हो, इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। इस स्थिति का कदाचित् यही कारण है कि हिन्दी भाषा क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत अधिक है और काव्यरचना विभिन्न उपभाषाओं में सम्पन्न होती रही। इतना ही नहीं, आदिकाल में ब्रजभाषा और अवधी के क्षेत्र में बसनेवाले कवि, किस प्रकार की रचना कर रहे थे, इस बात का कोई प्रामाणिक मूल हमारे पास नहीं है।[1] इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन के लिए बहुत कुछ कल्पना का आश्रय लेना पडा।

तेलुगु साहित्येतिहास को कुछ विद्वानों ने पुराण युग, पूर्व प्रबन्धयुग, प्रबन्धयुग, दक्षिणांध्र युग, आधुनिक (गद्य) युग के नाम से विभिन्न युगों में विभाजित किया है। इस युग-विभाजन से प्राचुर्य एवं महत्व की दृष्टि से उन कालखण्डों में रचित काव्यों के स्वरूप का भी बोध होता है। प्रथम युग में

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ 10

महाभारत, रामायण, हरिवश भागवत् आदि सस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद सम्पन्न हुआ। इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में आलोचकों का मत है कि ये काव्य मात्र अनुवाद नही है, बल्कि काव्यकलात्मक दृष्टिकोण से सग्रह, त्याग एव नवीन कल्पनाओ के माध्यम से पुराणेतिवृत्त के पुनराख्यान के रूप मे सृजित अमर कृतियाँ है।[1] नन्नय भट्ट ने अपनी कृति के अवतारिका भाग मे कहा है कि महाभारत को धर्म के तत्वज्ञ धर्मशास्त्र कहते है, अध्यात्म के वेत्ता वेदान्त कहते है, नीतिनिपुण नीतिशास्त्र कहते है, कविवृषभ महाकाव्य कहते है, लाक्षणिक लोग सभी लक्ष्यों का सग्रह कहते है, इतिहासकार इतिहास कहते है और श्रेष्ठ पौराणिक कई पुराणो का समुच्चय बताते है।[2] यद्यपि वेदव्यासकृत महाभारत के लिए ही उपर्युक्त विशेषणों का प्रयोग हुआ है तथापि नन्नयभट्ट की कृति पर ये विशेषण पूर्णरूपेण घटित होते है। ध्यान देने योग्य बात है कि उपर्युक्त कथन मे महाभारत के पुराण, इतिहास आदि अन्य पक्षो के साथ उसको महाकाव्य भी स्वीकार किया गया है।

13 वी शताब्दी के तिक्कन ने स्वरचित पन्द्रह पर्व के महाभारत के अवतारिका भाग में अपने काव्य के लिए 'प्रबन्धमण्डली' शब्द का प्रयोग किया।[3] इस प्रबन्ध-मण्डली शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य लक्ष्मीकान्तम जी ने लिखा है कि तिक्कना का महाभारत प्रबन्ध-महाचक्र है और उस काव्य मे प्रत्येक पर्व एक प्रबन्धकाव्य है। हर पर्व मे रसपोषण, पात्र चित्रण, यथोचित वर्णन एव अलंकारों की योजना की गयी है।[4]

काव्यकलात्मक स्थलों की योजना के बावजूद तेलुगु के 'महाभारत' 'हरिवश' एव 'भागवत्' की रचना मे कवियों का दृष्टिकोण स्वतन्त्ररूप मे महाकाव्य-प्रणयन का नही था, बल्कि तेलुगु भाषियो के कल्याण के लिए अथवा अपने आश्रयदाता नरेशो की इच्छा के अनुरूप सस्कृत 'महाभारत', 'भागवत्', आदि के प्रतिपाद्य को तेलुगु मे स्पष्ट करने का रहा है। यही कारण है कि तेलुगु साहित्य के इतिहास-लेखको ने महभारत, हरिवशपुराण, एव भागवत के रचनाकाल को पुराण युग और अनुवाद युग का अभिधान दिया है। 15 वी शताब्दी के श्रीनाथ ने पुराणो के अनुवाद से भिन्न

---

1 गौतमव्यासमुलु, पृष्ठ 26
2. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु—आदिपर्व, 1-32
3. वही, विराटपर्व, 1-8
4 तेलुगु विज्ञानसर्वस्वम् तीसरा भाग पृष्ठ 608

काव्यानुवाद का श्रीगणेश करके तेलुगु साहित्यिकों की दृष्टि को महाकाव्य-रचना की ओर आकर्षित किया । श्रीनाथ ने श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरित' का भाषान्तर 'शृंगारनैषधम्' के नाम से तेलुगु मे प्रस्तुत किया । तब तक काव्यशास्त्र से अनुमोदित लक्षणों का पालन करनेवाले प्रबन्धकाव्य का तेलुगु मे अभाव था । अत. श्रीनाथ विरचित शृंगारनैषध' को इस दृष्टि से महत्व दिया जाता है । यद्यपि श्रीनाथ ने नैषधकाव्य का भाषान्तरीकरण ही किया था, प्रतिभाशाली कवि होने के कारण उन्होने हृदयगम रीति से मूल रचना के अभिप्राय को पहचान कर, भाव एवं रस का पोषण करते हुए, औचित्य का आदर एवं अनौचित्य का परिहार करके अलकारों का रमणीय विधान करते हुए इस अनुवाद का निर्वाह किया ।[1] परवर्ती काव्य-रचयिताओ के सम्मुख शैली, अलंकार, छन्द, वस्तुयोजना एव रस की दृष्टि से श्रीनाथ का ही आदर्श रहा है । अर्थात् 'प्रबन्ध' नामक काव्य-विधा के सुष्ठु सुन्दर रूप मे अवतीर्ण होने के लिए श्रीनाथ युग पूर्व पीठिका के रूप में रहा है ।

तेलुगु साहित्य मे 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग आजकल एक विशिष्ट काव्य-विधा को लक्ष्य करके किया जाता है । जिस युग मे विपुलता एव गुण की दृष्टि से इस प्रकार के काव्यो की रचना उत्कर्ष को प्राप्त हुई थी, उसका व्यवहार 'प्रबन्धयुग' के नाम से इतिहास-लेखकों ने किया है । आचार्य लक्ष्मी-कातम जी के अनुसार सस्कृत मे दण्डी के द्वारा सर्गबन्ध अथवा महाकाव्य के लिए निरूपित लक्षणों को ही तेलुगु के लक्षणकारों ने 'प्रबन्ध' के लक्षणों के रूप में स्वीकार किया ।[2] दूसरे शब्दों में एक अन्य स्थान पर इस अलोचक ने इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा कि दण्डी के द्वारा निरूपित महाकाव्य को ही तेलुगु मे 'प्रबन्ध' कहा जाता है ।[3] श्री वतरां रामकृष्णराव के अनुसार भी संस्कृत महाकाव्य के लक्षण ही किंचित् भिन्नता के साथ तेलुगु के 'प्रबन्धों' पर घटित होते हैं ।[4] इससे स्पष्ट होता है कि तेलुगु का 'प्रबन्धकाव्य' सस्कृत के महाकाव्य से अधिकांश मे साम्य रखते हुए उससे कुछ अशों में भिन्न भी है ।

श्रीकृष्णदेवराय के युग मे विरचित निबद्धकाव्यों को और उस रचना-विधान को आधार बनाकर रचित परवर्ती काव्यो को आजकल 'प्रबन्ध' के

---

1. शृंगार नैषधमु—8–202
2. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु, तृतीय भाग, पृष्ठ 667
3. साहित्यशिल्प समीक्षा, पृष्ठ 188
4. 'भारती', मासिक पत्रिका, जुलाई, 1997 "इतिवृत्तनिर्वहण' नामक लेख ।

नाम से व्यवहृत किया जाता है। स्वर्गीय काटूरि वेंकटेश्वरराव जी के अनुसार वस्तु मे एकता, रसविधान मे अगागिभाव, संवादचातुर्य, रमणीय अर्थो की योजना, उपक्रम एव उपसहार से शोभित इस काव्य-विधा के लिए 'प्रबन्ध' नामक एक नूतन सकेत चल पडा।[1] उपर्युक्त परिभाषा से इस काव्य-रूप की कुछ विशेषताओ पर प्रकाश पडता है।

तेलुगु साहित्य मे प्रसिद्ध 'प्रबन्ध' काव्यो की निजी विशेषताओं और आन्तरिक प्रवृत्तियों के आधार पर आचार्य लक्ष्मीकांतम जी ने निम्नोक्त लक्षण बताये है[2]—

(1) 'प्रबन्ध' के लिए 'एकनायकाश्रयत्व' और वस्तु सम्बन्धी एकता प्रधान गुण है।

(2) यह काव्य-रूप अष्टादश वर्णनो से युक्त होता है।

(3) इसमे श्रृगार प्रधान रस है। आवश्यकता के अनुसार अन्य रसो का विधान गौणरूप मे हो सकता है।

(4) आलकारिक भाषा-शैली प्रबन्ध का प्राणतत्व है।

(5) भाषान्तरीकृत रचना 'प्रबन्ध' नही हो सकती। स्वतन्त्र कृति ही 'प्रबन्ध' हो सकती है।

तेलुगु मे श्रीकृष्ण देवराय के युग से पूर्व रचित काव्यो में रचना विधान की दृष्टि से कुछ को पुराण और इतिहास कहना अधिक समीचीन है, यद्यपि उनकी काव्यकला उच्च कोटि की है। इनमे इतिवृत्त अत्यन्त विस्तृत होता है, अवान्तर कथाओ की भरमार होती है और वस्तु सम्बन्धी एकता पर कवियो ने ध्यान नही दिया है। किन्तु नन्नेचोड विरचित 'कुमारसम्भव', श्रीनाथ का 'श्रृगारनैषध', तिक्कन का 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि अन्य रचनाएँ भी दृष्टिगत होती है, जो महाकाव्य कोटि मे स्थान पाने योग्य है। अतः महाकाव्य और 'प्रबन्ध' के बीच की विभाजक-रेखा अत्यन्त क्षीण हैं। साथ ही अनुवाद के कारण रचना के काव्यरूप मे अन्तर मानना भी युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। यही समीचीन होगा कि तथाकथित प्रबन्धो को अनन्तर-कालीन महाकाव्य कहा जाय। श्री साल्व कृष्णमूर्ति जी ने एक लेख मे इस तथ्य की ओर साहित्यिको का ध्यान आकर्षित किया है।[3]

---

1. 'तेलुगुकाव्यमाला' की भूमिका, पृष्ठ 7
2. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वम्, तृतीय भाग, पृष्ठ 608
3. तेलुगुवाणी, पृष्ठ 166

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत के महाकाव्य से पर्याप्त साम्य रखते हुए भी तेलुगु के तथाकथित 'प्रबन्ध' कुछ अंशों में उससे भिन्न होते है। इस भिन्नता को द्योतित करने के लिए ही नवीन आलोचकों ने 'प्रबन्ध' नामक विशिष्ट काव्य-विधा की परिकल्पना की है। वास्तव में महाकाव्य का स्वरूप परिस्थितिसापेक्ष होकर विकसित होता रहा है। संस्कृत भाषा मे भी महाकाव्य का स्वरूप समय की गति के अनुसार नवीन विशेषताओं को आत्मसात् करके विकासशील रहा है। देशी भाषाओं मे आकर इस विधा का नवीन रूप और अधिक स्पष्ट हुआ है। अत आचार्य लक्ष्मीकान्त जी ने यह स्वीकार किया है कि महाकाव्य को ही तेलुगु में 'प्रबन्ध' कहा जाता है।

आचार्य लक्ष्मीकातम जी के विश्लेषण मे तेलुगु महाकाव्य के आन्तरिक लक्षणों का निरूपण हुआ है। सर्गबन्धत्व, छन्दविधान, मंगलाचरण, गद्यपद्य की मिश्रित चम्पू शैली आदि बाह्य लक्षणो का विवेचन नहीं हुआ। तेलुगु के महाकाव्यों को सर्गों मे नहीं प्रायः आश्वासों मे विभाजित किया गया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य संस्कृत मे सर्गबद्ध, प्राकृत मे आश्वास बद्ध और अपभ्रंश में कुडवकबद्ध होते है।[1] इस विषय में तेलुगु महाकाव्य प्राकृत महाकाव्यों का अनुगमन करते है। तेलुगु महाकाव्यों में प्राय आठ से अधिक आश्वासों का विधान नहीं है। नन्नेचोड कृत 'कुमारसम्भव' मे द्वादश आश्वास है और तिक्कन के निर्वचनोत्तररामायण मे दश आश्वास है। इन दोनों को अपवाद माना जा सकता है। 'मनुचरित्र' 'वसुचरित्र' और 'आमुक्त-माल्यदा' मे छः, 'कलापूर्णोदय' मे आठ 'पारिजातापहरण' मे चार तथा 'पांडुरंगमाहात्म्य' में पाँच आश्वासों की योजना है। इसके विपरीत संस्कृत के महाकाव्यों मे आठ और आठ से अधिक सर्गों का विधान दृष्टिगत होता है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' मे सत्रह, 'रघुवंश' मे उन्नीस, 'किरातार्जुनीय' मे अठारह, 'शिशुपालवध' में बीस और 'नैषधीयचरित' में बाईस सर्गों की योजना है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षण ही यह प्रतिपादित करता है कि महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होते है।[2] इससे स्पष्ट है कि तेलुगु के महाकाव्य प्रायः विस्तृति में संस्कृत के महाकाव्यों से भिन्न हैं।

संस्कृत के महाकाव्यों मे एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन का विधान दृष्टिगत होता है। इस विषय मे

---

1. साहित्यदर्पण, 6/326
2 सर्गाअष्टाधिका इह—साहित्यदर्पण, 6/320

तेलुगु के महाकाव्य संस्कृत महाकाव्यो से भिन्नता रखते हैं। क्योंकि एक आश्वास मे एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग नही, बल्कि एक से अनेक छन्दो का प्रयोग प्रत्येक आश्वास मे किया गया है। जहाँ एक ही प्रकार का छन्द 'द्विपद' मे पूरे महाकाव्य का निर्वाह किया गया है, वहाँ छन्द-परिवर्तन का प्रश्न नही उठता। हिन्दी के महाकाव्यो मे 'पृथ्वीराजरासो' 'रामचन्द्रिका' आदि छन्दो की विविधता के लिए विख्यात है। आचार्य हजारीप्रसाद के अनुसार अनेक छन्दो मे कथा कहने की प्रथा केशवदास की अपनी चलाई हुई नही है। 'करकंडुचरिउ' 'णयकुमारचरिउ' आदि में छन्द बदलने की प्रवृत्ति मिलती है।[1] अत स्पष्ट है कि हिन्दी, तेलुगु और अपभ्रंश के कुछ महाकाव्यो मे छन्दवैविध्य की पद्धति भी दृष्टिगत होती है। कहने का यही अभिप्राय है कि देश और काल के अनुसार महाकाव्य के स्वरूप मे विकास होता गया है और यह विकास छन्दोयोजना मे भी दृष्टिगत होता है।

गद्य-पद्य-मिश्रित चम्पूशैली तेलुगु के अधिकाश महाकाव्यो की विशेषता है। संस्कृत महाकाव्यो मे पद्य ही पद्य है, गद्य का बिलकुल अभाव है। हिन्दी के सभी महाकाव्यो मे यद्यपि गद्य का विधान दृष्टिगत नही होता तथापि प्रकारान्तर से 'वचनिका' के नाम से 'पृथ्वीराजरासो' और 'हम्मीररासो' मे कही-कही गद्य के दर्शन होते है। अपभ्रंश भाषा मे रचित विद्यापति की कीर्तिलता मे पद्यो के बीच-बीच में अलंकृत गद्य दिखाई पड़ता है। तेलुगु के महाकाव्यों मे भी प्राचुर्य की दृष्टि से पद्यों की मात्रा ही अधिक है, परन्तु बीच मे यत्र-तत्र अलंकृत गद्यखण्डो का भी विधान किया गया है। वास्तव मे तेलुगु साहित्य के आरम्भ से ही गद्य-पद्य की मिश्रित शैली प्रचलित हो गयी। तेलुगु के पूर्व साहित्यारूढ कन्नड भाषा के ग्रन्थो मे इस मिश्रित शैली का प्रयोग हुआ था।[2] कन्नड के प्रभाव मे तेलुगु के काव्यग्रन्थो मे यह शैली परम्परा रूप मे अनुस्यूत हुई। तिक्कनामात्य के द्वारा विरचित 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि कृतियाँ इस प्रवृत्ति के अपवाद है। 'निर्वचन' शब्द का अर्थ है गद्यविहीन। साहित्य मे प्रचलित सामान्य प्रवृत्ति से भिन्न अपनी कृति की विशिष्टता का द्योतन करने के लिए ही कवि ने 'निर्वचन' शब्द का प्रयोग किया, अन्यथा इस शब्द के प्रयोग की आवश्यकता ही नही थी। इस चम्पू-शैली की दृष्टि से भी तेलुगु के महाकाव्य संस्कृत महाकाव्यो से भिन्न हैं। विकास की इस प्रक्रिया मे

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ 103
2. 'हिन्दी साहित्यकोश', पहला भाग, पृष्ठ 189

एक सीढी आगे बढकर पाश्चात्य समीक्षकों ने यह बताया कि महाकाव्य की रचना गद्य मे भी सम्भव है।[1]

तेलुगु के महाकाव्यो मे मगलाचरण की काव्यरूढि मिलती है। इसमे 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशोवापितन्मुखम्' वाले दण्डी के लक्षण का पालन किया गया है। मध्यकाल तक के भारतीय महाकाव्यो में मगलाचरण की रूढि प्राय सभी भाषाओ में दिखायी पडती है। इसके अतिरिक्त तेलुगु के महाकाव्यो मे विस्तृत 'अवतारिका' (भूमिका भाग) का विधान भी एक उल्लेखनीय विशेषता है। अवतारिका मे निम्नाकित अंशो की योजना की गयी है—(1) इष्टदेवता की वन्दना, (2) गुरु की वन्दना, (3) पूर्व कवियो की स्तुति, (4) सुकवि स्तुति, (5) कुकवि निन्दा, (6) सत्कविता के आवश्यक गुणो का कथन, (7) प्रस्तुत काव्य मे कवि का दृष्टिकोण एव काव्य की विशिष्टता का कथन, (8) कवि का वश परिचय, (9) काव्यरचना का प्रेरक स्वप्नवृत्तान्त अथवा आश्रयदाता नरेश या मन्त्री की अभ्यर्थना, (10) अभ्यर्थना के प्रसग मे कवि का सम्मान, (11) आश्रयदाता का वंश परिचय, उसकी वितरणशीलता, पराक्रम, साहित्यानुराग आदि का कथन, (12) षष्ठ्यन्त,[2] (13) मानवों को काव्य समर्पित करने की पद्धति की निन्दा आदि अन्य विषय। तेलुगु के महाकाव्य-स्रष्टाओ ने एक स्वतन्त्र और अभिनव इकाई के रूप में अवतारिका भाग को विकसित किया है। संस्कृत के महाकाव्यो मे इतने अशों से समृद्ध अवतारिकाएँ नही मिलती।

निष्कर्ष :

हिन्दी और तेलुगु मे महाकाव्य के बाह्य लक्षण एवं काव्य-रूढियाँ भिन्न-भिन्न परिवेश और परम्परा के अनुसार विकसित हुई हैं। वातावरणगत साम्य एव भिन्नता के अनुरूप काव्य-रूढियों के पालन मे साम्य और अन्तर स्वाभाविक है। एक ही भाषा क्षेत्र मे भी महाकाव्य के बाह्य लक्षणो मे भेद हो सकता है, जैसे 'पद्मावत' में 'मुहम्मद साहब' की वन्दना और शाहेवक्त की प्रशसा है, जिसका 'रामचरितमानस' मे अभाव है। 'पृथ्वीराज रासो' मे छन्द-वैविध्य है तो 'पद्मावत' में दोहा और चौपाई को छोडकर तीसरे प्रकार

---

1. 'दि इगलिश एपिक एण्ड इट्स बैकग्राउण्ड', पृष्ठ 182
2. षष्ठी विभक्ति से समाप्त होनेवाले छन्दो का विधान। इस अंश के अन्तर्गत काव्य के सरक्षक नरेश या भगवान के गुणों का वर्णन किया गया है।

के छन्द का प्रयोग नही हुआ है। आचार्य विश्वनाथ के लक्षण के अनुसार एक सर्ग मे एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग होना चाहिए। किन्तु हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यो ने इस नियम का अतिक्रमण किया है। इस प्रकार महाकाव्य के बाह्य लक्षणो मे स्थिरता नही होती। काव्य ग्रन्थो के महाकाव्यत्व के निर्णय मे ये लक्षण उपयुक्त नहीं है। आन्तरिक स्वरूप का निरूपण करनेवाले शाश्वत लक्षणों का आधार ग्रहण करना ही समीचीन होगा।

वस्तु, नेता और रस से सम्बन्धित लक्षण महाकाव्य के आन्तरिक लक्षण है, जो शाश्वत है, अर्थात् देश-काल के अन्तर से इनके मूल रूप में परिवर्तन नही होता। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के और शैली-शिल्प के काव्यों को 'महाकाव्य के अन्तर्गत समाविष्ट करने के आधार ये ही शाश्वत लक्षण है। साथ ही अभिव्यक्ति संबंधी उदात्तता और मुक्तकेतर रूप मे प्रबधत्व या निबद्धता भी महाकाव्य के अनिवार्य लक्षण है। अभिव्यक्ति मे उदात्तता शिष्ट जनोचित सालकार भाषा के प्रयोग से होती है। इन विशेषताओ का समाहार करते हुए कहा जा सकता है कि महाकाव्य ऐसा निबद्ध काव्य रूप है, जिसमे प्रख्यात या काल्पनिक आदर्शमय महान नेता से सबधित विस्तृत इतिवृत को संगठित एव रसात्मक भव्य रूप मे शिष्ट जनोचित सालकार शैली मे वर्णित किया जाता है।

द्वितीय अध्याय

महाकाव्य-सृजन की पृष्ठभूमि

हिन्दी और तेलुगु मे महाकाव्य के सृजन के लिए उत्तरदायी एव इस काव्य-विधा के स्वरूप को प्रभावित करनेवाली राजनैतिक, धार्मिक एव साहित्यिक परिस्थितियो का अनुशीलन इस अध्याय मे अभीष्ट है। इन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के आधार पर ही महाकाव्य का प्रणयन आलोच्य भाषाओ मे सम्पन्न हुआ। इन दोनों भिन्न भाषा-क्षेत्रो मे वातावरण की दृष्टि से जो साम्य और वैषम्य रहे है, उनको अवगत करना महाकाव्य के स्वरूप मे लक्षित समानताओ एव विषमताओ को समझने के लिए आवश्यक है। वास्तव मे कोई भी साहित्य तत्कालीन सामाजिक चेतना एव परम्परा के रूप मे प्राप्त वैचारिक, धार्मिक, कलात्मक मान्यताओ से असम्पृक्त नही रह सकता। साहित्यकार परम्परागत तत्वों को अपने रचनात्मक व्यक्तित्व एव कलात्मक दृष्टिकोण के अनुरूप या तो आशिक रूप मे स्वीकार करता है अथवा सामयिक आवश्यकता के अनुसार विद्रोह प्रकट करके नई परम्पराओ का सूत्रपात करता है। इन दोनो स्थितियो मे वातावरण का प्रभाव साहित्यिक-सृजन पर अनिवार्य रूप से पडता है।

राजनैतिक परिस्थितियाँ :

मध्यदेश का शासन करनेवाले हिन्दू राजाओ के समय में साहित्य एव कला को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। भारत मे साहित्य को प्राप्त राजाश्रय की परम्परा बडी लम्बी है। कवि लोग चाटुकारितावश ही राजाओं की स्तुति करते रहे हो, यह मानना ठीक नही है। हमारे यहाँ राजाओ को भगवान के सदृश मानकर राजभक्ति को जनमानस मे एक भव्य आदर्श के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। 'ना विष्णु. पृथिवीपति' वाली मान्यता से परिचालित होकर ही साहित्य मे राजाओ का चरित्राकन निष्ठापूर्वक किया जाता था। कविवर कालिदास ने 'रघुवश' महाकाव्य मे बडे उदात्त रूप मे रघुवंशी राजाओ को चित्रित किया है।[1] कालिदास के अनुसार राजा मे सभी दिक्पालो के अंश विद्यमान रहते है। वैदिक विधिविधान से मूर्धाभिषिक्त, राजसूय एव अश्वमेध जैसे ऋतुओ को सम्पन्न करनेवाले राजाओं के प्रति जनता के मन मे श्रद्धा एव विश्वास का रहना स्वाभाविक था।

हिन्दी के पहले प्रचलित सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रश भाषाओ के विशाल

---

1. त्यागाय सभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्
   यशसे विजिगीषूना प्रजायैगृहमेधिनाम्। —रघुवश 1-7

साहित्य के प्रणयन एवं प्रसार के लिए शासको का विद्यानुराग ही उत्तरदायी रहा है। अश्वघोष को कनिष्क का, कालिदास को गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त का, बाणभट्ट को हर्षवर्द्धन का आश्रय प्राप्त था। 'नैषधीयचरित' के कवि भट्टहर्ष को कान्यकुब्जेश्वर की सभा मे अतीव सम्मान प्राप्त था, जिसका उल्लेख कवि ने स्वय किया है—

ताम्बूलद्वय मासनंच लभते यः कान्यकुब्जेश्वरा
द्य साक्षात्कुरुते समाधिषु परब्रह्म प्रमोदार्णवम्
यस्काव्यं मधुवर्षित परास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्री श्रीहर्ष कवे कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥[1]

आठवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कन्नौज के राजा यशोवर्मा विख्यात था, जिससे पूर्वदिशा मे दिग्विजय करते हुए मगध को अपने अधीन मे करके बगाल की भी विजय की थी। इस विजय का वृत्तान्त कवि वाक्पतिराज ने प्राकृत भाषा के लब्धप्रतिष्ठ महाकाव्य 'गौडवहो' मे विस्तारपूर्वक लिखा है। 'गौडवहो' के रचयिता वाक्पति राज यशोवर्मा के आश्रय में रहता था।[2] सस्कृत के प्रसिद्ध कवि भवभूति भी यशोवर्मा की राजसभा में रहता था।

सभी राजा लोग न केवल साहित्य के पोषक थे, परन्तु कुछ स्वय काव्य-रचना भी किया करते थे। कान्यकुब्जेश्वर हर्षवर्द्धन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह राजकवि सस्कृत भाषा मे 'रत्नावली'; 'प्रियदर्शिका' एव 'नागानन्द' नामक दृश्यकाव्यो का प्रणेता है। कविवर बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के द्वारा साहित्यसंसार में हर्षवर्द्धन को अजर एवं अमर बना दिया है। इसी प्रकार उत्तर भारत एव दक्षिणापथ को एक शासन मे लानेवाले प्रतापी शातवाहन राजवश का 'हाल' नामक राजा प्राकृत भाषा मे अपनी कवित्व-शक्ति के लिए प्रख्यात है। हाल शातवाहन के द्वारा 'गाथा सप्तशती' का सम्पादन किया गया था। विद्वानों की यह भी धारणा है कि कुछ स्वरचित गाथाओ को भी हाल ने 'सप्तशती' में निबद्ध किया है। शासको का प्रभाव साहित्य-सर्जना पर तीन रूपो मे दृष्टिगोचर होता है। एक तो राजा लोग स्वय कवि होने के कारण काव्य-ग्रन्थ लिखते थे। राजसी वातावरण एव राजन्य वर्ग की मनोभावनाओ के अनुरूप ही उस साहित्य का रूपायित होना स्वभाविक था।

शासको का प्रभाव कवियो को आश्रय देने में भी लक्षित होता है। गुण-

---

1. नैषधीयचरित—22-153
2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 274

ग्रहण-पारीण राजाओं के सरक्षण में कवित्व का विकास सम्पन्न हुआ। इसके अलावा राजाओ के समकालीन तथा अनन्तरकालीन कवियो के द्वारा वीरता, पराक्रम, लोकसग्रह, दुष्टशिक्षण आदि भव्य आदर्शों के मूर्तिमान् प्रतिरूप राजाओ के चरित्र की अवतारणा को ध्यान मे रखकर ऐतिहासिक महाकाव्यो की रचना की गयी। किन्तु यहाँ पर स्मरणीय है कि प्राचीनकाल मे इतिहास को आधुनिक अर्थ में कभी नही लिया गया। इतिहास के तथ्यो को चारुत्व सम्पादन के हेतु कला के परिधान से सज्जित करने मे कवियो ने कल्पना का बहुत कुछ उपयोग किया। अत. "भारतीय कवियो ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है, जिसमे काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण-सग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम, सम्भावनाओ की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओ की ओर कम, उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम।[1]"

ईसा की सातवीं शताब्दी से बारहवी शताब्दी के अन्त तक के समय को इतिहासविद् राजपूतकाल मानते है और इस अवधि मे हमारे देश पर प्राय: राजपूत जाति का आधिपत्य था। इसके उपरान्त तेरहवी शताब्दी से तुर्कों के आगमन के फलस्वरूप भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ। यद्यपि ग्यारहवीं शताब्दी मे महमूद गजनवी ने सौराष्ट्र पर आक्रमण करके प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर को नष्ट करके अपार धन-सम्पत्ति को लूट लिया था तो भी उसने भारत मे रहकर शासन नही किया था। गजनी मे उसने विद्याओ का पोषण किया। फारसी के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' के रचयिता फिरदौसी महमूद गजनवी की राजसभा मे रहता था। फिरदौसी के अतिरिक्त अलबेरूनी, फरूकी आदि विद्वान् भी गजनवी की सभा को सुशोभित करते थे। कहा जाता है कि अलबेरूनी सस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित था।

इसी मुस्लिम राज्यकाल में हिन्दी भाषा साहित्यारूढ़ हुई। हिन्दी साहित्य के आरंभ के विषय मे विद्वानों में मतभेद है। डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिन्दी साहित्य का आरभ अधिक से अधिक नाथ पथी साहित्य से माना जाता है और यह सिद्ध साहित्य सं. 750 से 1200 तक व्याप्त है।[2] आचार्य

---

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य', पृष्ठ 68
2. हिन्दी साहित्य- द्वितीय खण्ड-प्रस्तावना- पृष्ठ 4

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "वस्तुत छन्द, काव्यरूप, काव्यगत रूढियों और वक्तव्य वस्तु की दृष्टि से दसवीं से चौदहवी शताब्दी तक का लोकभाषा का साहित्य परिनिष्ठित अपभ्रश मे प्राप्त साहित्य का ही बढाव है, यद्यपि उसकी भाषा उक्त अपभ्रश से थोडी भिन्न है।'[1] एक मान्यता यह भी दिखाई पडती है कि बारहवीं शती के अन्तिम चरण से हिन्दी साहित्य का आविर्भाव मानना तर्कसंगत है। क्योंकि इसके पूर्व का समय हिन्दी की प्रामाणिक रचनाओ की दृष्टि से शून्य है और उसे हिन्दी साहित्य की काल सीमाओ के बाहर समझना चाहिए।[2] इतना ही नहीं भाषा की दृष्टि से हिन्दी धीरे-धीरे 1500 ई. तक आते-आते अपने पैरो पर खड़ी हो गई।[3] हिन्दी साहित्य का आरभ चाहे सातवी शताब्दी से माना जाय तो भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उसका उत्कर्षकाल तो मुस्लिम राज्यकाल के अन्तर्गत है।

मुस्लिम शासको के राजत्व काल मे भारतीय विद्याओं को भी राजकीय सरक्षण प्राप्त था। जहांगीर और शाहजहाँ के कला तथा साहित्य प्रेमी होने के उल्लेख इतिहास ग्रन्थो मे मिलते है। अबुल फजल आदि मुसलमान विद्वानों के साथ-साथ तानसेन और पडितराज जगन्नाथ को दिल्लीश्वरों का सम्मान मिला था। अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओ के अलावा गीर्वाण वाणी भी समादृत रही है। फारसी भाषा की विदेशी शैली के अलावा भारतीय शब्दो के अच्छे खासे प्रयोग से फारसी की एक भारतीय शैली का भी विकास हुआ। केवल भाषा तक सीमित नही होकर आदान-प्रदान साहित्य, शिल्प सगीत, वास्तु आदि कलाओं मे भी सम्पन्न होता रहा। अमीर खुसरो की फारसी की मसनवी शैली मे रचित देवल रानी 'खिज्रखा' नामक ऐतिहासिक काव्य, शैली और विषय वस्तु दोनो मे ही मुल्ला दाउद, कुतुबन, मझन और जायसी के लिए पथप्रदर्शक बना। इस ऐतिहासिक काव्य की कथावस्तु सुलतान अलाउद्दीन और उसके पुत्र खिज्रखां से सम्बन्धित है। भारतीय वेदान्त और इस्लाम के सिद्धान्तों के समन्वय से निर्मित सूफी साधनापरक रहस्यवाद और उसके प्रचार के लिए स्वीकृत सूफी प्रेमाख्यानो के प्रणयन का श्रेय भारत मे मुसलमानो की राजसत्ता की सुस्थिरता को ही दिया जा सकता है।

मध्यदेश में राजसत्ता मुसलमानो के अधीन रही और हिन्दू धर्म

1 हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 29
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ 110
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास (स डा नगेन्द्र) पृष्ठ 32

शासितों का धर्म रह गया, जिसकी ओर उपेक्षात्मक ही नहीं, बल्कि विध्व-सात्मक दृष्टिकोण राजाओं का रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जनता की इस पराजित मन स्थिति का सम्बन्ध भक्तिकाव्य की मूल चेतना से जोडा है।[1]

मुसलमानों के शासन से असन्तुष्ट होकर हिन्दुत्व की रक्षा के लिए शिवाजी, छत्रसाल, हम्मीरदेव, राजसिंह आदि प्रतापी राजाओं ने विरोध किया। भूषण, गोरेलाल, मान आदि के द्वारा प्रणीत वीरकाव्य धारा मे महान लोकरक्षक हिन्दू-नरेशो के वीर चरित्र की अवतारणा के रूप मे काव्य रचना सम्पन्न हुई थी।

यद्यपि तेलुगु भाषी क्षेत्र पर विभिन्न राजवंशो ने शासन किया था, तथापि तेलुगु साहित्य का अभ्युदय चालुक्य-नरेशो के राज्यकाल मे ही सम्पन्न हुआ। 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के स्रष्टा नन्निचोड ने तेलुगु साहित्य के सरक्षक के रूप मे चालुक्य-नरेश का उल्लेख किया है।[2] राजराज नरेन्द्र नामक चालुक्य वशीय राजा के संरक्षण मे ही तेलुगु के आदिकवि नन्नय भट्ट ने महाभारत की रचना आरम्भ की।

चालुक्य नरेशो के उपरांत सस्कृत एव तेलुगु साहित्य, धर्म एव ललित कलाओ के सवर्धन मे योग देनेवाले प्रमुख राजा काकतीय एव रेड्डी वशो के थे। काकतियों के राजत्वकाल मे अर्थात् चौदहवीं शताब्दी तक के समय में शैव धर्म एव शैव साहित्य का उत्कर्ष हुआ था। पडिताराध्य, पालकुरिकि सोम, नन्निचोड नामक कवियो ने शिवसम्बन्धी इतिवृत्त को ग्रहण करके तेलुगु साहित्य मे काव्य रचे थे। इसके अलावा महाभारत के पन्द्रह पर्वों के प्रणेता, प्रख्यात कवित्रय मे कालक्रम की दृष्टि से द्वितीय होने पर भी महत्व की दृष्टि से अद्वितीय तिक्कन सोमयाजी का भी यही समय रहा है। काकतीय वश के प्रतापी राजा गणपति देव के द्वारा महाकवि तिक्कना को प्रदत्त समादार का वर्णन कासे सर्वप्पा नामक कवि ने किया।[3] काकतीयो के समय में ही सस्कृत भाषा मे विद्यानाथ नामक आचार्य ने 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' नामक अलकार ग्रन्थ का प्रणयन किया था। विद्यानाथ ने काव्य लक्षणों के उदाहरण काकतीय प्रतापरुद्र से सम्बद्ध करके स्वकीय छन्दो में प्रस्तुत किये।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 56
2. नन्नेचोड का कुमारसम्भव—1-23
3. सिद्धेश्वर चरित्र. पृष्ठ 114

लक्षण ग्रन्थो की इस शैली से काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो के प्रतिपादन के साथ आश्रयदाता नरेश की प्रशस्ति का भी निर्वाह हुआ है।

काकतीयो के राज्य के पतन के उपरान्त मध्यान्ध्रदेश मे लगभग एक शताब्दी तक रेड्डीवश के नरेशों का प्रभुत्व रहा। इन रेड्डी राजाओ मे कला एव साहित्य के पोषण की दृष्टि से प्रोलय वेमारेड्डी, मल्लारेड्डी, अनवेमारेड्डी, कुमारगिरिरेड्डी, पेदकोमटि वेमारेड्डी, वीरभद्रारेड्डी प्रमुख है। रेड्डीवश के इन राजाओ ने 'आन्ध्रदेशाधीश्वर' नामक उपाधि को धारण किया था। उस समय के राजाओ की 'सर्वज्ञ' उपाधि उनकी विद्वता की ओर सकेत करती है। राजाओं के विद्यानुराग के ही कारण तत्कालीन विद्यालयों मे वेद, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक षट्दर्शन आदि का पठन एव पाठन के रूप मे प्रचार था। रेड्डी नरेशो के सरक्षण मे महादेव, बाल सरस्वती, त्रिलोचनाचार्य, वामन भट्टबाण आदि कवि सस्कृत मे रचना किया करते थे। कुमारगिरि रेड्डी ने 'वसन्तराजीय' के नाम से उत्तम नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया था। काटय वेमारेड्डी ने कालिदास के नाटको की व्याख्या 'कुमारराजीय' नाम से प्रस्तुत की। पेद कोमटि वेमारेड्डी ने 'सगीत चिन्तामणि', 'साहित्य चिन्तामणि', 'वीरनारायणचरित', 'सप्तशतीसारटीका', 'शृगारदीपिका' आदि ग्रन्थ रचे थे। रेड्डी नरेशो के युग मे 'श्रीनाथ' एव एर्राप्रेगड' नामक तेलुगु कवि आन्ध्र साहित्य की अनुपम विभूति हैं।

दक्षिण भारत मे ईस्वी 1337 से 1676 तक लगभग साढे तीन शताब्दी का एक वैभवपूर्ण युग दिखाई पड़ता है, जो धर्म, साहित्य और अन्य विभिन्न ललित कलाओं के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। यह युग विजयनगर साम्राज्य का युग है। आचार्य लक्ष्मीकातम् जी ने इस युग की तुलना अग्रेजी साहित्य के 'एलिजबेत' युग से की है।[1] राजनैतिक दृष्टि से सुस्थिर शासन के जिस युग मे उत्तर के मुसलमान शासकों के उपद्रव से देशी संस्कृति निर्भय रूप मे रही और जनता उत्साही, वीर एव कार्यशूर होकर धन-वैभव से अत्यन्त सुखमय जीवन बिता रही थी, उस युग मे साहित्य का उत्कर्ष स्वाभाविक था। तेलुगु साहित्य के अभ्युदय की दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत महाकाव्य-रूप के उत्कर्ष एव वैविध्य की दृष्टि से भी विजयनगर साम्राज्य का युग महत्वपूर्ण है।

विजयनगर साम्राज्य के अनन्तर काल मे तेलुगु की साहित्यसरस्वती की

---

1 तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु तृतीय भाग पृष्ठ 609

आराधना तेलुगु भाषी प्रान्त से बाहर तमिलभाषी प्रान्त मे गुणग्राहक राजाओं ने की थी। सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण से लेकर 150 वर्ष तक के समय मे तेलुगु साहित्य एव उसकी विभिन्न काव्य-विधाओ का प्रणयन मुख्य रूप से राजकीय सरक्षण में तमिल प्रान्त मे सम्पन्न हुआ था।[1] तेलुगु भाषी प्रान्त के दक्षिण मे इन केन्द्रों की भौगलिक स्थिति के कारण तेलुगु के साहित्येतिहास मे इस युग को दक्षिणान्ध्रयुग कहा जाता है। इस युग मे तेलुगु साहित्य को प्रोत्साहन तेलुगु भाषी राजाओ ने ही नहीं दिया, प्रत्युत महाराष्ट्र राजाओ ने भी दिया। तजावूर के शासको मे रघुनाथ भूपाल और विजयराघव नायक अपने काव्यप्रेम तथा सगीतप्रेम के लिए विख्यात रहे है। रघुनाथभूपाल के कवि होने के कारण तेलुगु भाषा में 'वाल्मीकिचरित्र', 'शृगार-सावित्री', एवम् 'रघुनाथ-रामायण' नामक काव्यग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'पारिजाता-पहरण', 'अच्युताभ्युदय', 'रुक्मिणी श्रीकृष्ण विवाह यक्षगान', 'गजेन्द्रमोक्ष' एवम् 'जानकीपरिणय' नामक काव्यो के रचयिता के रूप मे भी रघुनाथ नायक का उल्लेख किया जाता हैं, यद्यपि उपर्युक्त रचनाएँ इस समय उपलब्ध नही होती हैं।[2] रघुनाथ नायक की सभा मे बिलसित रामभद्राबा एवम् मधुरवाणी नामक कवयित्रियो ने साहित्य-सर्जना करके तत्कालीन परिस्थियों मे नारियो के साहित्यिक कृतित्व का परिचय दिया है। राजभद्राबा के द्वारा विरचित 'रघुनाथाभ्युदय' नामक बारह सर्गो का ऐतिहासिक महाकाव्य सस्कृत भाषा मे प्रसिद्ध है, जिसके विषय में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि रघुनाथ-भूपाल का जीवनचरित्र, वश, सभा, सभा-कवि तथा राजसी वैभव का बडा ही सच्चा चित्र चित्रित किया गया है—'···इसे हम चरितकाव्यो की श्रेणी मे रख सकते है।[3] इसके अतिरिक्त मधुरवाणी नामक कवयित्री के द्वारा तेलुगु के 'रघुनाथ रामायण' के सस्कृतीकरण का उल्लेख मिलता है और जो अधूरा ग्रन्थ प्राप्त हो सका है, उसमे 14 सर्ग तथा 1500 श्लोक है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार काव्यकला की दृष्टि से यह ग्रन्थ अतीव उत्तम है।[4] कहा जाता है कि रघुनाथ नायक ने राजसभा मे मधुरवाणी को 'कनकाभिषेक' से समादृत किया था।[5] इसके अलावा रघुनाथ के राजदरबार मे कृष्णाध्वरी

---

1 तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु—तृतीय भाग, पृष्ठ 617

2. तेलुगुवाणी, पृष्ठ 148

3. सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 282

4. वही, पृष्ठ 282 5. तेलुगु वाणी, पृष्ठ 184

एव चेमकूर वेंकटकवि नामक तेलुगु के सिद्धहस्त् कवि भी वर्तमान थे। रघुनाथ-नायक के उपरान्त उस नायक वश मे विजयराघव नायक एवम् मन्नारूदास ने भी साहित्य एवम् कला को प्रश्रय दिया था। नायक वश के राजाओ के उपरांत तजावूर का शासन अठारहवी एव उन्नीसवी शताब्दियो मे महाराष्ट्र राजाओ ने किया था। महाराष्ट्र प्रान्त के मूलनिवासी होते हुए भी शाह जी, तुलजा जी, एकोजो, प्रतापसिह, शरभोजी नामक राजाओ ने तेलुगु साहित्य की जो सेवा की थी और काव्य-रचना को जो आदर प्रदान किया था, वह अतुलनीय है।

साम्राज्य के अधिनेता राजाओ मे कुछ ने स्वयं काव्य रचना करके साहित्य की श्रीवृद्धि की थी। राजाओं के इस काव्यगीत प्रियत्व को नायक के आवश्यक गुणो मे एक माना गया है।[1] कीर्ति प्राप्ति के अतिरिक्त अपने वश के पूर्वपुरुषो की यशोमय गाथाओ को काव्यबद्ध रूप मे सुनने तथा धार्मिक दृष्टिकोण से भी प्रेरित होकर राजाओ ने साहित्यकारो को प्रोत्साहन दिया था। ग्यारहवी शताब्दी का चालुक्यवशीय राजराज नरेन्द्र तेलुगु भाषा मे महाभारत का श्रवणाभिलाषी था। राजराज ने नन्नयभट्ट से यह निवेदन किया था—'ब्राह्मणों की आराधना करना, पार्वती पति शिव के चरण कमलो की पूजा, महाभारत श्रवणासक्ति, साधुसागत्य, सन्तत दानशीलता ये पाँचों मेरे लिए अत्यन्न प्रिय विषय है। मैने परिशुद्ध मति से अनेकों पुराणो का श्रवण किया, धर्मशास्त्र का विधान हृदयगम कर लिया, उदात्त एव रसान्वित काव्य तथा नाटको के क्रम भी मैंने अनेक देखे है। भक्तिपूर्वक अपना हृदय शैवागमो मे स्थिर किया परन्तु मेरे हृदय में 'महाभारत' के प्रतिपाद्य को सुनने की अभिलाषा अनवरत रूप से है।[2] इस अभिलाषा का एक अन्य कारण महाभारत के रूप मे राजराजनरेन्द्र के पूर्व पुरुषो के इतिहास का वर्णित होना भी है, क्योकि राजराजनरेन्द्र चन्द्रवश का राजा था।[3] और महाभारत के चरित्र-नायक पाण्डव एवं कौरवों का वश भी चन्द्रवश है। अत अपने कुलब्राह्मण नन्नयभट्ट से राजराजनरेन्द्र ने विनय की—'हिमकर (चन्द्रमा) से लेकर पूरू, भरत, कुरू एव पाण्डु भूपति तक अनुस्यूत हमारे पवित्र वश मे प्रसिद्ध

---

1. प्रतापरुद्रयशोभूषण—नायक प्रकरण 21 तथा
   काव्यालकारचूडामणि, तृतीयोल्लास—3
2. श्रीमदान्ध्रमहाभारमु—आदिपर्व, प्रथमाश्वास, 10-12
3 वही पद्य, 3

तथा विमल गुणो से सुशोभित पाडवों का चरित निरन्तर रूप से सुनना मेरे लिए अभीष्ट है। मेरा चित्त भी भारत कथाश्रवण-प्रवण है। अतएव कृष्ण-द्वैपायन द्वारा महाभारत मे निरूपित विषय को तेलुगु भाषा मे अपने धीचातुर्य से सुस्पष्ट ढग से रचना कीजिए।[1] इस प्रकार की अभ्यर्थनाओ मे आश्रय-दाता नरेशों की कीर्तिकामना, धार्मिक अनुरक्ति तथा साहित्यानुराग मुखरित हुआ है।

सोलहवीं शताब्दी मे एक मान्यता यह भी प्रचलित थी कि पृथ्वी पर शाश्वत रूप से यश प्रतिष्ठित होने के लिए सात साधनो का आश्रय लेना चाहिए। इन सात साधनो मे काव्य को श्रेष्ठ माना गया और इन साधनों को 'सप्त सतान' के नाम से अभिहित किया जाता था। अप्पकवि नामक लाक्षणिक एव नन्नेचोड कवि के अनुसार तटाक (तालाब), धन, अग्रहार'[2] मंदिर, उद्यानवन, पुत्र तथा काव्य ये सातों सप्तसतान है।[3], राजा श्रीकृष्ण देवराय ने अल्लसानि पेद्दनार्य से यो निवेदन किया था—'सप्त सतानो मे प्रसिद्धि पाकर अन्य साधनो की तुलना मे शाश्वत रूप से पृथ्वी पर रहनेवाला काव्य ही है। अत मेरे लिए शिरीष कुसुम के समान पेशल एव सुधा की भाति मधुर उक्तियों से काव्य-रचना करे। आप हमारे हितैषी हैं, चतुर वचोनिधि है, पुराण आगम एव इतिहास की कथाओ के अद्वितीय ज्ञाता है। आन्ध्र-कविता-पितामह हैं और कविमूर्धन्य है।[4] राजाश्रय मे रचित होने पर भी तेलुगु के महाकाव्य नरेशो की मात्र प्रशस्तियाँ अथवा चाटुकारितापूर्ण रचनाएँ नही हैं। कवियो के विशिष्ट काव्यकलात्मक दृष्टिकोण के परिचायक हैं। काव्यो के अवतारिका-भाग मे संयोजित आश्रयदाता को वश-परम्परा, स्वभाव आदि का वर्णन, प्रत्येक आश्वास के आदि मे कृतिपति का सम्बोधन और आश्वास के अन्त मे विभिन्न छन्दों मे कृतिपति का गुणाभिवर्णन युक्त संम्बोधन—इन रूपो मे राजाश्रय का प्रभाव तेलुगु के काव्य-ग्रन्थो पर लक्षित होता है।

हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यो के आरम्भ मे भी तत्कालीन राजा की

---

1. वही पद्य, 14-16
2. अग्रहार—राजाओ के द्वारा यज्ञ, अध्ययन एवं अध्ययनपन की निर्विघ्न रूप में चलाने के लिए ब्राह्मणो को प्रदत्त गाँव अग्रहार कहे जाते है।
3. अप्पकवीयमु—1—15 और कुमारसम्भव 1—46
4 स्वारोचिष-मनुसभवमु—1—14 15

प्रशसा की गयी हैं। परन्तु वहाँ पर यह निश्चितरूप से नही कह सकते कि सूफी कवियो के राजाश्रय के फलस्वरूप ही शाहेवक्त की प्रशसा की गयी। फारसी के द्वारा परम्परागत रूप मे हिन्दी कवियो को प्राप्त मसनवी शैली की वर्णन रूढि के रूप में इसे समझा जा सकता है। फिर भी मूलभाषा फारसी मे इस वर्णन रूढि के उद्गम स्रोत के रूप मे राजप्रशसात्मक दृष्टिकोण सहज सम्भाव्य है। केशवदास जी ओरछा दरबार के आश्रित कवि थे। परन्तु उनकी 'रामचन्द्रिका' मे आश्रयदाता की प्रशसा दिखाई नही पडती। केशव की राजप्रशसात्मक रचनाएँ और है, जैसे वीरसिंह देवचरित, रतनबावनी, और 'जहगीरजस चन्द्रिका।' फिर भी 'रामचन्द्रिका' के स्वरूप निर्धारक प्रवृत्तियो मे केशव की अलकार प्रियता, श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करने वाला शब्द-चमत्कार तथा पाण्डित्य प्रदर्शन का कुतूहल प्रमुख है और इन प्रवृत्तियो के मूल मे राजसी वातावरण एवं सभा-रंजन का दृष्टिकोण स्पष्ट है। राजाश्रम मे ही पल्लवित हिन्दी के चारण काव्य तथा वीरकाव्य मे नरेशो के गुणगान के अतिरिक्त ऐतिहासिक सामग्री भी उपलब्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य देश और आन्ध्रप्रदेश के पालक विभिन्न राजवशो ने हिन्दी और तेलुगु के साहित्य--सम्पन्न होने से पूर्व ही काव्य तथा अन्य कलाओं को सरक्षण प्रदान किया था और वही परम्परा आलोच्य भाषाओं मे भी अनुस्यूत रही और इस राजाश्रय का प्रभाव तत्कालीन महा-काव्यो के आन्तरिक स्वर एव बाहरी रूपविधान पर पडा। हिन्दी के चारण-काव्य एव वीरकाव्य पर तथा तेलुगु के अधिकाश महाकाव्यो पर यह प्रभाव स्पष्टरूप से लक्षित होता है। यथेष्ठ कल्पना का आश्रय लेने पर भी ऐतिहासिक महाकाव्यों में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक-रूप से हुई है। हिन्दू नरेशों के शासनकाल मे उनके वीर कृत्यो का वर्णन वीरपूजा की सामाजिक भावना के फलस्वरूप तथा मुसलमानों के राजतत्वकाल मे हिन्दू धर्म की क्षति के प्रतिक्रियास्वरूप लोकरक्षक क्षात्र धर्म एवं वीरचरित्रों की अवतारणा की गई है। कवियो के द्वारा आश्रयदाता नरेशो का वर्णन राजप्रशस्ति परक दृष्टिकोण के कारण ही नही प्रत्युत 'ना विष्णु पृथिवी पति.' वाले भव्य आदर्श के पालन की मनोवृत्ति के कारण भी पूरी निष्ठा एव मनोयोग के साथ किया गया है। एक तरफ राजाश्रय विमुख भक्त-कवियों का विशाल साहित्य दिखाई पडता है, जिसके मूल मे प्राकृत-जन गुणगान को वाणी का दुरुपयोग मानने की भावना प्रधान है। यह भावना उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों के प्रतिक्रिया-स्वरूप भी रही है। रामचन्द्र

जी के दरबार में विनयपत्रिका प्रस्तुत करने वाले गोस्वामी जी की दास्य भक्ति एवं उनके 'मानस' महाकाव्य के चरितनायक रामभूपाल की पात्र-कल्पना पर प्रभुभक्तिपरायणता के सस्कारो का प्रभाव स्पष्ट है। कविवर जायसी के काव्यरूप मे स्वीकृत फारसी की मसनवी शैली मे जो शाहेवक्त की प्रशसा की गयी है चाहे वर्णन रूढि के रूप मे ही क्यो न हो तत्कालीन राजा शेरशाह की प्रशसा उसमे द्रष्टव्य है।[1]

विदेशियो के आक्रमण एव उसके फलस्वरूप धर्म, साहित्य, कला एव शान्त जन-जीवन को क्षति पहले उत्तर भारत मे पहुँची और उसके बहुत बाद में दिल्ली में विदेशियो की शासनसत्ता के सुस्थिर होने के उपरान्त ही विदेशियो का ध्यान दक्षिण की ओर गया। इसके अलावा भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से विन्ध्य पर्वत और तीनों समुद्रो से परिवेष्टित होने के कारण भी विदेशी आक्रमणकारी सुगमतापूर्वक दक्षिण में प्रवेश नही कर सके। बाद मे भी कुछ समयावधि के लिए ही दिल्ली के शासको के प्रतिनिधि दक्षिण मे जाकर वहाँ के राजाओ को अपने अधीनस्थ करते थे, परन्तु उन प्रतिनिधियो के लौट जाने के उपरान्त दक्षिण के राजाओं की स्वतन्त्रता में कोई अन्तर नही पडता था। यही कारण है कि जब उत्तर भारत में जनता सत्रस्त थी, तब दाक्षिणात्यो को उसकी खबर तक नही थी और सम्राटो के सुस्थिर पालन में आन्ध्र प्रान्त के निवासी सुखमय जीवन बिता रहे थे; साहित्य, कला और विभिन्न विद्याओ के सवर्धन मे लगे हुए थे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों की भाषा, सगीत, साहित्य, शिल्प, धर्म आदि का समन्वय इस देश की अपनी भाषा, सगीत, साहित्य धर्म, शिल्प कला आदि से मध्यदेश मे ही सम्पन्न हो सका। इस प्रकार का समन्वय, इस बड़े पैमाने पर दक्षिण मे, विशेषकर आन्ध्र प्रान्त में दिखाई नहीं पडता। इसके लिए राजनैतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी रही है। अरबी, फारसी भाषाओ की शब्दावली एव उन विदेशी साहित्यो की परम्पराओं को आत्मसात करते हुए कुरु जनपद की भाषिक सरचना का उपयोग करते हुए हिन्दी भाषा की एक नव्य शैली के रूप मे जो उर्दू साहित्य मध्यदेश में प्रादुर्भुत हुआ, उसका श्रेय भारत मे मुसल्मानी राजसत्ता की सुस्थिरता को ही दिया जा सकता है। परन्तु तेलुगु साहित्य में फारसी, अरबी आदि की परम्पराएँ दिखाई नही पडती। तेलुगु मे सूफी सन्तो

---

1. सेर साहि दिल्ली सुलतानू।
   चारिउ तपइ जस भानू॥ पद्मावत स्तुतिखण्ड 13 17

का विरचित कोई साहित्य नही मिलता। 'पद्मावत' की तरह का महाकाव्य, जिसमे सूफी दार्शनिक विचारधारा को कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है, इस दार्शनिक पृष्ठभूमि के कारण जिसमें प्रतीकतत्व का समावेश हुआ है, जिसपर फारसी की मसनवियों का भी प्रभाव है, तेलुगु मे रचा नही गया। तेलुगु भाषी प्रान्त मे, हैदराबाद एव उसके समीपवर्ती भूभाग पर बहमनी सुल्तानो, कुतुबशाही नरेशो और निजाम नवाबो का आधिपत्य अवश्य रहा है और तत्कालीन राजकीय सरक्षण मे साहित्य सर्जना भी हुई थी, विशेषकर तीन सौ वर्षो की अवधि मे रचित दक्खिनी हिन्दी साहित्य। तेलुगु में उन परम्पराओ, सूफी अथवा इस्लाम दार्शनिक विचारो को पचाकर रचित कोई काव्य-ग्रन्थ अब तक देखने में नही आया है। कहने का यही तात्पर्य है कि मध्यदेश की भाषा मे सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो के सद्भाव एव आन्ध्र-प्रान्त की भाषा मे उस प्रकार के काव्यों के नितान्त अभाव के लिए इन भाषा-क्षेत्रो मे विद्यमान भिन्न राजनैतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी हैं।

धार्मिक परिस्थितियाँ :

आदिकाल एवं मध्यकाल के भारतीय साहित्य के प्रेरणा-स्रोत के रूप मे राजनीति की अपेक्षा धर्म का अत्यधिक महत्त्व रहा है। वास्तव में धर्म भारतीय जन-जीवन का प्राणतत्व एव साहित्य का मेरुदण्ड रहा है।

हिन्दी एव तेलुगु भाषा में काव्य-रचना करनेवाले कवियों के सामने इस देश मे प्रचलित विभिन्न धार्मिक साधनाओ, साधना-मार्गों के आधारभूत सैद्धान्तिक ग्रन्थों एव धार्मिक आचार्यो के विशिष्ट व्यक्तित्वों की लम्बी परम्पराएँ थी। इन परम्परागत तत्वों के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव से कवियो की चेतना असम्पृक्त नही हो सकती थी। इसके अलावा सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए, लोककल्याण के लिए, विभिन्न धर्मावलम्बियो के बीच के सघर्ष को दूर करके जनता की शक्ति को अपव्यय से बचाने के लिए कुछ प्रतिभाशालियों ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन अपने काव्य ग्रन्थो के माध्यम से किया था। ऐसी महान विभूतियो ने निश्चित रूप से जनता का उपकार, सभारजक कवियों की अपेक्षा अधिक किया था। उन विभूतियो को केवल कवि नही मानकर लोकनायक भी मानना समीचीन है। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के अनुसार बुद्ध भगवान के उपरान्त तुलसी ऐसे लोक-नायक हैं।[1] आचार्य लक्ष्मीकातम जी के अनुसार तेलुगु प्रान्त के तिक्कना

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 103

ऐसे लोकनायक महाकवि रहे है।[1] तेरहवीं शताब्दी के तिक्कनामात्य ने अद्वैतमार्गी होने के कारण विभिन्न धार्मिक वाद-विवादो को समाप्त करने की दृष्टि से उपयुक्त महाभारत के इतिवृत्त को स्वीकार करके काव्य-रचना की थी। सोलहवीं शताब्दी के गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के अनन्य भक्त होने के कारण अपने विशिष्ट धार्मिक दृष्टिकोण के अनुरूप रामकथा का निर्वाह 'नानापुराण निगमागमो' का सारकथन एव समन्वय के रूप में किया था।

भारत मे धर्म का आदि ग्रन्थ वेद को माना जाता है और परम्परा के अनुसार वेदो को अपौरुषेय माना गया है। शकर, रामानुज, मध्व, वल्लभ आदि आचार्यो ने वेद प्रतिपादित धर्म की ही व्याख्या भिन्न-भिन्न रूपो मे की थी। वेदो की अपौरुषेयता मे विश्वास नही करना नास्तिकता का ही पर्यायवाची माना जाता था। आधुनिककाल में यह मान्यता बदल गयी है। तुलसी के 'मानस' महाकाव्य में वेदो का उल्लेख बहुत अधिक स्थलो पर अपने कथन को पुष्ट करने के लिए कवि के द्वारा ही नही, अपितु काव्यगत पात्रो के द्वारा भी, इसी वेदविहित धर्म में विश्वास के कारण किया गया है। तेलुगु साहित्य मे भी 'महाभारत', 'हरिवंश', 'भागवत' आदि काव्यो मे इसी वेदविहित धर्म के प्रतिपादन का प्रयास कवियो ने किया है। श्रीकृष्ण देवराय के महाकाव्य मे विष्णुचित्त नामक एक पात्र के द्वारा शास्त्रार्थ राजसभा मे कराकर यह सिद्ध करवाया गया है कि वैष्णवधर्म ही वेदप्रतिपादित धर्म है।[2] इस प्रकार भारतीय साहित्य मे वेदो की प्रामाणिकता एवं वेदविहित धर्म का प्रतिपादन अविकल रूप से पाया जाता है और इसी आधार पर वेदधर्म को प्राचीनता की दृष्टि से प्रथम माना जाता है।

बौद्धधर्म की कतिपय बातों को ग्रहण करके समन्वय एव सम्मिश्रण की प्रक्रिया से पौराणिक वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा हुई और इस पौराणिक धर्म मे बुद्ध को भगवान विष्णु का ही एक अवतार माना गया। इस रूप में बुद्ध भगवान वैष्णव धर्मावलम्बियो के लिए भी पूज्य बन गये। सोलहवीं शताब्दी के श्रीकृष्ण देवराय, अल्लसानि पेद्दनार्य, तेनालि रामकृष्ण आदि तेलुगु कवियों के द्वारा अपने काव्यो में कथाप्रसंग के बीच मे दशावतार वर्णन संयोजित है और इन दशावतारों में भगवान बुद्ध भी हैं।[3] तेलुगु एव हिन्दी भाषाओ

---

1. गौतमव्यासमुलु, पृष्ठ 14, 15, 16
2. आमुक्तमाल्यदा, तृतीयाश्वास, पद्य 6
3. आमुक्तमाल्यदा 4-30

के साहित्य के उत्कर्षकाल के बहुत पहले ही हमारे देश मे बौद्ध धर्म नष्टप्राय स्थिति मे था। अत साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नही पडता, फिर भी नाथपन्थी साहित्य और वैष्णव धर्मानुप्राणित साहित्य मे बौद्ध धर्म एव बौद्धो की तान्त्रिक साधना की परपराओ को देखा जा सकता है। तेलुगु मे नाथपन्थी साहित्य तो नही मिलता, परन्तु गोरखनाथ, मीननाथ आदि नवनाथो का जीवन-वृत्त 'नवनाथचरित्र' नामक काव्य मे 'द्विपद' के देशी छन्द मे गौरनामात्य नामक कवि से वर्णित है। गौरनामात्य का समय ईसा की 15 वी शताब्दी माना जाता है। इतना ही नही, गौरनामात्य के काव्य मे तथा परवर्ती शताब्दी के अल्लमानि पेद्दनार्य के महाकाव्य मे योगियो की वेशभूषा का वर्णन प्राप्त होता है।[1] हिन्दी एव अपभ्रश के काव्यों मे प्राप्त जोगियो के वर्णन से ये वर्णन मिलने-जुलते है। इस रूप मे नाथपन्थ एव सिद्धो के साधनामार्ग का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर भी माना जा सकता है।

जैन धर्म का महत्त्व उसके द्वारा प्रभावित एव संवर्धित प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी एव कन्नड भाषाओं के साहित्य की दृष्टि से है। आजकल भी हिन्दी की जो अलभ्य कृतियाँ हस्तलिखित ग्रन्थो के रूप मे प्राप्त होती है, उनके सुरक्षित रहने का श्रेय जैनो की धार्मिक प्रवृत्ति को ही है। जैन ग्रन्थ भण्डारो से प्राप्त अमूल्य सामग्री हिन्दी शोधार्थियो के लिए नई दिशा प्रदान करके साहित्येतिहास की गुत्थियो को सुलझाने मे सहायक हुई है। वास्तव मे जैन धर्म का उद्भव पूर्वी प्रदेश मे हुआ था, परन्तु उसका विस्तार गुजरात, राजस्थान, मालव प्रान्त, महाराष्ट्र, कर्नाटक एव आन्ध्र प्रान्त तक है। जैनधर्म को राजकीय सरक्षण भी प्राप्त था। "मगध के शिशुनाग, नंद तथा अशोक के पूर्व मौर्यवश के शासको की आस्था जैन सिद्धान्तो पर विशेष थी।"[2] इतिहासकारो का कथन है कि मौर्यवशीय सम्राटो के समय मे तेलुगु प्रान्त में जैन धर्म का प्रचलन असदिग्ध है।[3] राष्ट्रकूट वंशीय नरेशो एव चालुक्य वशीय राजाओ के शासनकाल मे तेलुगु प्रान्त के वेगी, वेमुलवाडा, विजयवाडा आदि स्थान जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र रहे है। आन्ध्र पर जैन धर्म का प्रभाव आजकल तेलुगु प्रान्त में प्राप्त विभिन्न जैन प्रतिमाओ के आधार

1. स्वारोचिषमनुसभवमु—1-59
2. डा. धीरेन्द्र वर्मा . मध्यदेश, पृष्ठ 74
3. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु : तृतीय भाग, पृष्ठ 545

पर भी समझा जा सकता है। काकतीय वंश के राजाओं एवं विजय-नगर राज्य के पालकों के समय मे भी आन्ध्रप्रान्त में जैन धर्म के प्रचलन के उल्लेख मिलते हैं।[1]

हिन्दी साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव 'उपदेश रसायन रास', 'भारतेश्वर बाहुबलि रास', 'जबूस्वामीरासा', 'रेवनगिरिरासु' आदि गीत-नृत्यपरक ग्रन्थों, 'मजुरास', 'बुद्धिरासो' आदि छन्द वैविध्यपरक रासो ग्रन्थों एव 'प्रद्युम्नचरित', 'पचपाण्डवचरित' आदि चरितकाव्यों तथा प्रेमाख्यानो के रूप मे स्पष्ट है। अपभ्रंश भाषा मे प्रसिद्ध कवि स्वयभू, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, हरिषेण, धनपाल आदि जैन धर्मावलम्बी थे और उनके महाकाव्यो का महत्व धार्मिक एव साहित्यिक दोनों दृष्टियों से है। वर्णन शैली, छन्द-विधान, वस्तुयोजना, काव्य-रूढियो की योजना आदि की दृष्टि से इन जैन अपभ्रंश काव्यो की परम्पराएँ हिन्दी साहित्य मे गृहीत हुई। इस प्रकार जैन धर्म का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी साहित्य पर माना जा सकता है। तेलुगु साहित्य पर जैन धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव नगण्य है। नन्नय भट्ट के युग के अधर्वणाचार्य के जैनधर्मावलम्बी होने का अनुमान किया जाता है और उस अधर्वण की प्रबन्धात्मक कृति महाभारत अनुपलब्ध ही हैं, यद्यपि उस ग्रन्थ के बहुत कम छन्द लक्षण ग्रन्थो में उद्धृत हैं। तेलुगु के आदि कवि नन्नय से पूर्व के कन्नड भाषा के प्रसिद्ध कवि पंप, रन्न एव पोन्न तीनो जैन ही थे। विद्वानो का कथन है कि तेलुगु के आदि कवि नन्नय ने छन्द-विधान, गद्य पद्य मिश्रित चपू शैली का प्रयोग आदि कतिपय अशो में पंप महाकवि का अनुसरण किया।[2] इसलिए यह कहना अनुचित नही होगा कि जैन धर्म ने तेलुगु साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। आदिकाल एव मध्यकाल में विभिन्न धर्मावलम्बियो के बीच के संघर्ष के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सम्भव है कि जैनों के द्वारा रचित तेलुगु साहित्य धार्मिक संघर्षों के कारण नष्ट हो गया हो।[3]

हिन्दी साहित्य के विकास-युग मे शैव धर्म का प्रचार तथा प्रसार बहुत कम था। परन्तु हिन्दी साहित्य के समकालीन तेलुगु साहित्य के प्रमुख काव्य-ग्रन्थो पर शैवधर्म का प्रभाव लक्षित होता है।

ईसा की प्रथम शताब्दी से तेलुगु प्रान्त मे शैवधर्म के प्रचलन के प्रमाण

1. आन्ध्र का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 216, 217
2. तेलुगु वाणी, पृष्ठ 123
3. तेलुगु विज्ञान सर्वस्व, तृतीय जिल्द, पृष्ठ 582

उस समय के उत्कीर्ण प्राकृत भाषा के शिलालेखो मे प्राप्त शिवदास, शिवस्कन्ध, शिव श्री आदि नामो मे उपलब्ध होते हैं। प्राकृत भाषा के प्रमुख महाकाव्य 'लीलावती' मे प्राप्त वर्णनो मे गोदावरी प्रान्त मे भीमेश्वर भगवान से सम्बद्ध शैवतीर्थ, सुवर्ण मन्दिर तथा पाशुपत् मठ के उल्लेख मिलते हैं। 'इस बात के प्रमाण भी मिलते है कि सातवाहनों के समय शिव तथा कृष्ण की पूजा का काफी प्रचार था।'[1] हाल शातवाहन की 'गाथा सप्तशती' मे भी पशुपति एव गौरी की स्तुतियाँ उपलब्ध है। तेलुगु भाषी प्रान्त पर शैवधर्म का अकाट्य प्रमाण 'त्रिलिग' शब्द है और इसी 'त्रिलिग' से तेलग, तेलुगु आदि की व्युत्पत्ति मानी जाती है। 'त्रिलिग' का तात्पर्य दाक्षाराम, श्रीशैल तथा कालेश्वर नामक तीन प्राचीन शिव मन्दिरो से है। चौदहवी शताब्दी के विद्यानाथ ने स्पष्ट लिखा है कि प्रतापरुद्र देव त्रिलिग देश परमेश्वर है और इस देश मे उक्त तीनो शैव क्षेत्रों की अवस्थिति है।[2]

चालुक्यवशीय राजराजनरेन्द्र ने नन्नय भट्ट से की गयी अभ्यर्थना मे अपने अभीष्ट विषयों में 'पार्वतीपति पदाब्जध्यान पूजामहोत्सव' को भी स्थान दिया है और ईश्वरागमो मे अपने मन को सुस्थिर करने का उल्लेख भी किया है।[3] 'ईश्वरागम' से राजराज का अभिप्राय शैवागम यह स्पष्ट है। नवम शताब्दी के गुणग विजयादित्य के सेनानायक पंडरग के द्वारा उत्कीर्ण शिलालेख मे पण्डरग के लिए 'परम माहेश्वर' विशेषण का प्रयोग किया गया है[4] और इसी प्रकार युद्धमल्ल के बेजवाड़ा शिलालेख से भी तत्कालीन शैवधर्म का प्रभाव स्पष्ट होता है।[5] कालक्रम की दृष्टि से ये दोनों शिलालेख नन्नय के महाभारत के समीपवर्ती हैं। शातवाहन नरेशो के बाद के इक्ष्वाकु, शालकायन, विष्णुकुण्डिन, चालुक्य काकतीय और रेड्डि वश के राजाओ के द्वारा आन्ध्र प्रान्त मे शैवधर्म को सरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध शैव क्षेत्र श्रीशैल के लिए सोपान-निर्माण रेड्डिवशीय वेमय ने करवाया था, जिसका उल्लेख विभिन्न शिलालेखों एवं काव्यों मे किया गया है।[6]

---

1. डा. धीरेन्द्र वर्मा · मध्यदेश, पृष्ठ 136
2. प्रतापरुद्रयशोभूषण, नायक प्रकरणम्, श्लोक 22, पृष्ठ 140
3. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु प्रथम आश्वास, पद्य 10, 12
4. पण्डरंग का शिलालेख, शासनपद्यमजरी, पृष्ठ 1
5 युद्धमल्ल का बेजवाडा शिलालेख, शासनपद्यमंजरी, पृष्ठ 2, 3
6 हरिवश की भूमिका, वेलूरिशिवरामशास्त्री, पृष्ठ 9

काकतीय वंश के गणपति देव, रुद्रदेव, प्रतापरुद्र, रुद्रमदेवी आदि नामो से ही उनकी शैवधर्मानुरक्ति स्पष्ट हैं। काकतीय नरेशों के समय मे पाशुपत शैवधर्म को राजादर मिला था। सम्राट गणपति देव ने विश्वेश्वर शिवाचार्य से शैवधर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। पाशुपत शैवमार्गी आचार्यों ने पुष्पगिरि, त्रिपुरातकम् आदि स्थानो पर मठों की स्थापना की थी। एकशिलानगर (वरगल) प्रान्त के विभिन्न मन्दिरो से तत्कालीन कलाओ पर शैव धर्म के प्रभाव का परिचय मिलता है। काकतीय नरेशों के प्रोत्साहन के अतिरिक्त कर्नाटक प्रान्त के बसवन्ना के द्वारा प्रवर्तित 'वीरशैव' नामक शैव धर्म का एक प्रभेद एक आन्दोलन के रूप मे भक्ति तत्व का प्रचार एव प्रसार करके आन्ध्र-प्रान्त मे भी विशेष आदर प्राप्त करने लगा। इस धार्मिक आन्दोलन का प्रतिफलन तेलुगु के साहित्य मे बारहवी एव तेरहवी शताब्दी में रचित काव्यो के रूप मे द्रष्टव्य है। तेलुगु के साहित्येतिहास मे 'शिवकवियुग' नामक एक युग विद्वानों के द्वारा मान्य है। अन्य कवियो की अपेक्षा शिवकवियो ने काव्य-रचना मे नवीन पद्धतियो का अवलम्बन लेने के ही कारण उस विशिष्टता के आधार पर पृथक् रूप से उस साहित्य का विवेचन विद्वानो ने किया है।

पाशुपत शैव के अलावा तेलुगु साहित्य पर कालामुखशैव शाखा का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस मत मे वेदों की प्रामाणिकता शिरोधार्य है। इसलिए वीरशैव की भाँति ब्राह्मणो की निन्दा नही, बल्कि ब्राह्मण-प्रशसा इसमे दिखाई पडती है। शिव एव शक्ति का अविनाभाव सम्बन्ध इस मत मे प्रतिपादित है। परन्तु वीरशैव मे शक्ति आदि अन्य देवताओ की वन्दना निषिद्ध है। कालामुख मत के शिवाचार्य यावज्जीवन ब्रह्मचर्य दीक्षा का पालन करते है। इनको 'महाव्रत' के नाम से व्यवहृत किया जाता है, क्योंकि कालामुख का पर्यायवाची महाव्रत है।[1] इन आचार्यो के नामो के अन्त मे मुनि, राशि एव पण्डित शब्दो का प्रयोग किया जाता है। तेलुगु साहित्य मे 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के प्रणेता नन्नेचोड ने अपने गुरु मल्लिकार्जुन योगी के प्रति अतीव श्रद्धा एव भक्ति का परिचय अपने काव्य के अन्तर्गत दिया है। उसके अनुसार मल्लिकार्जुन शिवयोगी भूसुर, प्राणायामादि षडगोपाग सकल योगि जनाराधित, न्यायवैशेषिकादि षट् तर्ककर्कश एव वेदषडंगशास्त्रपुराणेतिहासागमादिसकलास्वरूपापारवाणीधर था।[2] इन विशेषणों से भी प्रकट होता है कि नन्नेचोड कवि उस शैवशाखा का अनुयायी

---

1. नन्नेचोडुनि वस्तुकविता, पृष्ठ 17 2. कुमारसम्भव 1-57

था, जिसमे वेदों एवं ब्राह्मणो के महत्व को अंगीकार किया गया। इसके अतिरिक्त शिव एव शक्ति के अविनाभाव सम्बन्ध के लिए ज्ञान ज्ञेय एव शब्द अर्थ के उपमानों का प्रयोग इस 'कुमारसम्भव' महाकाव्य मे किया गया है।[1] शिव के दक्षिण भाग से ब्रह्मा एव विष्णु की उत्पत्ति का वर्णन शिव की सर्वोत्कृष्टता के प्रतिपादन के रूप मे ग्रहणीय है।[2] आलोचकों का मत है कि कालामुख शैव के दार्शनिक पक्ष को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लक्ष्य से ही तेलुगु 'कुमारसम्भव' महाकाव्य की रचना हुई थी।

हिन्दी साहित्य के विकास-काल मे शैवधर्म का प्रचार एव प्रसार बहुत कम था। फिर भी परम्परागत तत्व के रूप मे रामचरितमानस मे शिव-पार्वती विवाह का वर्णन दिखाई देता है।[3] इस पर अध्यात्मरामायण की कथा-योजना के अतिरिक्त कदाचित् शिव-पुराण का भी प्रभाव है। गोस्वामी जी नाना पुराणो के ज्ञाता थे और अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण ही शिव सम्बन्धी इतिवृत्त का भी सयोजन अपने महाकाव्य मे किया है। शैवधर्म की अवान्तर शाखाओ मे श्रुति-प्रामाण्य को नही माननेवाले कापालिक, अघोरि, रसेश्वर एव नाथसप्रदाय भी है।[4] इन सम्प्रदायो का समाहार गोस्वामी जी की समन्वयात्मक दृष्टि मे नही हो सकता था, क्योकि तुलसी वेदमत के प्रतिपादक हैं।

तेलुगु साहित्य पर रामानुज प्रवर्तित वैष्णव धर्म का प्रभाव विशेष रूप से विजयनगर साम्राज्य के काल मे दिखाई पडता है। उस काल के सालुव नरसिंह राय, श्रीकृष्ण देवराय अलिय रामराय आदि नरेशों ने वैष्णव-दीक्षा स्वीकार की थी और उनके सरक्षण मे पल्लवित सगीत, साहित्य, शिल्प, वास्तु आदि कलाओ पर इस धर्म का महान प्रभाव पडना स्वाभाविक था। राजा श्रीकृष्ण देवराय के महाकाव्य 'आमुक्त माल्यदा' का कथानक भक्तिन गोदादेवी एवम् उनके पिता विष्णुचित्त नामक आलवार से सम्बन्धित है। श्रीकृष्ण देवराय ने तिरुपति के वेकटेश भगवान के परम भक्त होने के कारण अपने इष्टदेव को ही काव्य समर्पित किया। अल्लसानि पेद्दनार्य नामक कवि ने अपने को शठकोपयति नामक वैष्णव स्वामी का शिष्य कहा है।[5] तिरुपति मे बाला जी के मन्दिर के परिसर मे भगवान के सामने मुकुलित करकमल की मुद्रा मे

1. कुमारसम्भव 7-53
2. वही—1-4, 5
3. रामचरितमानस, बालकाण्ड
4. नन्निचोडुनि वस्तुकविता, पृष्ठ 15
5. स्वारोचिष मनुसभवमु, 1-6

श्रीकृष्ण देवराय एवम् उनकी तिरुमल देवी, चिन्ना देवी नामक रानियों की प्रतिमाएँ आज भी दर्शनीय है। तिरुपति के उसी विष्णु मन्दिर मे ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण, विभिन्न राग-रागिनियो मे बद्ध, सगीत की अमूल्य निधि के रूप मे महत्त्वपूर्ण हजारो भक्तिपद प्राप्त है, जो ताल्लपाक अन्नमाचार्य एवम् उनके पुत्र पेदतिरुमल्लाचार्य के द्वारा रचित है। इन पदो के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि तेलुगु प्रान्त की सगीतकला पर वैष्णव धर्म का कैसा प्रभाव रहा रहा था। श्रीकृष्ण देवराय के महाकाव्य में प्रत्येक आश्वास के आदि में एवम् अन्त मे वेंकटेश भगवान को सम्बोधित करनेवाले पद्य है। इसी काव्य में विष्णु-चित्त एवम् यामुनाचार्य नामक विष्णु भक्तों के द्वारा राजसभा मे शास्त्रार्थ करवाकर शैव धर्म पर वैष्णव धर्म की विजय दिखायी गयी है।[1] 'पांडुरग माहात्म्य' के कवि तेनालि रामकृष्ण पर वैष्णव प्रभाव असदिग्ध है।

हिन्दी के भक्तिकाव्य को प्रभावित करनेवाले विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो मे रामानन्दी सम्प्रदाय, पुष्टि सम्प्रदाय, रसिक सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय प्रमुख है। अन्य सम्प्रदायो की अपेक्षा महाकाव्य विधा को रामानन्दी सम्प्रदाय एवम् रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन ने विशेष प्रभावित किया है। साथ ही यह मानना उचित है कि श्रेष्ठ प्रतिभा के कलाकार एवम् प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के अनुसार ही तुलसी ने अपने पूर्ववर्ती आध्यात्मिक सिद्धान्तों को नवीन रूप प्रदान किया और इस तरह का उनका योगदान अप्रतिम है। तुलसी के सामने एक समग्र सास्कृतिक दृष्टिकोण उपस्थित था, जिसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति 'मानस' के रूप मे हुई है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार तुलसीदास न निरे अद्वैतवादी थे और न निरे विशिष्टाद्वैतवादी, और न उन्होने उपयुक्त विषय के सग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग का कोई असामान्य प्रयास ही अपनी आध्यात्मक मान्यताओ के विषय मे किया है।[2]"

शैव धर्म एवम् वैष्णवधर्म के पारस्परिक संघर्ष को दूर करने के लिए तेलुगु साहित्य के तिक्कनामात्य ने अद्वैत दर्शन के आधार पर ही एक समन्वयात्मक आराधनापद्धति अथवा उपासना-विधि को प्रवर्तित किया, जिसे हरिहर समन्वय कहा जा सकता है। यह हरिहर समन्वय सैद्धान्तिक रूप से तिक्कन के पूर्व ही अद्वैतवाद में निहित है। परन्तु व्यावहारिक साधनापरक धरातल पर हरिहरनाथ नामक एक सगुण भगवान की कल्पना एवम् काव्य

---

1 आमुक्तमाल्यदा 4-39 से 75 तक

2. तुलसीदास, पृष्ठ 386

मे उस मूर्ति के वर्णन का श्रेय तिक्कनामात्य को ही है। स्वरचित महाभारत के भूमिका भाग में मंगलाचरण के रूप मे उसी हरिहरनाथ भगवान की वन्दना की है।[1] उसी अवतारिका भाग मे निक्षिप्त एक श्लोक है, जिसमे कवि भगवान से प्रार्थना करता है कि भगवान को अस्थिमाला, कौस्तुभ दोनो मे से कौन-सा इष्ट है, कालकूट विष अथवा यशोदा का दूध इनमें कौन स्वादिष्ट है, क्योंकि कवि के भगवान हड्डियो की माला के साथ, कौस्तुभ भी धारण किए है और विषपान के अलावा यशोदा माता का दुग्धपान भी किया।[2]

हरिहरनाथ भगवान के रूपवर्णन मे यह दिखाया गया है कि भगवान शिर पर शशिरेखा (खण्ड चन्द्रमा) नाभि मे धवल पंकज, उर पर कौस्तुभ रत्न एवम् गंगा यमुना के सगम के सदृश गौर वर्ण एव श्याम वर्ण के सम्मिलन की शरीर-छवि से युक्त है।[3] महाकवि, महामंत्री एव आध्यात्मिक साधक की त्रिवेणी तिक्कन के व्यक्तित्व में है। अतः उस समय के उनके अनुयायी कवियो एव उनके पश्चात् के कतिपय कवियो द्वारा उनकी परम्परा स्वीकृत रही। नाचन सोमनाथ नामक कवि ने अपने 'उत्तर-हरिवश' काव्य का समर्पण हरिहरनाथ भगवान् को ही किया।

'उत्तरहरिवश' काव्य के कथानक के बीच मे एक ऐसे प्रसग का विधान है जिसमे भगवान कृष्ण शिव को लक्षित करके तपस्या करते है और शिव उनके सामने प्रत्यक्ष हो जाते है। उस स्थान पर रहनेवाले महर्षियो को रजतगिरि पर दोनो भगवानों का दर्शन लाभ एव 'हरिहराराधन' का सुअवसर प्राप्त हो जाते हैं। देवता लोग यह कहते है कि सबके लिए भगवान एक है और वह हरिहरात्मक है।[4] तेलुगु महाकाव्य के विकास मे तिक्कनामात्य एव नाचन सोमनाथ के योगदान का समर्थन आचार्य लक्ष्मी-कान्तम् प्रभृति विद्वानो ने भी किया है। इस दृष्टि से तिक्कन के 'हरिहराद्वैतवाद' का महत्त्व है।

'रामचरितमानस' मे भी शिव एव केशव का समन्वय काव्यात्मक ढग से कवि की प्रत्यक्ष उक्तियों एव काव्यगत पात्रो के द्वारा स्पष्ट शब्दो मे किया गया है। तुलसी श्रीरामचन्द्र के अनन्य भक्त होते हुए भी और देवी देवताओ

1. श्रीमदान्ध्रमहाभारतमु—विराटपर्व, प्रथम आश्वास, पद्य 1
2. श्रीमदान्ध्र महाभारतमु, विराट पर्व, प्रथम आश्वास, पद्य 11
3 वही, पद्य 12
4 उत्तरहरिवंशमु, द्वितीय आश्वास, पद्य 181

की वन्दना भी करते है। इसका मुख्य कारण यही है कि तुलसी ने जडचेतन सबको राममय माना है और 'सर्वदेव नमस्कार. केशव प्रतिगच्छति' उनकी समन्वय दृष्टि का मूलाधार है।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥[1]

रामचरित मानस की वक्ता–श्रोता योजना में शिव-पार्वती का प्रमुख स्थान है। रामतत्व को भली-भाँति समझनेवाले एव सर्वदा रामनाम का जप करनेवाले के रूप मे गोस्वामी जी ने शकर भगवान का चित्रण किया है। प्रायः प्रत्येक सोपान के आदि मे मगलाचरण के रूप मे निबद्ध सस्कृत श्लोको में एव हिन्दी के छन्दो मे तुलसी ने शकर भगवान की वन्दना की है।[2] शकर के लिए अन्य विशेषणो के प्रयोग के साथ 'श्रीराम-भूपप्रियम' का प्रयोग इस सदर्भ मे ध्यान देने योग्य है। समुद्र पर सेतु निर्माण के अवसर पर श्रीरामचन्द्र ने शिवलिंग की प्रतिष्ठा विधिवत् करके यह घोषित किया कि शिवजी के समान उनको दूसरा कोई प्रिय नहीं है और जो शिव से द्रोह रखता है और राम का भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न मे भी राम को नहीं पा सकता।

पौराणिक परम्परा मे लगभग प्रत्येक देवता के साथ एक शक्ति की कल्पना की गई। कालान्तर मे तन्त्र एव शैव धर्म के सम्मिश्रण से शाक्तमत का प्रादुर्भाव हुआ। शाक्तमत के प्रमुख केन्द्र बगाल, आसाम आदि पूर्वी प्रदेश रहे हैं। मध्यप्रदेश पर वैष्णवमत का ही प्रभाव अधिक है। उधर दक्षिण मे शाक्तमत का साधनापरक रूप जो शकर आदि आचार्यों द्वारा दक्षिणाचार के रूप में मान्य है, वह श्रुत्यनुमोदित होने के कारण है। शकराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी' मे भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की छटा विशदता से प्रस्फुटित हुई है और इस स्तोत्र में शाक्त तन्त्र के अनेक रहस्यों का सयोजन अभिज्ञ लोग मानते है। तेलुगु काव्यो मे 'श्रीकाल्हस्ति माहात्म्य मे मंगलाचरण के प्रथम छन्द में शंकर की वन्दना करते हुए कविवर धूर्जटी ने 'श्रीविद्यानिधि' शब्द का प्रयोग शकर के लिए किया है।[3] 'श्रीविद्या' शब्द पारिभाषिक है। श्रीचक्र की अर्चना एव तत्सम्बन्धी तंत्र मत्र युक्त साधना ही 'श्रीविद्या' के

---

1. मानस-बालकाण्ड–7 (ग)
2 मानस बालकाण्ड 2, 3, अयोध्याकाण्ड 1, अरण्यकाण्ड 1, किष्किन्धाकांड 3, लकाकाण्ड 2-3, 4, 5
3. श्रीकालहस्तिमाहात्म्यम् 1–1।

नाम से अभिहित है। हिन्दी के 'पृथ्वीराजरासो' मे कवि चन्द के द्वारा देवीपूजन एव वाणी, गौरी तथा लक्ष्मी के रूप मे भवानी की स्तुति प्राप्त है।[1] शाक्तमत का प्रभाव राजपूतों की वीर भावना, हिंसात्मक प्रवृत्ति तथा रक्तपात एव भोग की विलासमयी प्रवृत्तियो मे देखा जा सकता है। शिवाजी के 'भवानी' के भक्त होने के उल्लेख मिलते है। फिर भी हिन्दी साहित्य पर शाक्तमत का प्रभाव अन्य मतों की तुलना मे अति स्वल्प है।

इन धार्मिक सम्प्रदायो के अतिरिक्त विदेशी मुसलमान राजसत्ता के सुस्थिर होने के कारण इस्लाम एव उसपर आधारित सूफी दार्शनिक मान्यताओ एव साधना मार्ग का सम्पर्क हिन्दी क्षेत्र से सम्पन्न हुआ। लोककथात्मक स्रोतो से जनप्रिय इतिवृत्त को ग्रहण करके सूफी सन्तो ने अवधी भाषा मे अपनी साधना-पद्धति को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की थी। यह अभिव्यक्ति प्रेमाख्यानक काव्यों के रूप मे द्रष्टव्य है। जायसी का पद्मावत' कथोपयुक्त सागोपाग वर्णन, गम्भीर भावो की सुन्दर अभिव्यक्ति, उदात्त चरित्रो का विशद चित्रण तथा एक आदर्श रचना की सोद्देश्यता के कारण एक उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। पद्मावत के कथाशरीर मे रूपक तत्व का समावेश सूफी दार्शनिक मान्यताओं के परिणामस्वरूप ही हुआ है, यद्यपि इसका निर्वाह पूरे इतिवृत्त मे नहीं हो पाया है। जायसी ने काव्य के अन्त मे अपने द्वारा उद्दिष्ट रूपक तत्व को स्पष्ट भी किया है। सूफी साधना मे ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाने के कारण 'पद्मावत' नायिका प्रधान बन गया है और कवि ने विभिन्न स्थानो पर पद्मावती के रूप-वर्णन के सन्दर्भ मे अलौकिक ईश्वर की भी व्यंजना की है। तेलुगु साहित्य पर सूफी दार्शनिक विचारो के प्रभाव के अभाव के कारण 'पद्मावत' जैसा महाकाव्य उपलब्ध नही होता।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :

संस्कृत मे आदिकवि की रामायण, कालिदास, भारवि, माघ एव श्रीहर्ष आदि के महाकाव्य लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। विद्वज्जनों एव काव्य-रसिको की मण्डलियों में उन काव्यो का अनुशीलन-परिशीलन होता था। भाषा काव्यो मे चन्दवरदाई, तुलसी, केशव, गोरेलाल, नन्नय, तिक्कना, नन्निचोड, श्रीनाथ, श्रीकृष्ण देवराय, पेद्दनार्य, रामराज भूषण आदि से पूर्वकविस्तुति के प्रसग मे वाल्मीकि, वेदव्यास, मुरारि, बाणभट्ट, उद्भट, कालिदास, भट्ट हर्ष आदि की

1. पृथ्वीराजरासो—आदिपर्व (उदयपुर संस्करण)

वन्दना की गयी है। केशव के सम्बन्ध मे लाला भगवानदीन की यह उक्ति है कि 'बाण, माघ, भवभूति, कालिदास तथा भास तक के सुन्दर प्रयोग अद्भुत विचार, गम्भीर और विशिष्ट अलकार ज्यो-के-त्यों अनुवाद किए हुए इस ग्रन्थ मे रक्खे है।[1] अपनी वंश परम्परा मे समादृत एव प्रतिष्ठित सस्कृत विद्या का अतिशयोक्तिपूर्ण चमत्कारिक वर्णन केशव की ही शब्दावली मे इस प्रकार द्रष्टव्य है।

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास॥

केशव की कवित्व शक्ति एव सहृदयता के कटु आलोचकों ने भी उनके सस्कृत पाण्डित्य को स्वीकार किया है, यथा अपनी रचनाओ मे उन्होने अनेक सस्कृत काव्यो की उक्तियाँ लेकर भरी है।[2] कवि के अतिरिक्त काव्याचार्य भी होने के कारण केशव ने लक्षण ग्रन्थो का निर्माण किया साहित्यदर्पणकार आदि के द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के स्वरूप के निकट तुलसी एव जायसी की अपेक्षा केशव अधिक हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी की कवित्व-शक्ति का परिचय मानस मे मगला-चरण के रूप मे सयोजित सस्कृत श्लोको से भी मिलता है। सस्कृत साहित्य में अपने समय तक सुलभ निगम, आगम, पुराण आदि रामकथा के विभिन्न सूत्रो का समाहार गोस्वामी जी के महाकाव्य मे उनकी समन्वयात्मक दृष्टि के कारण हो सका है। तुलसी के प्रगाढ सस्कृत पाण्डित्य का अनुमोदन हिन्दी के प्रमुख विद्वानों ने किया है। उदाहरण के तौर पर पं. रामनरेश त्रिपाठी के विचार द्रष्टव्य हैं।

'खोजने से संस्कृत ग्रन्थो मे रामचरितमानस के बहुत से दोहो, सोरठो, छन्दो और चौपाइयो के मूल मिल जायेंगे। यह देखकर महान आश्चर्य होता है कि तुलसीदास ने संस्कृत ग्रन्थो का कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था.........कही एक चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं। उससे भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति ग्रन्थ के भाव हैं। ऐसे स्थानो पर तुलसी के मस्तिष्क की महिमा देखते बनती है। मानो संस्कृत के दो ढाई सौ ग्रन्थो के लाखों श्लोको पर उनका एक सम्राट की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे।[3]

---

1. केशव कौमुदी (दूसरा भाग) वक्तय, पृ 2
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 193 3. तुलसी और उनका काव्य- प- 142

तेलुगु क्षेत्र पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव कम नहीं है। नन्नय, तिक्कना, पोतना, श्रीनाथ आदि कवि संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनका संस्कृत पाण्डित्य उनके काव्यों में प्रयुक्त समासबहुला तत्सम शब्द प्रधान भाषा शैली, संस्कृत के वर्णवृत्तों का संयोजन, काव्यादि में निबद्ध संस्कृत श्लोक, अवतारिका भाग में आश्रयदाता नरेशों के द्वारा कवियों की प्रतिभा एवं वैदुष्य की प्रशंसा आदि से प्रमाणित है। कुछ कवियों के द्वारा संस्कृत काव्य-रचना के उल्लेख एवं कुछ के संस्कृत काव्य भी उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन वातावरण में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों एवं संस्कृत के काव्यों का प्रणयन भी होता था। तेलुगु प्रान्त की विभूतियों में रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ, घण्टापथ व्याख्याकार मल्लिनाथ सूरि एवं उसके पुत्र तथा प्रतापरुद्रयशोभूषण के रत्नापण व्याख्याकार कुमारस्वामी, प्रतापरुद्रीय के प्रणेता विद्यानाथ, नृत्तरत्नावलीकार जायप सेनानी और रसार्णव सुधाकर' के प्रणेता सर्वज्ञ सिंगभूपाल प्रमुख हैं। काव्यों में श्रीकृष्णदेवराय विरचित 'जाम्बवती परिणय', रामभद्राम्बाकृत 'रघुनाथाभ्युदय' गंगादेवीकृत 'मधुराविजय', मधुरवाणी प्रणीत 'रामायणसार काव्य' मुख्य है। काव्यग्रन्थों के अतिरिक्त न्याय, व्याकरण, वेदान्त आदि शास्त्र ग्रन्थ भी तेलुगु प्रान्त में रचे गये थे। तेलुगु साहित्य के संरक्षक नरेशों में श्रीकृष्णदेवराय, रघुनाथ भूपाल, सर्वज्ञ सिंगभूपाल, विजय-राघव नायक आदि काव्य-रसिक होने के साथ कवि भी थे और आन्ध्र-कवियों के साथ संस्कृत कवियों को भी प्रश्रय दिया था और संस्कृत के श्रीकृष्णदेवराय एवं सिंगभूपाल का कृतित्व उनके ग्रन्थों से प्रमाणित है। नन्नय भट्ट ने राजराज-नरेन्द्र को परिवेष्टित करनेवाले विद्वज्जनों में पौराणिक, तार्किक, वैयाकरण, अध्यात्मविद सबका उल्लेख किया है और राजराज के लिए 'राजमहेन्द्र-कवीन्द्रसुरक्ष्माज' शब्द का प्रयोग भी किया है।[1] इस प्रकार संस्कृत विद्या के विपुल प्रचार-प्रसार के अलावा गीर्वाण गिरा में साहित्य-सृजन के भी उस भव्य वातावरण में तेलुगु महाकाव्य का उद्भव, विकास एवं उत्कर्ष सम्पन्न हुआ। अतः तेलुगु महाकाव्य विधा पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव है।

संस्कृत साहित्य की ही भाँति प्राकृत साहित्य का भी प्रचलन पूरे भारत-वर्ष में रहा है। प्राकृत की विभिन्न शाखाओं में शुद्ध साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से महाराष्ट्री प्राकृत मुख्य है। साहित्य के सन्दर्भ में प्राकृत कहने से साधारणतया महाराष्ट्री प्राकृत का ही बोध होताहै। इसमें शालिवाहन की

---

1 श्रीमदान्ध्रमहाभारतम्, आदिपर्व. द्वितीय आश्वास प. 239।

'गाथासप्तशती', वाक्पतिराज का 'गउडवहो', प्रवरसेन का 'सेतुबन्ध', हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित', कौतूहल की 'लीलावती' अत्यन्त मुख्य काव्य-ग्रन्थ है, जिनका प्रचार एवं प्रसार भारत के विभिन्न भूमिभागो मे, विशेषकर तेलुगु एव हिन्दी प्रान्तों मे भी रहा है। वास्तव मे भारतीय आर्य भाषा के पूर्ववर्ती रूप सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रंश है और आधुनिक रूप हिन्दी है। अपभ्रंश प्राकृत की अन्तिम दशा का नाम है। प्रारम्भिक काल की हिन्दी भाषा और साहित्य पर प्राकृत का गहरा प्रभाव माना जाता है।

तेलुगु के प्राचीनकालीन कवियो के प्राकृत भाषा पाडित्य एव सृजनात्मक प्रतिभा के प्रमाण उपलब्ध होते है। ग्यारहवी शताब्दी के आन्ध्रमहा-भारतकार नन्नय भट्ट के सहाध्यायी नारायण भट्ट के सबध मे नदमपूडि शिलालेख कहता है कि नारायण भट्ट 'सम्कृतप्राकृतकर्णाटपैशाचिकान्ध्र भाषा-कविराजशेखर था।[1] 'पन्द्रहवी शताब्दी के श्रीनाथ कवि के पाण्डित्य के सम्बन्ध मे दुग्गन नामक कवि ने यह कहा है कि श्रीनाथ 'सस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी भाषा-परिज्ञान पटु थे।[2] स्वय श्रीनाथ ने तेलुगु मे 'शालिवाहनगाथासप्तशती' को अपने द्वारा अनूदित करने का उल्लेख किया है, यद्यपि वह ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है।[3] माघ, भारवि, बिल्हण, मल्हण, भट्टि, दण्डी के साथ प्राकृत के 'सेतुबन्ध' महाकाव्य कार प्रवरसेन की भी वन्दना की है और प्रवरसेन के लिए 'साहित्यपदवी महाराज्य भद्रासनासीन' विशेषण का प्रयोग किया है।[4] इतना ही नही, तेलुगु भाषा के साहित्यारूढ होने से पूर्व ही तेलुगु प्रान्त मे प्राकृत भाषा का व्यवहार था जो तत्कालीन शिलालेखो से प्रमाणित होता है। ये शिलालेख सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में भी उत्कीर्ण थे। अभिज्ञों का कथन है कि गाथासप्तशती मे तेलुगु भाषा के शब्द प्राप्त होते है।[5] गाथा छन्द प्राकृत का प्रमुख छन्द है और कतिपय प्राकृत काव्य 'गाथा' छन्द मे रचित है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार गाथाबन्ध से प्राकृत काव्य का बोध होता है।[6] चौदहवी शताब्दी के एर्राप्रगड नामक कवि ने अपने पूर्ववर्ती नन्नयभट्ट एव तिक्कना की वन्दना करते हुए यह कहा था—"महाभारत के उज्जवल प्रतिपाद्य विषय के रहस्य को नही समझ सकने के कारण गाथाओं का ही

1. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु, तृतीय भाग, पृष्ठ 582
2. काशीखण्डमु, भूमिका, पृष्ठ 17 3. वही, 1-7
4. भीमेश्वरपुराणमु, 1-7 5. तेलुगुवाणी, पृष्ठ 125
6. हिन्दी साहित्य का आदिकाल- पृष्ठ 98

पुनराख्यान करनेवाले तेलुगु भाषियो के लिए व्यासमुनि प्रणीत परम विषय को सुस्पष्ट बनानेवाले अब्जासन सदृश आद्यकवि नन्नय एव तिक्कन का मै स्मरण करता हूँ।[1] इस कथन मे 'गाथा' शब्द के प्रयोग से एर्राप्रिगड का अभिप्राय कदाचित् गाथाबन्ध अर्थात् प्राकृत काव्य से है । इस प्रकार स्पष्ट है कि तेलुगु साहित्य पर प्राकृत का प्रभाव है ।

सस्कृत के महाकाव्यों मे सर्गविभाजन है और इसलिए सर्गबन्ध को महाकाव्य का पर्यायवाची माना जाता है । इसके विपरीत प्राकृत के महाकाव्य आश्वासो मे विभाजित होते है । साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज के अनुसार महाकाव्य सस्कृत मे सर्गबद्ध, प्राकृत मे आश्वासबद्ध एव अपभ्रश मे कुडवकबद्ध होता है । तेलुगु के प्राय सभी महाकाव्य अश्वासबद्ध है । इसलिए कह सकते है कि आश्वास विभाजन तेलुगु एवं कन्नड पर प्राकृत प्रभाव के कारण आया हुआ है । सस्कृत भाषा मे मात्रिक छन्दो की अपेक्षा वर्णिक छन्दों का अधिक महत्त्व है । किन्तु प्राकृत मे गाने के लिए उपयुक्त मात्रिक छन्दों की प्रधानता है और अपभ्रश काल तक आते-आते मात्रिक छन्दो की पर्याप्त सख्या हो गयी और इसीलिए अपभ्रश को छन्दो की दृष्टि से एक समृद्ध भाषा माना गया है । तेलुगु साहित्य मे सस्कृत के वर्णवृत्तों की परम्परा एव प्राकृत के मात्रिक छन्दो की परम्परा दोनो समादृत है । तेलुगु साहित्य के कदमु, सीसमु आटवेल्दि, तेटगीति, द्विपद आदि जो वर्णवृत्तो से भिन्न देशी छन्द है, उनपर प्राकृत का प्रभाव माना जाता है ।

विद्वानो का कथन है कि प्राचीन सस्कृत काव्यो मे कुकवि-निन्दा नही है । पुराने कवियो के स्मरण के सिवा कुकवियो की निन्दा वैरी, विरोधी, कविताचोर आदि के रूप मे ईसा की पाँचवी शताब्दी तक के संस्कृत काव्यो मे नही है । इसको प्राकृत साहित्य की विशेषता एव प्राकृत प्रभाव से अन्य भाषाओ के साहित्य मे आगत तत्व माना जाता है । पाँचवीं शताब्दी के बाद में रचित प्राकृत के काव्य-ग्रन्थो मे यह परम्परा दृष्टिगत होती है । सातवी शताब्दी के 'गौडवहो' मे कवि ने दुर्जनो की निन्दा की थी । आठवी शताब्दी के 'वज्जालग्ग' मे भी यह परम्परा दिखायी पड़ती है । तेलुगु के महाकाव्यो मे अल्लसानि पेद्दनार्य विरचित 'स्वारोचिषमनुसम्भव' में कुकवि पर चार के लक्षणो का आरोप करके उसका निन्दात्मक वर्णन किया गया है ।[2] नन्निचोड कवि के 'कुमारसम्भव' में सत्काव्य की तुलना मदगज से करके उस

---

1. नृसिंहपुराणमु 1-9

2. मनुचरित्र 1-9

मदमस्त हाथी के कार्यों मे दुष्कवियो के हृदयरूपी कमलवनों का भजन भी एक बताया गया है।[1] इसके अतिरिक्त नन्निचोड ने कुकवियों की निन्दा भी स्वतन्त्र रूप से की है।[2] । तेनालि रामकृष्ण कवि के 'पाडुरंगमाहात्म्य' काव्य में कहा गया है कि दोषात्मा दुष्कवियो के कारण ही श्रेष्ठ कवियो के महाकाव्य का महत्त्व स्पष्ट होता है, जैसे कृष्णपक्ष के अन्धकारमय होने के कारण ही चादनी बहुत प्रिय लगती है।[3] रामराजभूषण ने अपने 'वसुचरित्र' मे कुकवि प्रणीत काव्य को सामान्य कहकर नायिका भेद मे 'सामान्या' का अर्थ 'वेश्या' होने के कारण श्लेषालकार के माध्यम से वेश्या पक्ष एव कुकविकृत काव्य पक्ष का निर्वाह एक ही छन्द मे करके ऐसे काव्य को निकृष्ठ एव धीरोत्तमो से उपेक्षणीय के रूप मे वर्णित किया है।[4] इस प्रकार तेलुगु के महाकाव्यो मे कुकवि-निन्दा की काव्यरूढि का पालन हुआ है और इस रूढि का मूलस्रोत प्राकृत साहित्य है।

रामचरितमानस मे तुलसी ने सज्जनों की वन्दना के साथ खल वन्दना भी की है। यद्यपि यह वन्दना ही है, पर इस वन्दना से निन्दा ही व्यंजित होती है। जिस रूप में दुर्जनो के कार्यों का विवरण दिया है और उनके लिए जिन अप्रस्तुतो का विधान किया गया है, उससे खल-निन्दा का ही प्रयोजन सिद्ध होता है।[5]

अपभ्रंश भाषा के प्रमुख काव्यों मे दुर्जनो की निन्दा की गयी है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' मे दुर्जनो का स्मरण किया गया है।[6] इसी प्रकार विद्यापति की 'कीर्तिलता' मे भी दुष्टो का स्मरण प्राप्त होता है।[7] स्पष्ट है कि तत्कालीन काव्यों मे सज्जन-प्रशंसा के साथ दुर्जन-निन्दा भी प्राय: की गयी है। प्राकृत साहित्य की यह परम्परा अपभ्रंश मे स्वीकृत होकर आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी में भी आ गयी है।

छन्दविधान की दृष्टि से प्राकृत के कवियो ने विशेष रूप से मात्रिक छन्दो का प्रयोग किया है। अपभ्रंश एवम् हिन्दी मे यही प्रवृत्ति प्राप्त होती है। वास्तव में मात्रावृत्त संगीत के लिए अधिक उपयुक्त होने है। अभिज्ञो का

---

1. कुमारसम्भव 1-40 2. वही, 1-29, 30
3. पाडुरंगमाहात्म्य 1—14, 15 4. वसुचरित, 1—11
5. मानस, बालकाण्ड 4—1, 2, 3, 4
6. 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', पृ. 234
7. वही. पृष्ठ 203

कथन है कि प्राकृत छन्द अपने प्रारम्भ काल से ही मात्रावृत्त रहे है ।[1] वर्णवृत्तो की अपेक्षा मात्रिक छन्दो में कवियों की स्वेच्छा के लिए अधिक अवकाश मिलता है। गाथा प्राकृतकाल का सुप्रसिद्ध छन्द है । प्राकृत कालीन प्रभाव गाथा छन्द पर इस रूप में भी द्रष्टव्य है कि अपभ्रश काव्यो मे थोडे अपभ्रश शब्द रूपो के अतिरिक्त इन छन्दो की भाषा प्राकृतबहुला पायी जाती है।[2] इसी गाहा छन्द का सस्कृत रूप आर्या है । तेलुगु भाषा मे प्राप्त 'कन्दमु' गाथा छन्द का ही परिवर्तित रूप है। ग्यारहवीं शताब्दी के नन्नयभट्ट के पूर्व के तेलुगु के शिलालेखो मे वर्णवृत्तो की अपेक्षा देशी छन्दों का ही प्रयोग अधिक है । उदाहरण के तौर पर युद्धमल्ल के बेजवाडा शिलालेख के 'मध्याक्कर' छन्द एवम् पडरग के अद्दकि शिलालेख मे प्रयुक्त 'तरुवोज' छन्द का उल्लेख किया जा सकता है । ये देशी छन्द गाने के लिए अधिक उपयुक्त है ।हिन्दी के महाकाव्यो मे सस्कृत के वर्णवृत्त एवम् प्राकृत तथा अपभ्रंश के माध्यम से विकसित मात्रिक छन्द दोनो का प्रयोग लक्षित होता है । इस प्रकार तेलुगु एवम् हिन्दी मे महाकाव्य-रचना के लिए पूर्वपीठिका के रूप मे प्राकृत साहित्य के छन्द एवम् विषय की लोकोन्मुखी दृष्टि एवम् गेयगुण दृष्टिगत होते है । तुलसी ने सस्कृत के वर्णिक छन्दो का प्रयोग मानस मे करते हुए भी हिन्दी भाषा मे मात्रिक छन्द की प्रकृति के अनुसार उन्हे तुकान्तरूप दिया है ।

अप्रस्तुत-विधान की दृष्टि से प्राकृत काव्यो को लोकोन्मुखी माना जाता है । कवि-परम्परा मे प्रसिद्ध अप्रस्तुतो के अलावा अपनी लोकनिरीक्षण-शक्ति के फलस्वरूप साधारण जीवन मे प्राप्त उपमानों का ग्रहण 'गाथासप्तशती' जैसे काव्यो मे पाया जाता है। अपभ्रश एवम् हिन्दी की काव्यधारा मे यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । तुलसी एवम् जायसी के महाकाव्यो में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते है । केशव में शास्त्र-पक्ष या आचार्य पक्ष के प्रबल होने के कारण कविपरम्पराप्रसिद्ध अप्रस्तुतों का चयन ही अधिकाशत: दिखाई पडता है । तेलुगु के महाकाव्यो मे श्रीकृष्णदेवराय के महाकाव्य मे कवि की निरीक्षण शक्ति के फलस्वरूप पशुओ, पक्षियो, नदियो, खेतो आदि से सम्बन्धित नवीन उपमानो का भी सयोजन प्राप्त होता है ।

प्राकृत साहित्य में द्वयाश्रय काव्य हेमचन्द्र विरचित 'कुमारपालचरित' के रूप में प्राप्त होता है । स्वरचित प्राकृत व्याकरण के नियमो को स्पष्ट करने

---

1 डा. विपिनविहारी त्रिवेदी : 'चन्दवरदाई और उनका काव्य', पृष्ठ 212

2 डा. विपिनविहारी त्रिवेदी. 'चन्दवरदाई और उनका काव्य', पृष्ठ 217

के लिए हेमचन्द्र ने इस महाकाव्य की रचना की थी। इस महाकाव्य मे महाराष्ट्री प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषा के नियम और उदाहरण वर्णित है। इसे शास्त्रीय महाकाव्य कह सकते हैं। विविध प्राकृतो के नियम-उदाहरण के साथ-साथ गुजरात के राजा कुमारपाल के पराक्रम का वर्णन भी समग्र काव्य मे सम्पन्न हुआ है। सस्कृत मे भट्टिकाव्य इस प्रकार का शास्त्रकाव्य है, जिसमे द्वयाश्रयत्व प्राप्त होता है। शास्त्रकाव्यो के अलावा दो भिन्न कथाओ के द्वयाश्रय काव्य 'राघवपाण्डवीय' आदि सस्कृत भाषा मे मिलते हैं। द्वयाश्रय काव्य लिखने के लिए प्रगाढ पाण्डित्य के साथ पाण्डित्य-प्रदर्शन एवम् नवीन प्रयोग की प्रवृत्ति भी अपेक्षित है। प्राकृत साहित्य मे कुमारपालचरित के रचयिता हेमचन्द्र के सफल वैयाकरण होने के कारण ही इस प्रकार की काव्य-रचना हो सकी। फिर भी ऐसे प्रयोग को विरल ही कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य मे और अपभ्रश मे भी द्वयाश्रय काव्यो का प्राय: अभाव ही समझना चाहिए। किन्तु तेलुगु में पिंगलि सूरनार्य, रामराजभूषण आदि कवियो के द्वारा विरचित द्वयाश्रय महाकाव्यों की एक अलग कोटि दृष्टिगत होती है, जिसके लिए तत्कालीन कवियों का प्रगाढ सस्कृत पाण्डित्य, नवीन काव्य प्रयोग की भावना, चमत्कार प्रदर्शन, अन्य कवियो की तुलना मे अपनी सामर्थ्य को प्रकट करना आदि प्रवृत्तियाँ उत्तरदायी है।

संस्कृत और प्राकृत की ही भाँति अपभ्रश साहित्य का महत्त्व हिन्दी काव्यधारा की जननी के रूप मे अक्षुण्ण है। अपभ्रश हिन्दी की समीपवर्ती भाषा काल की दृष्टि से है अथवा हिन्दी को अपभ्रश का आधुनिक रूप कह सकते है। अपभ्रश साहित्य में हिन्दी के काव्यरूपो की विभिन्न धाराओ के पूर्वरूप मिल जाते है। शैली की दृष्टि से अपभ्रश की ही कतिपय पद्धतियाँ हिन्दी काव्यो मे प्राप्त होती है। अत. डॉ. रामसिह तोमर के शब्दो में—अपभ्रंश का हिन्दी पर प्रभाव कहने की अपेक्षा यह कहना उचित होगा कि हिन्दी काव्य के विभिन्न रूपों की धाराओं के मूलस्रोत आठवी शती विक्रम तक तो स्पष्ट मिलते हैं और तब से नाना प्रकार से परिवर्तित सम्वर्द्धित होते हुए वे अठारहवी शती तक प्रवाहित होते रहे।[1]

हिन्दी के आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' के सम्बन्ध मे एक धारणा यह भी दिखाई पडती है कि रासो का मूल ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा मे ही रचा गया जो कालान्तर में बढते-बढते अनेक भाषाओं के पुट के साथ

1. हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड), भा. हिं. प. पृष्ठ 427

आधुनिक रूप मे परिवर्तित हो गया ।[1] स्मरणीय तथ्य यह भी है कि मुनि जिनविजय जी को प्राप्त 'पुरातन-प्रबन्ध-सग्रह' के पृथ्वीराज विषयक छन्दो की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रश है जिसका किंचित् परिवर्तित रूप पृथ्वीराजरासा मे मिलता है ।[2] इसके अतिरिक्त अद्दहमाण के सदेशरासक की कतिपय प्रवृत्तियो को 'पृथ्वीराजरासो' मे लक्षित किया जाता है ।[3] तुलसी के रामचरित मानस मे प्राप्त मानस रूपक का आदि स्रोत स्वयंभू के 'पउमचरिउ' मे दिखाई पडता है । स्वयंभू ने राम कथारूपी सरिता को प्रवाहित करते हुए कहा कि इसमे अक्षर समूह सुन्दर अलंकार और शब्द मत्स्य-गृह है, दीर्घ समास वक्र-प्रवाह है, सस्कृत और प्राकृत पुलिन है, देशी भाषा दोनो उज्जवल तट है, कवि द्वारा प्रयुक्त कठिन और सघन शब्द शिलातल के समान हैं, अर्थबहुलता उठती हुई तरगे है ।[4] तुलसी ने अपने काव्य को सरिता नही कहकर सरोवर कहा है । भाषा और अलंकार के अतिरिक्त छन्दविधान मे भी अपभ्रश की परम्परा हिन्दी मे आयी । तुलसी और जायसी की दोहाचौपाई शैली का मूल स्रोत अपभ्रश काव्यो की कडवक शैली मे माना गया है । इस प्रकार हिन्दी की महाकाव्य-विधा की पृष्ठभूमि के रूप मे अपभ्रश साहित्य की कतिपय प्रवृत्तियाँ विद्यमान है । रासो, केशव आदि की छन्दवैविध्य की प्रवृत्ति भी अपभ्रश मे है ।[5]

तेलुगु साहित्य पर अपभ्रश का उल्लेखनीय प्रभाव दिखायी नही पडता । इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि अपभ्रश साहित्य का रचनाकाल अर्थात् छठवी से सत्रहवी शताब्दी तक के काल मे तेलुगु पर्याप्त साहित्य से सम्पन्न हो चुकी थी और अपभ्रश साहित्य का उत्कर्षकाल (स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल, नयनन्दि कनकमार, श्रीधर) तेलुगु साहित्य के विकास एव उत्कर्षकाल के समानान्तर ही चल रहा था । दूसरा कारण भौगोलिक दूरी है । अपभ्रश मुख्यतः गुजरात, राजस्थान एव मालव प्रान्त को केन्द्र बनाकर पल्लवित साहित्य है । सुदूर दक्षिण से इन प्रान्तो का सम्पर्क नही था । तीसरा कारण धार्मिक परिस्थितियो के रूप मे है । अपभ्रंश का अधिकाश साहित्य जैन धर्मावलम्बी ही अब तक उपलब्ध है । यद्यपि धार्मिक महत्त्व से पृथक् शुद्ध

1. प्रो. हरिवश कोछड, अपभ्र श साहित्य, पृष्ठ 116
2 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, भूमिका, पृष्ठ 12
3 प्रो हरिवश कोछड़ अपभ्र श साहित्य, पृष्ठ 116
4 डा धीरेन्द्र बहादुर सिह 'तुलसी की कलागत चेतना', पृ. 125
5. डा. रामसिंह तोमर : प्रा. अप. सा. हि. प्रभाव, पृ. 242

साहित्यिक रचनाओ का रचा जाना भी स्वाभाविक है, पर भी धार्मिक संस्थाओ का आश्रय प्राप्त होने के कारण जैन धर्म से सम्बन्धित अधिकाश साहित्य अब तक सुरक्षित रह सका है। अनुमान किया जाता है कि आन्ध्र प्रान्त मे भी जैनो के द्वारा प्रणीत काव्य रहे होंगे जा धार्मिक विद्वेष के कारण नष्ट हुए होंगे। तेलुगु प्रान्त के समीपस्थ कर्णाट भाषा मे जैन धार्मिक काव्य उपलब्ध होते हैं और ये जैन कवि सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओ के विद्वान थे।[1] हिन्दी साहित्य की भौगोलिक स्थिति एव जैन धर्म का मध्यदेश में अधिक प्रचलन के अतिरिक्त भाषा एव साहित्य दोनो दृष्टियो से हिन्दी का अपभ्रश का ही परवर्ती रूप होना ऐसे कारण है जो अपभ्रश की प्रवृत्तियों के हिन्दी मे पालन के लिए उत्तरदायी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह स्वीकारोक्ति है— हिन्दी में दसवीं मे चौदहवी शताब्दी तक के काल का साहित्य अपभ्रश प्रधान साहित्य है।[2] चौदहवी शताब्दी के बाद मे भी हिन्दी कवि इतिवृत्त के लिए मस्कृत साहित्य तथा वर्णन विधान के लिए अपभ्रश माहित्य की प्रेरणा ग्रहण करते थे। उपर्युक्त चर्चा के प्रकाश मे डा. रामसिंह तोमर का कथन है—"हिन्दी साहित्य ने जितना सीधा सम्पर्क अपभ्रश साहित्य से रखा है, उतना कदाचित् अन्य प्रान्तीय भाषा ने नहीं रखा।[3] यह तेलुगु साहित्य के विशेष सदर्भ मे भी यथार्थ है।

तेलुगु प्रान्त भौगोलिक दृष्टि से तमिल एव कन्नड भाषी प्रदेशो के समीपस्थ है। अतएव तेलुगु मे साहित्य रचित होने के पूर्व ही साहित्य से सम्पन्न तमिल एव कन्नड भाषाओं की कुछ परम्पराओ का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर पडना स्वाभाविक था। भौगोलिक सामीप्य के अतिरिक्त कुछ राजवशो का इन विभिन्न भाषा क्षेत्रो पर शासन करना दूसरा कारण है, जिसके फलस्वरूप तमिल, कन्नड एव तेलुगु परस्पर निकट आ गई। चालुक्य नरेशों का आधिपत्य तेलुगु तथा कन्नड प्रान्तो पर एक साथ था। इसके अतिरिक्त चालुक्य राजाओ के वैवाहिक सम्बन्ध तमिल प्रान्त के चोलवशीय नरेशो से थे। विजय नगर साम्राज्य एवं चालुक्य राजाओ के शासन-काल में भिन्न भाषाओं के कवियो को राजकीय सरक्षण प्राप्त था अर्थात् राजसभाओं मे इन अलग-अलग भाषाओ के कवि रहते थे। तत्कालीन कवि अपने बहुभाषा-पाण्डित्य के कारण

1. हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग), पृ. 189
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ 18
3 'प्राकृत और अपभ्रश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' पृ 283

अन्य समीपस्थ भाषाओ के साहित्य से पूर्णत अभिज्ञ थे। इन राजनैतिक एव भौगोलिक कारणो मे भी प्रबल कारण धार्मिक है। आचार्य रामानुज एव अलवार भक्तो और नायनारो की जन्मभूमि तमिल प्रान्त है और उनकी भक्ति-रचनाओं से तमिल का साहित्य सम्पन्न था। इसी प्रकार वीरशैव धर्म के प्रादुर्भाव तथा उस सम्प्रदाय के प्रवर्तक बसवन्ना की निवास-भूमि कर्णाट प्रान्त है। वैष्णव धर्मावलम्बियो के लिए द्रविड साहित्य एव वीरशैव मतावलम्बियो के लिए कन्नड साहित्य विशेष आकर्षण के विषय रहे है। इन कारणों से तेलुगु महाकाव्यो पर कन्नड तथा तमिल भाषाओ का प्रभाव पडा।

महाकाव्यों को आश्वासो मे निबद्ध करना, गद्यपद्य मिश्रित चम्पू शैली का अवलम्ब ग्रहण करना, वर्णवृत्तो को सस्कृत की तत्सम प्रधान भाषा शैली मे प्रयुक्त करना मध्याक्कर, तरुवोज आदि देशी छन्दो का काव्यो मे प्रयोग आदि अंश कन्नड साहित्य से ही तेलुगु मे प्रवेश कर गए है। कर्णाट साहित्य मे छ. चरणो से युक्त छन्द भी प्राप्त होते है। तेलुगु मे साधारणत. चार चरणो के पद्य ही प्राप्त होते है। तेनालि रामकृष्ण कवि ने अपने काव्य मे राधा की तपस्या के प्रसंग मे ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए यह लिखा था—'ग्रीष्म काल मे बेला पुष्प कन्नड कवित्व की भाँति षटपद्-वृत्त-विलास-भासुर हुए।[1] यहाँ षटपद शब्द के षटपदी छन्द एवं भ्रमर दो अर्थ है। नन्निचोड कवि ने वसन्त ऋतु के वर्णन मे 'षटपद मन्जु गीति' शब्द का प्रयोग किया है।[2] इस प्रकार तेलुगु कवि कन्नड के 'भामिनी षट्पदी' छन्द के गेय गुण से पूर्णत अभिज्ञ थे। नन्निचोड, पालकुरिकि सोमनाथ, धूर्जटी आदि के काव्यों मे कन्नड भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। वीरशैव साहित्य में इतिवृत्त के रूप मे बसवन्ना, अक्कमहादेवी आदि कन्नड प्रान्तीय शिव भक्तो के जीवन चरित ग्रहण किए गए हैं। इसी प्रकार तमिल प्रान्त की भक्तिन गोदादेवी (आंडाल), आलवार विष्णुचित्त और यामुनाचार्य के जीवन से सम्बन्धित इतिहास 'आमुक्त माल्यदा' नामक महाकाव्य मे ग्रहण किया गया है। विप्रनारायण नामक एक अमायिक विष्णुभक्त की कथा 'विप्रनारायणचरित्र' एव 'वैजयन्तीविलासमु' नामक काव्यो में वर्णित है। तमिल साहित्य के गुरुपरम्पराप्रभाव, द्राविड दिव्य प्रबन्ध, तिरुप्पावै आदि का प्रभाव श्रीकृष्णदेवराय विरचित महाकाव्य पर लक्षित होता है। पालकुरिकि सोमनाथ के 'बसवपुराण' एवं धूर्जटी के

1. पाडुरंगमाहात्म्यमु—4—16।
2 कुमारसम्भव—4—102।

'कालहस्तिमाहात्म्य' मे तमिल प्रान्त के शिवभक्तो के चरित वर्णित है। इन काव्यों में तमिल भाषा के शब्द भी प्राप्त होते है। श्रीकृष्णदेवराय ने तमिल स्त्रियो के वर्णन मे उन स्त्रियों के लिए 'दिव्यप्रबन्धयुगास्यल्' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द के प्रयोग मे कवि का यही आशय था कि वे स्त्रियाँ दिव्य प्रबन्ध का पाठ करती थी। आलवार सन्तो के भक्तिपूर्ण पदो के सग्रह को तमिल मे 'दिव्य प्रबन्ध' या द्रविड प्रबन्ध कहा जाता है और उसका पाठ विष्णु मन्दिरो मे दक्षिण मे किया जाता है।[1] इस प्रकार तमिल एव कन्नड का प्रभाव तेलुगु महाकाव्य पर दिखाई पडता है। हिन्दी साहित्य पर यह प्रभाव बिल्कुल नही है।

तेलुगु एव हिन्दी के भिन्न भाषा क्षेत्रो मे विकसित महाकाव्य-विधा के स्वरूप मे साम्य एव भिन्नता के लिए इन क्षेत्रो की वातावरणगत समानता एव विषमता ही मुख्य कारण रही है। इसके अतिरिक्त कवियो के विशिष्ट दृष्टि-कोण के कारण भी काव्य-रूप का स्वरूप निर्धारित होता रहा। हिन्दी का प्रमुख महाकाव्य 'रामचरितमानस' अपभ्रश के कथाकाव्यो तथा सस्कृत के पुराणो से पर्याप्त प्रभावित है। तुलसी के सामने 'साहित्य-दर्पण' आदि लक्षण ग्रन्थो मे निरूपित महाकाव्य का स्वरूप कदाचित् नही था।

तुलसी जैसे भक्त एव समन्वयात्मक प्रतिभा के प्रखर व्यक्तित्व ने तेलुगु मे रामकाव्य का प्रणयन नही किया था। तुलसी के सदृश रामभक्त एव प्रथम कोटि के प्रतिभाशाली पोतनामात्य का व्यक्तित्व तेलुगु क्षेत्र मे दृष्टिगत होता है। परन्तु पोतना आन्ध्र भागवतकार है और भागवत अपने मूल रूप में यानी संस्कृत मे पुराण है और तेलुगु मे भी पुराण है। तेलुगु साहित्य के क्षेत्र मे भक्ति-तन्मयता, सर्वजन-रंजकता तथा उपादेयता की दृष्टि से तेलुगु भागवत का वही स्थान है, जो हिन्दी मे 'रामचरितमानस' का है। भागवत मे उत्कृष्ट एव अतीव मधुर भक्ति कवित्व की निधि है। तो भी उसका काव्यरूप सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वशानुचरित के लक्षण से अनुशासित होने के कारण महा-काव्य के वर्ग में नही आता। 'रामचरितमानस' पर अपभ्रश साहित्य की जिन रचना पद्धतियो का प्रभाव है, उनसे तेलुगु काव्य-ग्रन्थ पृथक रहे हैं, क्योकि अपभ्रश और उसकी परम्पराओं का प्रचलन तेलुगु क्षेत्र में प्राय नही था। हिन्दी साहित्य के रामकाव्य मे अध्यात्म रामायण की परम्परा विशेष रूप से गृहीत हुई है और तेलुगु साहित्य मे वाल्मीकि रामायण की साहित्यिक परम्परा

---

1 आमुक्तमाल्यदा 1 56

का अधिक प्रशस्त प्रतिफलन हुआ है। मूलस्रोतों के इस वैभिन्य के कारण हिन्दी और तेलुगु का रामसाहित्य दो पृथक सरणियों पर चल पड़ा है। एक मे भक्तितत्व की प्रधानता है और दूसरे मे साहित्यिक एव दार्शनिक तथ्य का अधिक गहरा प्रभाव है।[1]

आचार्य कवि केशवदास के सामने सस्कृत के महाकाव्य और लक्षण ग्रन्थों मे निरूपित महाकाव्य का स्वरूप विद्यमान था। इसीलिए तुलसी की अपेक्षा केशव सस्कृत महाकाव्य के अधिक निकट दिखाई पडते है। इसके अतिरिक्त केशव के व्यक्तित्व पर वैराग्य सपन्न त्यागवादी सस्कारो की अपेक्षा राजसी वातावरण एवं भोगवादी संस्कारो का अधिक प्रभाव है। राजाश्रय मे केशव का रहना, उनकी रीतिप्रियता, तत्कालीन वैभव-विलासपूर्ण राजसी-पद्धति एव अलकार-प्रियता ने 'रामचन्द्रिका' के काव्य-रूप को निर्धारित किया। जहाँ तुलसी मे भक्तिकाव्य की परम्परा प्रमुख है, केशव मे शुद्ध साहित्यिक परम्परा के दर्शन होते है। तेलुगु के महाकाव्य प्राय. शुद्ध साहित्यिक परम्परा में ही विरचित है। अधिकाश महाकाव्यो के राजसी वातावरण एव राजाश्रय मे निर्मित होने के कारण अलकरण-प्रियता, वर्णनप्रियता एव रीतिबद्धता का अधिक आग्रह लक्षित होता है। तत्कालीन नरेशो की विलासप्रियता एव युगधर्म के अनुरूप रसराज शृगार को प्रमुख स्थान तेलुगु के महाकाव्यो मे प्राप्त हुआ। सस्कृत साहित्य के विशेष प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त सस्कृत भाषा मे जिस प्रदेश मे काव्यो का सृजन भी होता था, उस प्रान्त मे समानन्तर रूप से रचित तेलुगु महाकाव्यो मे संस्कृत महाकाव्यों की परम्पराओ का स्वीकृत होना सहज था। तेलुगु के कुछ महाकवियो के द्वारा सस्कृत मे भी काव्य-रचना के कतिपय प्रमाण उपलब्ध होते है।

हिन्दी मे जायसी के 'पद्मावत' पर अपभ्रश के कथाकाव्यो, लोकगाथाओ एव फारसी की मसनबी का समवेत प्रभाव पडा है। सूफी दार्शनिक विचार-धारा ने भी जायसी के काव्यरूप को पर्याप्त प्रभावित किया है। पद्मावती के रूप-वर्णन मे स्थान-स्थान पर अलौकिक पारमार्थिक सत्ता की ओर स्पष्ट सकेत, सूर्यनाडी, चद्रनाडी, सहस्रार इत्यादि साधनात्मक यौगिक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग, रत्नसेन-पद्मावती के शृंगार-वर्णन मे भी, समासोक्ति पद्धति के द्वारा प्रतीक तत्व का निर्वाह आदि विशेषताएँ कवि के सूफी सम्प्रदायी होने

---

1. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : 'हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यो का तुलनात्मक अनुशीलन' का प्रारम्भिक वक्तव्य, पृष्ठ 6

के कारण पद्मावत में प्राप्त होती है। आन्ध्र प्रान्त मे सूफी सम्प्रदाय के विशेष प्रचलन के अभाव के कारण तेलुगु के महाकाव्यो मे ऐसी विशेषताएँ दृष्टिगत नही होती है। मध्यदेश मे शासको का इस्लाम सम्प्रदाय, फारसी साहित्य आदि का सम्पर्क एवं समन्वय भारत के आर्यधर्म, दर्शन, जन-जीवन, कला आदि के साथ सम्पन्न हुआ था। सुदूर दक्षिण मे स्थित होने के कारण तेलुगु क्षेत्र मे ऐसा समन्वय उतने बडे पैमाने पर सम्पन्न नही हुआ था। तेलुगु में द्वयाश्रय महाकाव्यो की एक कोटि मिलती है और अपभ्रंश तथा हिंदी मे उस प्रकार के काव्यो के अभाव का एक कारण यह हो सकता है कि भिन्न अर्थों की प्रतीति के लिए सर्वाधिक समर्थ संस्कृत की तत्सम शब्दावली होती है, तेलुगु में सस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग है और अपभ्रंश तथा हिन्दी में सस्कृत शब्दो की विरलता ही अधिक है। काव्य भाषा की तत्सम-शब्द-प्रधानता हिन्दी की आधुनिक प्रवृत्ति है। हिन्दी कवियो मे द्वयाश्रय काव्य लिखने की प्रवृत्ति का अभाव भी एक अन्य कारण हो सकता है। इसी प्रकार इतिवृत्त छन्द प्रयोग, अप्रस्तुतविधान आदि मे तमिल एव कन्नड भाषाओ का प्रभाव तेलुगु पर है। हिन्दी के काव्यो पर ऐसा प्रभाव नही होने के कारण तमिल एव कन्नड साहित्य की विशेषताएँ हिन्दी के महाकाव्यो मे दिखायी नही पडती।

हिन्दी एव तेलुगु के महाकाव्यो मे 'आशीर नमस्क्रिया वस्तुनिर्देश' वाला मगलाचरण प्राय प्राप्त होता है। इस मंगलाचरण मे इष्टदेवता की वदना, गुरु की वन्दना, अपने से पूर्व के सस्कृत, प्राकृत कवियो की वन्दना, दुर्जनो की निन्दा या दुष्कवियो की निन्दा, आश्रयदाता नरेश की प्रशसा, कवि का आत्म परिचय एवं काव्य-रचना का उद्देश्य, विनय-प्रदर्शन आदि का सयोजन रहता है। महाकाव्य का नायक देवाश सम्भूत क्षत्रियकुलोत्पन्न, सत्कुलीन राजा होता है जो धीरोदात्त गुणो मे युक्त होता है या देवता होता है। इसके अतिरिक्त शृगार, वीर, शान्त इन प्रधान रसों मे से कोई एक अगीरस होता है। केवल सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो को छोडकर हिन्दी एव तेलुगु के महाकाव्यो मे प्राय अध्याय-विभाजन प्राप्त होता है। रासोकार ने समय कहा, मानसकार ने सोपान कहा, रामचन्द्रिका के रचयिता ने 'चन्द्रिका' नाम की सार्थकता को द्योतित करने के लिए प्रकाश का अभिधान दिया है। तेलुगु महाकाव्य प्राकृत की परम्परा के अनुसार आश्वासबद्ध हैं। हिन्दी महाकाव्य मे छन्दविधान की दो परम्पराएँ प्राप्त होती हैं। जायसी एव तुलसी में दोहा चौपाई की शैली है तो रासो, रामचन्द्रिका, छत्रप्रकाश, राजविलास आदि मे छन्दो-वैविध्य की परम्परा दृष्टिगत होती है। तेलुगु के अधिकाश महाकाव्यों में छन्दोवैविध्य की

परम्परा को ही स्वीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त कथानक को रामायण, महाभारत आदि पौराणिक स्रोतो से ग्रहण करने की पद्धति भी हिन्दी एव तेलुगु मे समान है। भुजगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्विणी, मालिनी आदि सस्कृत के वर्णवृत्तो एव सस्कृत के श्लोको का भी सयोजन दोनो भाषाओ के महाकाव्यो में समान है। सस्कृत एव प्राकृत के रूढ अप्रस्तुतो का चयन एव कवि-समयो का पालन भी इन भाषा-कवियों में समान रूप से प्राप्त होता है। इस प्रकार की समानताओ का मूल कारण तेलुगु एव हिन्दी के भाषा-क्षेत्रो मे मध्यकाल तक प्रचलित धार्मिक, दार्शनिक एव पौराणिक मान्यताओं की समानता है। साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप मे सस्कृत एवं -प्राकृत महाकाव्यो के अतिरिक्त संस्कृत का काव्यशास्त्र भी हिन्दी एव तेलुगु के महाकाव्यो के लिए समान है। अत. आलोच्य भाषाओ के महाकाव्य-साहित्य की मूलभूत एकता असदिग्ध है।

तृतीय अध्याय

वर्गीकरण और प्रमुख महाकाव्यों का परिचय

हिन्दी एव तेलुगु के साहित्यो मे विविध प्रकार के महाकाव्य लिखे गये। अध्ययन की सुविधा के लिए इन समस्त महाकाव्यो को कुछ निश्चित तत्वो के आधार पर वर्गीकृत करना और वर्गीकरण के अनुसार दोनो क्षेत्रों के प्रमुख महाकाव्यो का विवेचन करना इस काव्यरूप के विकास को स्पष्ट करने मे अधिक उपादेय होगा। वर्गीकरण की दृष्टि से भी आलोच्य भाषाओ मे प्राप्त महाकाव्यो की समानताओं एवं विषमताओ का अवलोकन सुगम होगा। गुण एव राशि की दृष्टि मे किसी एक क्षेत्र मे प्राप्त विशिष्ट प्रकार का आधिक्य एव दूसरे क्षेत्र मे उसकी न्यूनता कवियो के दृष्टिकोण नथा तत्कालीन परिस्थितियो की ओर सकेत करती है।

विकसनशील एवं अलंकृत महाकाव्य

पाश्चात्य आलोचको ने ऐतिहासिक अध्ययन के प्रयोजन से पूर्ववर्ती महाकाव्य अथवा आदिम महाकाव्य (Premitive epic) तथा परवर्ती महाकाव्य (Later epic) का विभेद माना है।[1] दूसरे शब्दो में इस वर्गीकरण को विकसनशील महाकाव्य (epic of growth) एव कलात्मक अथवा अलकृत महाकाव्य (epic of art) का वर्गीकरण कह सकते है। विकसनशील महाकाव्य सैकडो वर्षो मे असंख्य व्यक्तियो के बीच मौखिक एव लिखित परम्पराओ मे विकसित होते हैं। विभिन्न कालों मे गायको, चारणो और लिपिको के द्वारा इनका रूप-विकास होता है। परन्तु अलकृत महाकाव्यो की रचना विशिष्ट कवियो के द्वारा विशिष्ट एव निश्चित समय मे की जाती है। यूनानी महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडेसी' को विकसनशील महाकाव्य माना जाता है और तदनन्तर काल के वर्जिल, स्पेन्सर, मिल्टन आदि के महाकाव्यो को अलकृत। संस्कृत के रामायण एव महाभारत को कुछ विद्वान् विकसनशील महाकाव्य मानते है। परन्तु भारतीय परम्परा में विकसनशील महाकाव्य का भेद मान्य नहीं। प्राचीन परम्परा रामायण को तो काव्य कहती है और महाभारत को काव्य से पृथक् 'पचमवेद', 'भारतसहिता', 'इतिहास' आदि कहकर महाकाव्य से भिन्न कोटि मे रखा गया है। डा. शभूनाथ सिंह ने हिन्दी के 'पृथ्वीराजरासो' एव 'आल्हाखण्ड' को विकसनशील महाकाव्य मानकर उनका विवेचन किया है। इधर पाठालोचन की वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'पृथ्वीराजरासो' का सम्पादन किया है और 'आल्हाखण्ड'

---

1. An Introduction to the study of literature. P. 105

को कतिपय त्रुटियों एव निम्न साहित्यिक स्तर के कारण महाकाव्य के पद पर प्रतिष्ठित करना समीचीन नही है। अत हिन्दी के सन्दर्भ मे विकसनशील एव अलकृत महाकाव्य का वर्गीकरण उपादेय नही है। तेलुगु साहित्य मे 'पलनाटिवीरचरित्र' को विकसनशील कृति माना जाता है। किन्तु इसमे महाकाव्योचित गरिमा का अभाव है।

उत्पाद्य और अनुत्पाद्य महाकाव्य

इतिवृत्त की साहित्यिक अथवा साहित्येतर स्रोतो मे प्रसिद्धि और केवल कविकल्पना-जन्यता के आधार पर प्रख्यात और उत्पाद्य के भेद से महाकाव्यो का वर्गीकरण किया जा सकता है। रुद्रट के शब्दो मे—

> **'तात्रोत्पाद्या येषां'' शरीर मुत्पादयेत्कवि सकलम्।**
> **कल्पित युक्तोत्पत्ति नायक मपि कुत्र चित्कुर्यात्॥**
>
> तथा
>
> **पंजर मितिहासादि प्रसिद्धमखिलं तदेक देशंवा**
> **परिपूरयेत्स्ववाचा यत्र कवि स्तेत्वनुत्पाद्या.।**[1]

अर्थात् उत्पाद्य काव्य वे कहलाते है जिनके सम्पूर्ण शरीर को कवि बनाता है और कही नायक को भी अपनी कल्पना से बनाता है और अनुत्पाद्य (प्रख्यात) वे कहलाते है, जहाँ कवि इतिहास आदि मे प्रसिद्ध सम्पूर्ण कथाशरीर को या उसके एक भाग को अपनी वाणी से पूर्ण करता है। भारतीय साहित्य में शुद्ध काल्पनिक इतिवृत्तो की अपेक्षा प्रख्यात कथाओ को ही कवियो एव प्रमाताओ ने ग्रहण किया है। रसवादी साहित्यिक दृष्टि से साधारणीकरण के लिए प्रख्यात कथानक एव परम्परा प्रसिद्ध भव्य नेता का चित्रण अधिक उपयुक्त समझा गया। फिर भी काल्पनिक कथाओ मे काव्यात्मक अभिव्यक्ति का बिल्कुल अभाव नही है। कुछ प्रतिभाशाली कवियो ने अपने उद्देश्य के अनुरूप शुद्ध कल्पनाश्रित इतिवृत्त का सयोजन अपने महाकाव्यो में अवश्य किया है और ऐसे काव्यों को तत्कालीन साहित्याभिरुचि एव आलकारिक मान्यताओ की दृष्टि से नवीन प्रयोग कह सकते हैं। तेलुगु के रामराज भूषण कवि के अनुसार उनके आश्रयादाता नरेश ने उन से यह अभ्यर्थना की थी "शुद्ध कल्पनाश्रित कथाये कृत्रिम रत्न है और आद्य सत्कथाएँ खान से तत्काल निकाले हुए रत्न हैं और श्रेष्ठ कवि की प्रतिभा से विभूषित होकर प्राचीन कथाएँ निखारे हुए उत्तम-

---

1 रुद्रट · काव्यालंकार षोडशोध्याय- श्लोक 3 4

रत्नो की भाति समादरणीय होते है। अतएव कल्पना-चमत्कार एव प्राचीन प्रख्यात इतिवृत्त के सम्मिश्रण से काव्य-रचना हमारे लिए करे।" इस मत मे तत्कालीन अधिकाश साहित्यिको की कथावस्तु सम्बन्धी मान्यता का प्रतिफलन है। हिन्दी के पृथ्वीराजरासो', 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', रामचन्द्रिका', 'हम्मीर रासो', 'छत्रप्रकाश' आदि का इतिवृत्त अनुत्पाद्य है। अनुत्पाद्य कहने में हमारा यही अभिप्राय है कि उपर्युक्त काव्यो के रचना-काल से पूर्व ही उनमे गृहीत इतिवृत्त अपने मूलरूप मे पुराण, इतिहास एवं लोककथा की परम्पराओ मे प्रख्यात रहा है और इस प्रख्यात कथा का ही चयन कवियो ने करके अपने कल्पना-वैभव के पुट से नवीन उद्भावनाओ से मण्डित कर महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। तेलुगु मे मनुचरित्र, वसुचरित्र, आमुक्तमाल्यदा, कुमारसभव, राघवपाडवीय आदि भी अनुत्पाद्य महाकाव्यो की कोटि मे आते है। क्योंकि उनमे स्वीकृत इतिवृत्त पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्रोतो में प्रसिद्ध है। तेलुगु साहित्य मे उत्पाद्य या शुद्ध कल्पना-जन्य महाकाव्यो के वर्ग मे 'कलापूर्णोदय' एव निरंकुशोपाख्यन' की गणना हो सकती है।

प्रख्यात अथवा अनुत्पाद्य महाकाव्यो का विभाजन फिर 1—पौराणिक महाकाव्य, 2—ऐतिहासिक महाकाव्य इन दोनो रूपो मे कर सकते है। पौराणिक महाकाव्य वे है, जिनका इतिवृत्त महाभारत, रामायण, हरिवशपुराण, शिवपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वाराहपुराण आदि पौराणिक स्रोतों से ग्रहण किया गया है। ऐतिहासिक महाकाव्य उनको कह सकते है, जिनका कथानक पृथ्वीराज, हम्मीरदेव, छत्रसाल, श्रीकृष्णदेवराय, काकतीय प्रतापरुद्र, रघुनाथ भूपाल आदि इतिहास प्रसिद्ध वीर पुरुषो से सम्बन्धित है। यद्यपि भारतीय परम्परा में रामायण एव महाभारत को इतिहास भी माना गया है, इस वर्गीकरण के सन्दर्भ में इतिहास शब्द का प्रयोग सर्वथा उसके नवीन अर्थ मे ही किया गया है। इस विभाजन के अनुसार 'रामचरितमानस' एव 'रामचन्द्रिका' पौराणिक महाकाव्य हैं और 'पद्मावत', 'रासो', 'हम्मीररासो', 'छत्रप्रकाश', 'सुजानचरित' तथा 'राजविलास' ऐतिहासिक महाकाव्य हैं। इसी प्रकार तेलुगु के 'स्वारोचिष मनुसम्भव', 'पारिजातापहरण', 'वसुचरित्र', 'राघव पांडवीय' एव 'कुमारसम्भव' पौराणिक महाकाव्य हैं। कृष्णरायविजयमु, सिद्धेश्वरचरित्र, पलनाटिवीरचरित्र, रामराजीयमु आदि ऐतिहासिक महाकाव्य हैं। श्रीकृष्णदेवराय द्वारा विरचित 'आमुक्तमाल्यदा' में तमिल प्रदेश की प्रसिद्ध भक्तिन आण्डाल तथा आण्डाल के पिता विष्णुचित्त से सम्बन्धित कथानक के साथ 'वराहपुराण' से भी उपाख्यानो का चयन किया गया है। प्रधान इतिवृत्त के

आधार पर इस महाकाव्य को पौराणिक की अपेक्षा ऐतिहासिक वर्ग मे स्थान देना अधिक उपयुक्त होगा।

पौराणिक वस्तु को आधार बनाकर रचित काव्य हिन्दी में बहुत है। धार्मिक भिन्नता के कारण पौराणिक वस्तु परम्परागत स्रोतो से पृथक रूप मे कुछ काव्यो में सयोजित है। जैन धर्मावलम्बियो ने महाभारत, रामायण, हरिवश पुराण आदि के आख्यानो मे विशेष परिवर्तन करके अपने धार्मिक सिद्धान्तो के अनुरूप नवीन रूप दिया। हिन्दी से पूर्व अपभ्र श के स्वयभू हरिषेण आदि कवियो की कृतियो मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। हिन्दी में भी प्रद्युम्नचरित' आदि जैन काव्यो मे वस्तु की योजना जैन धर्म की दृष्टि से की गई। यद्यपि 'रामचरितमानस' की छन्द-शैली अपभ्र ंश काव्यों में प्रयुक्त कडवक शैली का विकसित रूप है, मानसरोवर की भाँति अपभ्रश के 'पउमचरिउ' मे कवित्व को नदी बताकर रूपक बाँधा गया, तो भी रामकथा का रूप तुलसी के धार्मिक सिद्धान्तो के अनुरूप वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म-रामायण आदि में लक्षित रूप से बहुत भिन्न नही है। तुलसी ने आधार ग्रन्थो मे प्राप्त अनुचित अशो का परिहार करके मर्यादित रूप में वस्तु को विन्यस्त किया, रामकथा के उज्ज्वल रूप को और उज्ज्वल बना दिया। ठीक यही प्रवृत्ति तेलुगु क्षेत्र मे दिखाई पडती है। तेलुगु से पूर्व साहित्यारूढ़ कन्नड भाषा के पप, पोन्न, रन्न नामक जैन कवियो ने महाभारत के इतिवृत्त को लेकर काव्य रचना की थी। पुट्टपर्ति नारायणाचार्य, निडदवोलु वेंकटराव आदि विद्वानो का मत है कि तेलुगु के कवि छन्द विधान, भाषा-शैली आदि की दृष्टि से उन जैन कवियो से पर्याप्त प्रभावित हैं। किन्तु तेलुगु के कवि वस्तु-स्वीकृति में जैन धर्म से बिल्कुल प्रभावित नही हैं। हिन्दू पुराणो के अनुसार ही तेलुगु कवियो ने इतिवृत्त की योजना अपने काव्यो मे की। तेलुगु मे जैन धर्मावलम्बियों द्वारा विरचित काव्यो का प्राय: अभाव है।

हिन्दी के काव्य-ग्रन्थो ने विशेष रूप से राम और कृष्ण से सम्बन्धित पौराणिक कथावस्तु को ग्रहण किया है। रामकथात्मक वस्तु के स्रोत के रूप मे वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, रघुवश, अनर्घराघव, उत्तररामचरित आदि का आधार तुलसी और केशव ने ग्रहण किया। केशव को छोड़कर हिन्दी का राम साहित्य प्राय: भक्तो का साहित्य है। इसलिए राम का दिव्यत्व एव अवतार भाव काव्य मे व्यग्य रूप मे नही रहकर वाच्य बन गये हैं। स्थान-स्थान पर कवि स्वय और पात्रों के माध्यम से भी राम को भगवान घोषित करते गये। मानस में भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप अध्यात्म रामायण की

कथा-प्रणाली अपनायी गयी। शिव-पार्वती की वक्ता-श्रोता रूप मे योजना, कौसल्या के द्वारा राम की स्तुति आदि अंश वाल्मीकि रामायण मे नहीं है। तेलुगु के प्रसिद्ध महाकाव्यो के इतिवृत्त रामायण, महाभारत, हरिवश, विष्णु-पुराण, मार्कण्डेयपुराण, वराहपुराण, शिवपुराण आदि पौराणिक स्रोतो से गृहीत हुए है। सस्कृत के 'शिशुपालवध' आदि की भाँति पुराणों मे वर्णित किसी स्वल्प कथाश को अपनी प्रतिभा के बल पर वर्णनो की योजना से महाकाव्य का रूप प्रदान किया गया।

हिन्दी साहित्य मे ऐतिहासिक इतिवृत्त के आधार पर काव्य-रचना की प्रवृत्ति आदिकाल के वीरगाथा काव्यो एव रीतिकाल के वीरकाव्यो के रूप मे दिखायी देती है। वीरगाथा काव्यो मे चन्दवरदाईकृत 'पृथ्वीराजरासो' को हिन्दी के प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। इस काव्य का चरित नायक पृथ्वीराज चौहान भारत के इतिहास मे लब्धप्रतिष्ठ वीरपुरुष है। परमालरासो एव बीसलदेवरासो का भी विवेचन आचार्य शुक्ल ने आदिकाल के वीरगाथा काव्यो के अन्तर्गत ही किया था। क्योंकि सबमे 'रासो' शब्द समान रूप से जुड़ा हुआ है। किन्तु 'बीसलदेवरासो' मे वीररस की अपेक्षा शृगार रस का महत्त्व अधिक है और यह काव्य प्रबन्ध न होकर गीतकाव्य बना हुआ है। डॉ माताप्रसाद गुप्त ने रासो और रास का भेद स्पष्ट करते हुए छन्दोवैविध्यपरक रासो काव्य परम्परा एवं गीतनृत्यपरक रासकाव्य परम्परा के भेद की ओर ध्यान आकर्षित करके बीसलदेवरासो को गीतनृत्य-परक काव्यो के अन्तर्गत माना है। साधारण जनता में बहुप्रचलित 'आल्हाखण्ड' भी ऐतिहासिक इतिवृत्त का काव्य है, जिसको बीसवी शती मे स्वर्गीय इलियट साहब की प्रेरणा से सगृहीत किया गया। रीतिकाल मे भूषण, पद्माकर, लाल, सूदन, मान, केशव, जोधराज, ग्वाल, चन्द्रशेखर वाजपेयी आदि ने ऐतिहासिक काव्यो की रचना वीररस की अगी रूप मे योजना करते हुए की है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक काव्य-रचना की प्रवृत्ति आदिकाल से मध्यकाल तक अबाध गति से दृष्टिगत होती है और आधुनिककाल मे भी हल्दीघाटी, नूरजहाँ आदि ऐतिहासिक काव्य इस प्रवृत्ति के उदाहरण है। 'पृथ्वीराजरासो' से लेकर 'हल्दीघाटी' तक प्रवाहित ऐतिहासिक काव्यों की धारा मे युगानुरूप स्वरूप-विकास शिल्पविधान के विषय मे नितान्त स्वाभाविक है। मध्यकाल तक के ऐतिहासिक काव्यों में कुछ को महाकाव्य, कुछ को खण्डकाव्य एव कुछ को मुक्तक काव्य, आकार, विषय-विस्तार, शैली आदि की दृष्टि से माना जाता है। डॉ. टीकमसिंह तोमर ने वीरसिंह देवचरित, राजविलास, छत्रप्रकाश

सुजानचरित एवं हम्मीररासो को महाकाव्य तथा गोराबादल की कथा, जगनामा, रासा भगवन्त सिंह, करहिया को रायसौ और हिम्मत-बहादुर विरुदावली को खण्डकाव्य माना है। रतनबावनी, ललितललाम, शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, जगद्विनोद और प्रतापविरुदावली को कथासूत्र के अभाव के कारण मुक्तक काव्य माना जाता है। चन्दबरदाई, लाल, पद्माकर एव भूषण का महत्त्व काव्यकला की दृष्टि से भी है। इस प्रकार हिन्दी मे ऐतिहासिक काव्यो का प्राचुर्य पौराणिक काव्यो के समान ही है।

तेलुगु साहित्य मे पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रचित काव्य ही प्राचुर्य एव काव्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और ऐतिहासिक काव्यो का स्थान सख्या एव गुण दोनो दृष्टियो से गौण है। इसमे यही निष्कर्ष निकलता है कि मध्यकाल तक के कवियों की दृष्टि मे पौराणिक इतिवृत्त ही काव्य रचना के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी समझे गये है। फिर भी ऐतिहासिक काव्यो का बिल्कुल अभाव नही है। स्वतन्त्र काव्यो के अलावा ऐतिहासिक घटनावाली का काव्यमय रूप अधिकाश कृतियो के अवतारिका भागो मे निबद्ध आश्रयदाताओ की विजय यात्राओं, पराक्रम आदि के वर्णन के रूप मे उपलब्ध होता है। स्वतन्त्र काव्यो के रूप में निम्नांकित कृतियाँ उल्लेखनीय है।

(1) पलनाटिवीर चरित (2) सिद्धेश्वर चरित

(3) रामराजीय (4) कृष्णराय विजय

शिल्पविधान के आधार पर भी महाकाव्यो के विविध प्रकार बनते हैं। शिल्पविधान से हमारा तात्पर्य कवि के द्वारा गृहीत इतिवृत्त के मूल स्रोत से नही, बल्कि उस इतिवृत्त को प्रदत्त रूपात्मक संगठन अथवा आन्तरिक योजना से है। शिल्पविधान के अन्तर्गत प्रतीक तत्व का निर्वाह, कथानक का द्वयाश्रयत्व, वक्ता-श्रोता योजना, विविध छन्दो का प्रयोग आदि समाविष्ट होते है। दोनो साहित्यों को दृष्टिपथ में रखते हुए महाकाव्यो के निम्नांकित भेद किए जा सकते है--

(1) पौराणिक आख्यान शैली के महाकाव्य।

(2) ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य।

(3) प्रतीक शैली के महाकाव्य।

(4) शास्त्रीय शैली के महाकाव्य।

(5) क्षेत्रमहिमा प्रतिपादक महाकाव्य।

(6) बहुअर्थक महाकाव्य।

(7) तद्भव देशज शैली के महाकाव्य ।

क्रमश · उपर्युक्त सात वर्गों के महाकाव्यों की विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

पौराणिक आख्यान शैली के महाकाव्य

हिन्दी मे इस वर्ग के महाकाव्यो मे तन्त्र-विधान की दृष्टि से अपभ्रश के चरितकाव्यो की कतिपय विशेषताओं एव सस्कृत के पुराणो की धार्मिक शैली का अद्भुत समन्वय दिखाई पडता है। हिन्दी का 'रामचरितमानस' इस वर्ग का श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। सस्कृत के शास्त्रीय महाकाव्यो के लक्षणो की अपेक्षा इसमे लोकोन्मुख तत्वों की योजना छन्द विधान, अलकार, भाषा शैली, इतिवृत्त-निर्वहण आदि मे स्पष्टत. लक्षित होती है। धर्मोपदेश-प्रधानता का जो लक्षण पुराणो का है, उसमे उत्कृष्ट साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव है। यही कारण है कि पुराण और महाकाव्य को भिन्न विधाएँ माना गया है और उनका पार्थक्य सुनिश्चित आधार पर द्रष्टव्य है। पुराण महाकाव्यो के उपजीव्य ग्रन्थ हो सकते है। पौराणिक स्रोतों से कवि इतिवृत्त ग्रहण कर सकते है और पौराणिक मान्यताओ को अपनी रचना मे स्थान देते है। इसके साथ ही अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर महाकाव्य को जो रूप प्रदान करते है, वह पुराणो मे बिल्कुल भिन्न होता है। अत. रामचरितमानस को पुराण नही, बल्कि कुछ अशो मे पौराणिक शैली का महाकाव्य कहना तर्कसगत है।

अपभ्रश के चरित काव्यों में वक्ता-श्रोता योजना, कडवकबद्ध शैली, एव वर्णनात्मकता की अपेक्षा चरित्रकथन पर अधिक आग्रह आदि विशेषताएँ मिलती है और तुलसी ने इन विशेषताओ का समावेश अपने काव्य के अन्तर्गत किया है। इसीलिए अपभ्रंश के चरितकाव्यो का जैसा रूप तुलसी के 'मानस' का है। तेलुगु के इस शैली के प्रबन्धकाव्यों में अपभ्रश के चरित काव्यो जैसा बाह्य रूप तो दिखाई नही पडता। फिर भी अतिशय वर्णनात्मकता की अपेक्षा कथा-कथन पर विशेष आग्रह, सर्गबन्धत्व एव छन्दवैविध्य का सुचारु निर्वाह दिखाई पडते है। इनमे हरिवश, भागवतपुराण एवं महाभारत को इतिवृत्तसंविधान की दृष्टि से पुराण कह सकते है, यद्यपि उनमे उत्कृष्ट साहित्यिक सौन्दर्य का समावेश हुआ है। तिक्कनामात्य का 'निर्वचनोत्तररामायण' कंकटि पापराज का 'उत्तररामायण' एवं 'रंगनाथ रामायण' इस कोटि के प्रख्यात महाकाव्य है। तिक्कनामात्य एवं कंकटि पापराज ने अपने काव्यो को महाकाव्य स्वीकार भी किया है।

इस वर्ग के महाकाव्यो की प्रधान प्रवृत्ति दृश्य जगत के विविध रूपो, प्रकृति के रमणीय दृश्यों एवम् राजसी वातावरण के विविध उपादानो के वर्णन की उतनी नही है, जितनी आख्यान कथन की है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इन काव्यो मे काव्योचित सुन्दर वर्णनो का समावेश नही हुआ है। कथाकथन एवम् वस्तु-वर्णन वास्तव मे किसी भी प्रबन्धात्मक काव्य के अनिवार्य अग हैं। कवियों की प्रवृत्ति एवम् दृष्टिकोण के अनुसार किसी महाकाव्य में कथाकथन पर विशेष आग्रह दिखाई पडता है तो किसी मे वर्णनपक्ष प्रबल हो उठता है। तुलसी मे कथा-कौशल की प्रधानता है, जिसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि रामचरितमानस का प्रचार और प्रसार कथा-निर्वाह की सरस पद्धति के कारण अपने मूलाधार ग्रन्थो से भी कई गुना अधिक है। रामचरितमानस की यह प्रवृत्ति पृष्ठभूमि के रूप मे विद्यमान अपभ्रश के 'पउमचरिउ' 'महापुराण' आदि चरितकाव्यो की भी मुख्य प्रवृत्ति है। तेलुगु के 'रगनाथ रामायण' एवं 'निर्वचनोत्तर रामायण' मे भी कवियों की दृष्टि आख्यानपरक रही है। पापराज के 'उत्तररामायण' में युगधर्म के अनुसार वर्णनो का आधिक्य है। फिर भी कथाकथन गौण नही है।

शास्त्रीय शैली के महाकाव्य

सस्कृत के कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, भट्ट हर्ष आदि के द्वारा विरचित काव्यग्रन्थो के आधार पर भामह, दण्डी, रुद्रट, विश्वनाथ कविराज, विद्यानाथ आदि आचार्यो ने 'महाकाव्य' का लक्षण-निरूपण अपने काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों मे किया। परवर्ती कवियो ने उन लक्षणो एवम् लक्ष्यग्रन्थो से प्रभावित होकर महाकाव्य-रचना की। अपने युगानुरूप साहित्यिक वातावरण, अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं एवम् आश्रयदाता-नरेशों की मनोवृत्ति से परिचालित होने के कारण सर्वथा संस्कृत महाकाव्य जैसा रूप देशी भाषाओ मे यद्यपि प्राप्त नहीं होता, तथापि मूल चेतना एवम् कवियों का संस्कृत पाण्डित्य तथा रीतिप्रियता के कारण कुछ महाकाव्यों मे शास्त्रीय महाकाव्य की विशेषताओ का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। शिल्पविधि की दृष्टि से इन काव्यों के उपजीव्य अपभ्रंश के कथाकाव्य एवम् चरितकाव्य नही हैं, प्रत्युत संस्कृत के महाकाव्य है। आख्यान शैली के स्थान पर ऐसे महाकाव्यो मे वर्णनात्मक शैली के दर्शन होते है। कवियों का ध्यान सांगोपाग रूप मे कथा के निर्वाह पर केन्द्रित नही होता, बल्कि सुन्दर दृश्यों एवम् सुरम्य वस्तु वर्णनो के सयोजन पर लगा रहता है। इतिवृत्त का प्रख्यात या उत्पाद्य स्रोत से ग्रहण किये जाने पर भी कभी-कभी उसका सूत्र इतना क्षीण होता है कि रहीम

के शब्दो मे उसे कमलनाल के सूत्र के सदृश एवम् प्रेम-पंथ के समान सूक्ष्म कह सकते है। कथावस्तु कभी किसी पुराण या इतिहास का एक ऐसा अंशमात्र होता है, जैसे 'शिशुपालवध' और 'पारिजातापहरण।' वर्णनात्मकता के अतिरिक्त अलकृत प्रौढ गभीर भाषाशैली शास्त्रीय महाकाव्यों की प्रमुख विशेषता है। कवियो के शास्त्र-पाण्डित्य से सबधित बहुज्ञता की विवृति भी इन काव्यो मे होती है। साधारण पाठक वर्ग को लक्षित करके इन काव्यों की रचना नही होती। प्रबुद्ध एवम् व्युत्पन्न पाठक गण ही इन महाकाव्यो का रसास्वादन करने के अधिकारी है।

प्राकृत भाषा मे गउडबहो, कुमारपाल चरित, सेतुबन्ध, लीलावती आदि महाकाव्यो को शास्त्रीय वर्ग के अन्तर्गत ही माना जाता है और 'सेतुबन्ध' को तो सस्कृत के धुरन्धर विद्वानो मे अतीव प्रतिष्ठा रही है।[1] महाकवि बाण ने हर्षचरित मे 'सेतुबन्ध' का नामोल्लेख किया है। तेलुगु मे पन्द्रहवी शताब्दी के श्रीनाथ ने 'सेतुबन्ध' महाकाव्य के प्रणेता के लिए 'साहित्य-पदवी-महाराज्य भद्रासनासीन' विशेषण का प्रयोग करके वन्दना की है।[2] तेलुगु के अधिकाश महाकाव्य शास्त्रीय शैली के हैं। 'स्वारोचिषमनुसभव', 'रामाभ्युदय' 'वसुचरित्र' आमुक्तमाल्यदा', 'पारिजातापहरण' आदि शास्त्रीय शैली के उत्कृष्ट महाकाव्य है। इनमे आद्योपान्त प्रौढ गभीर अलकृत भाषा शैली का सुन्दर निर्वाह, पुरवर्णन, गजवर्णन, उद्यान वर्णन, सलिलक्रीडावर्णन, विवाह वर्णन, ऋतु वर्णन आदि प्रबन्धोचित वर्णनो का सयोजन, कविसमयों का पालन, काव्यनायिकाओ के द्वारा विरहावस्था मे चन्द्रदूषण, मदन, मलयानिल एवम् वसन्त को उपालभ आदि रूढियो का पालन इन काव्यो को शास्त्रीय कोटि के बना देते हैं। साहित्य-संसार में इनके प्रचलन एवम् प्रसिद्धि का मुख्य कारण इतिवृत्त निर्वहण की अपेक्षा वर्णनात्मकता ही है। कवि कला-कुशलता से प्रत्येक छन्द को सुन्दर बनाने मे सचेष्ट थे और इस प्रयत्न मे विस्तृत कथाओ का निर्वाह सम्भव नही था। फिर भी सुन्दर वस्तु-वर्णनों के साथ कुछ सजीव पात्रों की परिकल्पना एवम् घटनाओं के उचित सविधान का एकान्त अभाव नही है।

तेलुगु के साहित्येतिहास में कविवर श्रीनाथ के नाम पर विद्वानो ने श्रीनाथयुग की कल्पना की है। इस युग एवम् युगनेता श्रीनाथ का महत्त्व

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 261-281
2. भीमेश्वरपुराणमु, प्रथम आश्वास, पद्य 7

तेलुगु मे शास्त्रीय महाकाव्य के अवतरण के लिए उत्तरदायी के रूप मे है। श्रीनाथ से पूर्व के तेलुगु काव्य प्रायः पुराणों की अनुसृष्टियाँ थी। पन्द्रहवी शताब्दी तक नन्नेचोड कविराज कृत 'कुमारसभव' को छोड़कर 'महाभारत' 'रामायण' 'हरिवश पुराण', 'मार्कण्डेय पुराण', 'भागवतपुराण' आदि के प्रणयन मे कवि लोग तत्पर थे। श्रीनाथ ने 'नैषधीय चरित' का अनुवाद प्रस्तुत करके आगे के कवियों का ध्यान इस विधा की ओर आकर्षित किया और अनन्तर-काल के महाकाव्यो में श्रीनाथ की परम्परा गृहीत हुई है। वास्तव मे सस्कृत के काव्यशास्त्र से अनुमोदित प्रथम तेलुगु महाकाव्य 'शृंगार-नैषध' ही है। महाकाव्य का स्वरूप इस कृति मे अलकृत सुन्दर वस्तुवर्णनो, 'धीरोदात्त' नायक के चित्रण एवम् संवाद—चातुर्य तथा प्रौढ भाषा-शैली मे स्पष्टतः परिलक्षित होता है। फिर भी सस्कृत के नैषधीयचरित का अनुवाद होने के कारण 'शृगारनैषध' को स्वतन्त्र महाकाव्य का श्रेय दिया नही जाता। अल्लसानि पेद्दनार्य, नदि तिम्मनार्य, रामराजभूषण आदि के महाकाव्यों पर 'शृगारनैषध' का अत्यन्त स्पष्ट प्रभाव है।

केशव की 'रामचन्द्रिका' शास्त्रीय महाकाव्य की कोटि में ही गणनीय है। "हिन्दी मे विशुद्ध साहित्यिक महाकाव्य लिखने का प्रयास केशवदास की रामचिन्द्रका मे मिलता है।[1] 'जायसी और तुलसी के विपरीत केशव के महाकाव्य मे छन्दो-वैविध्य की यह परम्परा अपभ्रश के 'सुदर्शन चरिउ' एवम् 'जिनदत्त चरिउ' मे लक्षित की जाती है। डॉ. रामसिह तोमर का अनुमान है कि रामचन्द्रिका के रचयिता के सामने अवश्य ही विविध तुकान्त अपभ्रश के छन्दों के प्रयोग से युक्त कुछ इस प्रकार की कृतियाँ रही होगी।[2] अपभ्रश की कृतियों से केशव के महाकाव्य का साम्य एकमात्र छन्दोवैविध्य ही है। रचना-शैली, कथावस्तु की योजना एवम् अलकृत वस्तुवर्णनो की दृष्टि से रामचन्द्रिका पर कालिदास, माघ, बाण, आदि का ही प्रभाव है। तेलुगु के प्रमुख महाकाव्यो मे छन्दोवैविध्य तो है, पर यह विशेषता केशवदास की 'रामचन्द्रिका' मे ही पराकाष्ठा तक पहुँच गई, क्योंकि केशव की यह प्रतिज्ञा ही थी 'रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौ बहुछन्द।[3] केशव के द्वारा प्रयुक्त बहुछन्दो मे मालिनी, वसन्ततिलका, भुजगप्रयात आदि संस्कृत के वर्णवृत है और तेलुगु के कुछ महाकाव्यो मे इन छन्दो का प्रयोग हुआ है। अपभ्रश एवं हिन्दी

1. प्राकृत और अपभ्रश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 235
2. वही, पृ. 235
3. रामचन्द्रिका—1—21

की प्रवृत्ति के अनुसार वर्णवृत्तो का प्रयोग हिन्दी भाषा मे सतुकान्त रूप मे किया गया है और तेलुगु के अपने देशी छन्दो के लिए भी सतुकान्तता (अन्त्यानुप्रास) अनिवार्य नही है। फिर भी सगीतात्मकता का समावेश तेलुगु के कवियो ने यतिनियम एवम् प्रासनियम के पालन के रूप मे किया है। तेलुगु के यतिनियम एवम् प्रासनियम सस्कृत एवम् हिन्दी के छन्दों से पृथक् तथा विशिष्ट है, जिनका विवेचन यथास्थान किया जायगा।

ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य

ऐतिहासिक इतिवृत्त को ग्रहण करके भी शास्त्रीय शैली में अलकृत महाकाव्यों की रचना सस्कृत एव देशी भाषाओ के कवियो ने की है। किन्तु मूलस्रोत के अलावा रचना-विधान के भी ऐतिहासिक होने पर ही किसी भी काव्य को ऐतिहासिक शैली का काव्य कहा जा सकता है। इस प्रकार के काव्यों में ऐतिहासिक घटनाओं एव वशपरम्परा का क्रमिक वर्णन और नायक के वीरतापूर्ण कार्यो का वर्णन मुख्यत. किये जाते है। कवि-कल्पना-प्रसूत घटनाओ एव पात्रो का समावेश भी इस वर्ग के काव्यो मे पाया जाता है। इन काव्यों का उद्देश्य आश्रयदाता नरेशो की प्रशस्ति करना है। चरितनायको की प्रशस्ति के हेतु नायक वश की परम्परा सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि से सम्बद्ध की जाती है और अतिशयोक्तिपूर्ण काल्पनिक एव अतिप्राकृत घटनाओ का भी समावेश प्राय. रहता है। इस प्रकार इस वर्ग के महाकाव्यों का शिल्प विधान आख्यान शैली के पौराणिक महाकाव्यो एव शास्त्रीय महाकाव्यो की शिल्प-विधि से भिन्न होता है। सस्कृत मे कल्हण की 'राजतरगिनी' ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य है। 'राजतरंगिणी' के आठो तरगो में काश्मीर का इतिहास प्राचीनकाल से बारहवी शताब्दी तक काव्यात्मक माध्यम से प्रस्तुत किया गया। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार 'राजतरगिणी' काश्मीर के राजनैनिक ऐतिहासिक, भौगोलिक, विवरण, सामाजिक व्यवस्था, साहित्यिक समृद्धि तथा आर्थिक दशा को जानने के लिए सचमुच एक विश्वकोश है।[1] राजतरगिणी के अतिरिक्त 'हम्मीर महाकाव्य' को भी ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य माना जाता है।

हिन्दी के 'हम्मीर रासो', 'राजविलास', 'हम्मीर हठ', 'छत्रप्रकाश' और 'सुजान चरित्र' ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य है। तेलुगु में सिद्धेश्वरचरित्र, कृष्णरायविजयमु, रघुनाथाभ्युदयमु इसी प्रकार के महाकाव्य हैं। इन काव्यो

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 265

मे कवियो की दृष्टि कथावस्तु का नाटकीय सविधान, विभाव अनुभाव एवं सचारीभावो से परिपुष्ट रस की योजना, आद्योपान्त नायक की विविध मनोदशाओं का चित्रण, सर्गो की अनुपातयुक्त सुस्थापना आदि की ओर उतनी नही, जितनी कतिपय ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन एव अपने चरितनायक के अतिशयोक्तिपूर्ण कार्य-कलापों के प्रस्तुतीकरण मे है। यही कारण है कि इन काव्यो का महत्त्व साहित्यिक एव ऐतिहासिक दोनो दृष्टियो से है। इन काव्यो मे कुछ के चरितनायक प्रणेता कवियो के समकालीन होने के कारण उनका ऐतिहासिक महत्त्व कम नही है। इसके अलावा ऐतिहासिक घटनाओ के साथ पौराणिक एव काल्पनिक घटनाओं का समावेश कर देने से इन कवियो की प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए यथेष्ठ अवकाश भी प्राप्त हो सका है। 'कृष्णराय विजयमु' नामक तेलुगु के महाकाव्य मे स्वामी विद्यारण्य के सम्मुख भगवती लक्ष्मी के साक्षात्कार एव 'सिद्धेश्वरचरित' मे महादेवजी का कैलास पर्वत से निकलकर वरगल के समीप हनुमाद्रि पर अवतरित होना ऐसे ही पौराणिक एव काल्पनिक प्रसंग हैं, जिनमे कवियों की वृत्ति खूब रमी है। हिन्दी के 'हम्मीररासो' मे सृष्टि और मानवो की उत्पत्ति चन्द्र तथा सूर्यवश का वर्णन ऐसे ही प्रसग है। इन काव्यो मे नायको के पूर्वपुरुषों के उल्लेखो पर अनुश्रुतियों एव चारणपरम्पराओ का अधिक प्रभाव है। इन विशेषताओ से बढकर इन काव्यो का जो प्राणभूत तत्व है, वह वीरचरित की अवतारणा है। छत्रसाल, हम्मीरदेव, सुजानसिंह, प्रतापरुद्रदेव, कृष्णदेवराय, रघुनाथ भूपाल आदि महिमाशाली वीरपुरुषो के चरित का चित्रण बडे ही उज्ज्वल रूप मे इन काव्यो मे सम्पन्न हुआ है। इसी आधार पर इन ऐतिहासिक काव्यो को साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण तथा महाकाव्य की कोटि में गणनीय माना जा सकता है।

प्रतीकात्मक प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्य

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्य अपनी विशिष्ट रचना-शैली, आध्यात्मिक अभिव्यजना, ठेठ अवधी का माधुर्य, सुन्दर भाव-व्यंजना आदि के कारण एक पृथक् वर्ग के अन्तर्गत ही विचारणीय हैं। इन काव्यो पर फारसी की मसनवियो, अपभ्रंश के कथाकाव्यो एव भारत की लोकगाथाओ का समवेत प्रभाव पडा है। इन काव्यो की माला में जायसी का पद्मावत सुमेरु के रूप मे लब्धप्रतिष्ठ है। मधुमालती, चित्रावती, मृगावती, इन्द्रावती, पुहुपावती आदि कुछ प्रेमाख्यानक काव्य है और अपने समय में प्रचलित कतिपय प्रेम-कथाओ का उल्लेख जायसी ने पद्मावत के अन्तर्गत किया है।[1] जायसी को छोडकर

---

1 जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 3

अन्य प्राय सभी कवियो के द्वारा गृहीत इतिवृत्त काल्पनिक है और शुक्लजी प्रभृति बहुत से विद्वानो ने पद्मावत के उत्तरार्ध को ऐतिहासिक स्वीकार भी किया है ।[1] डॉ. सिद्धनाथ पाण्डय अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध मे जायसी के काव्य मे संयोजित इतिहास के पुट को नगण्य मानकर पद्मावत के इतिवृत्त को लोककथा पर आधारित और इस रूप में काल्पनिक मानने के पक्ष में है— 'पूर्वार्द्ध तो काल्पनिक है ही, किन्तु वह कल्पना भी साधार है । उस कल्पना का आधार जनसामान्य मे प्रचलित पद्मावती एव हीरामन सुआ की कहानी है । साथ ही उत्तरार्द्ध जिसमे जान-बूझकर ऐतिहासिक छीटे डाले गये है, वह भी काल्पनिक है । उसमे दो-एक ऐतिहासिक नामो के अतिरिक्त इतिहास का निशान तक पा सकना दुसाध्य है ।'[2] यद्यपि बहुत से कवियो ने हिन्दी मे भारतीय एव सूफी पद्धति से विभिन्न प्रेमकथाओं को काव्यात्मक माध्यम मे प्रस्तुत किया है, फिर भी काव्य सौष्ठव से रहित तथा जीवन के गम्भीर पक्ष एव आध्यात्मिक अभिव्यजनाविहीन साधारण काव्यों को महाकाव्य माना नही जा सकता । यद्यपि शिल्पविधान की दृष्टि से प्राय. सभी सूफी प्रेमकाव्यो का ढाँचा एक जैसा ही है, कवियो की प्रतिभा के अनुसार काव्यो के साहित्यिक स्तर मे अन्तर दृष्टिगोचर होता है ।

कवियो की दृष्टि एवम् परम्परागत तत्त्व के अनुसार इन काव्यो मे वर्णनात्मक शैली को नही, बल्कि सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य सरल स्वाभाविक भाषा एवम् आख्यान शैली को प्रश्रय दिया गया है । यह आख्यान शैली अपभ्रश के कथाकाव्यो की शैली है । कथानक के बीच मे पडनेवाले नगर, उद्यान, सरोवर, समुद्र, विवाह आदि के सुन्दर वर्णन इन काव्यो मे अवश्य प्राप्त होते हैं । फिर भी कवियो का ध्यान कथानक पर ही विशेषरूप से केन्द्रित रहा है । कहने का यही आशय है कि समग्ररूप मे देखा जाय तो इन काव्यों की प्रतिपादन शैली सस्कृत के माघ तथा श्रीहर्ष के काव्यो की भाँति अतिशय अलकृत एवम् वर्णनात्मक नही, प्रत्युत प्रेम की सुन्दर व्यजना के साथ आध्यात्मिक सन्देश का भी वहन करने मे सक्षम आख्यान शैली है ।

जायसी आदि सूफियों के प्रेमकाव्यो में प्रतीकतत्व का सुन्दर समावेश दृष्टिगत होता है । लौकिक प्रेमगाथा के द्वारा आध्यात्मिक प्रेमव्यजना की

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 21—26
2. अपभ्रश के आख्यानक काव्य और उनका हिन्दी के आख्यानक काव्यो पर प्रभाव. प. 79

दृष्टि से सूफी कवियो ने इस प्रतीकविधान का अवलम्ब ग्रहण किया है। कवि के द्वारा प्रतीको का मात्र विवरण ही पर्याप्त नही, बल्कि काव्य के अन्तर्गत भी प्रतीको का निर्वाह सम्पन्न होने पर ही प्रतीकविधान सार्थक हो जाता है। रूपक के द्वारा द्वयर्थक कथाविधान पद्मावत की प्रमुख विशेषता है। जायसी के पूर्व ऐसे प्रयोग कम थे। अपभ्रंश भाषा मे सोमप्रभ नामक एक जैन कवि द्वारा रचित सन्दर्भों मे इस प्रकार का प्रयास लक्षित किया जाता है। साथ ही यह भी माना जाता है कि इतने बड़े पैमाने पर जायसी से पूर्व ऐसी रचनाएं उपलब्ध नही होती।[1] जायसी के बाद सूफी कवियों मे इस प्रतीक-विधान की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। नूर मुहम्मद नामक कवि ने 'अनुराग बाँसुरी' काव्य मे शरीर, जीवात्मा, मनोवृत्तियो आदि को आधार बनाकर काव्य मे रूपकतत्व का समावेश किया है। प्रतीकविधान या रूपकतत्त्व के भी भिन्न प्रकार होते है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव की भिन्न वृत्तियो एवम् मनोविकारो की काव्यात्मक रूपकल्पना और उनका विभिन्न काव्य-विधाओ मे निर्वाह आधुनिककालीन प्रवृत्ति है। प्रसाद की 'कामायनी' मे प्रतीक शैली का सफल निर्वाह हुआ है। सूफी काव्यो मे प्रतीकविधान एव कामायनी के रूपकत्व मे पर्याप्त अन्तर भी है और इस अन्तर का मूलकारण मध्यकालीन एवम् आधुनिक साहित्य-चेतना मे अवस्थित पार्थक्य मे है। अस्तु।

आचार्य शुक्ल के अनुसार 'पद्मावत' समासोक्ति की पद्धति का काव्य है।[2] शुक्लजी ने अन्योक्ति एव समासोक्ति की व्याख्या की है। इस काव्य मे सर्वत्र आध्यात्मिक अर्थ की प्रतीति नही होने के कारण और प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से साधनापक्ष की व्यजना अप्रस्तुत होने की दृष्टि से पद्मावत को समासोक्ति काव्य माना गया है। डॉ गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दो मे—"जायसी ने अपनी कथा मे स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक, दार्शनिक एव साधनात्मक सकेत प्रस्तुत करके सफल व सरस समासोक्तियो की योजना की है। ये समासोक्तियाँ कथा के व्यष्टि रूप मे ही पाई जाती है। समष्टि रूप मे तो सम्पूर्ण कथा अन्योक्ति ही है।"[3] पद्मावतकार ने काव्य के अन्त मे इन प्रतीको को स्पष्ट भी किया है।

1. डॉ. निर्मला जैन · आधुनिक हिन्दी काव्य मे रूप-विधाएँ, पृ. 38
2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 55
3 जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन, पृ. 73

तेलुगु के साहित्य मे सूफी दार्शनिक विचार धारा के काव्य उपलब्ध नही होते है। प्रतीकात्मक प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्यो का इस क्षेत्र मे अभाव ही समझना चाहिए। पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि इन भाषाक्षेत्रो मे विद्यमान राजनैतिक एव सास्कृतिक परिस्थितियाँ ही एक भाषा मे इस शैली के महाकाव्यो के सद्भाव एव दूसरे क्षेत्र मे उनके अभाव के लिए उत्तरदायी हैं। वास्तव में प्रतीकशैली के दर्शन हिन्दी से पूर्व सस्कृत साहित्य के प्रबोधचन्द्रोदय एव उस परम्परा में रचित अन्य कृतियो में होते हैं। ये कृतियाँ महाकाव्य जैसे श्रव्यकाव्य नही, बल्कि दृश्यकाव्य के अन्तर्गत इनका स्थान है। सस्कृत में कृष्णमिश्र के 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अतिरिक्त जैन कवि यशपाल का 'मोह-राजपराजय', दाक्षिणात्यो मे वेदान्तदेशिक का 'सकल्प सूर्योदय' एव आनन्दराय का 'विद्या परिणयन' तथा 'जीवानन्द' आदि नाटको मे प्रतीक शैली का विधान है। हिन्दी मे आचार्य केशव ने 'विज्ञान गीता' के रूप मे प्रबोधचन्द्रोदय का ही अनुवाद किया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार तुलसी के अयोध्याकाण्ड मे पचवटी के वर्णन मे निबद्ध आध्यात्मिक रूपक में 'प्रबोधचन्द्रोदय' के पात्रो को भी अपनाया गया है।[1] तेलुगु मे 'प्रबोधचन्द्रोय' का अनुवाद श्रव्यकाव्य के रूप मे हुआ है। इसके अतिरिक्त 'सीतारामाजनेयसवाद' नामक दार्शनिक काव्य मे राम को परमात्मा, सीता को माया एव हनुमान को जीवात्मा के रूप मे वर्णित किया गया है। परन्तु तेलुगु के 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'सीतारामाजनेयसवाद' और केशव की 'विज्ञान गीता' मे काव्यात्मक पक्ष सबल नही है और इन काव्यों के पात्र अमूर्त पदार्थो के प्रतीक मात्र होते है जिनकी भौतिक जगत मे कोई स्वतन्त्र सत्ता नही होती। इसके विपरीत सूफी काव्यो के पात्र आध्यात्मिक पक्ष की व्यजना करते हुए भी लौकिक जगत के सभी लक्षणो से सम्पन्न है और उनके कार्य-कलापो द्वारा विविध भावो की मार्मिक व्यजना कवियो ने की है। इस प्रकार सस्कृत के प्रबोधचन्द्रोदय एव उसके प्रभाव से तेलुगु मे रचित प्रतीक काव्यो तथा केशव की 'विज्ञानगीता' का साम्य हिन्दी के प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्यों से साहित्यिक सौष्ठव एव शिल्प-विधान की दृष्टि से बिल्कुल नही है। तेलुगु साहित्य मे प्रयुक्त प्रतीक शैली के काव्यो की स्थिति को दर्शाने की दृष्टि से ही उनका विवेचन यहाँ पर किया गया है। स्पष्ट है कि प्रेमाख्यान शैली के प्रतीकात्मक महाकाव्य हिन्दी में ही उपलब्ध होते है और

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ 592

सूफी सन्तो के साधनात्मक दृष्टिकोण एव लौकिक प्रेम-गाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक तथ्यो की व्यजना के उद्देश्य का ही परिणाम यह काव्य-प्रकार है। तेलुगु साहित्य के क्षेत्र मे सूफी दार्शनिक विचारधारा के अभाव के कारण इस काव्य-प्रकार का भी अभाव है।

क्षेत्रमहिमा सम्बन्धी महाकाव्य

तेलुगु साहित्य मे कुछ ऐसे महाकाव्य उपलब्ध होते हैं जिनकी रचना प्रबन्धात्मक है, जिनमे अलकृत रमणीय वस्तुवर्णनो का बाहुल्य है, जिनकी प्रौढ साहित्यिक भाषाशैली के कारण रचनाकाल से लेकर अद्यावधि साहित्य-जगत मे प्रतिष्ठा रही है और जिनके कथाशरीर मे सजीव पात्रो की परिकल्पना भी दृष्टिगत होती है, परन्तु जिनका लक्ष्य किसी क्षेत्र-महिमा का प्रतिपादन रहा है। कवियो के भक्तिपरक दृष्टिकोण एव मूल उद्देश्य के कारण इन काव्यो मे विविध उपाख्यानो की योजना विशिष्ट देवता और उस देवता के आवास-स्थल के उत्कर्ष-प्रतिपादन के रूप मे किया गया है। वक्ता-श्रोता-योजना के द्वारा इन भिन्न उपाख्यानो मे एकसूत्रता का निर्वाह भी किया गया है। काव्यादि मे इष्टदेवता की वन्दना एवं वस्तुनिर्देश के रूप मे मगलाचरण, गुरुवन्दना, सुकविजनो की वन्दना, कुकवियो की निन्दा, आश्रयदाता या भगवान की प्रशसा, पुरवर्णन, ऋतुवर्णन, आश्वासो मे इतिवृत्त का सर्गबन्धत्व आदि का बाह्य रूप अन्य वर्गो के महाकाव्यो के सदृश ही है। इन काव्यो मे निबद्ध इतिवृत्त के नायक के रूप मे उस स्थल-विशेष के देवता, जैसे 'पाण्डुरग महात्म्य' मे पाण्डुरंग भगवान और 'श्रीकालहस्ति माहात्म्य' मे श्रीकालहस्तीश्वर को माना जा सकता है।

भक्ति-महिमा एव क्षेत्र महिमा के प्रतिपादन के अनुरूप इस वर्ग के महाकाव्यो मे पौराणिक तत्वो का समावेश भी हो गया है। महर्षियो एव भक्तो की तपस्या और प्रार्थना से भगवान का विशिष्ट स्थल मे अवतरित होना, आकाशवाणी, देवताओ के द्वारा पुष्पवृष्टि, कुछ भक्तों के भवान्तरों के कथन, भगवान के प्रत्यक्ष होने पर भक्तों के द्वारा किए गए स्तोत्र आदि मे पौराणिक तत्त्व दिखायी पड़ते हैं। वास्तव मे पौराणिक तत्वो का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश अधिकाश भारतीय काव्यो मे दृष्टिगत होता है, क्योकि मध्यकाल तक के साहित्य की प्रमुख प्रेरणा धार्मिक साधना रही है। रामचरित-मानस मे भी विभिन्न अवसरो पर देवताओ के द्वारा पुष्प-वृष्टि, माहात्म्य और स्तोत्रो का सयोजन लक्षित होता है। इस प्रकार पौराणिक तत्वों के समावेश के बावजूद वर्णन-विधान, आलकारिक भाषाशैली और प्रसगानुसार निबद्ध

रमणीय वस्तुवर्णनो के आधार पर कह सकते है कि इन काव्यो का प्रणयन उत्कृष्ट प्रतिभासम्पन्न कवियो के द्वारा महाकाव्य-रचना की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर हुआ है। इस आधार पर इस वर्ग के काव्यो को महाकाव्य मानना समीचीन है।

तेलुगु के साहित्य मे क्षेत्रमहिमा प्रतिपादक महाकाव्यो का प्रणयन चौदहवी शताब्दी से दिखायी पड़ता है। महाकवि एर्राप्रेगड को 'प्रबन्ध-परमेश्वर' की उपाधि प्राप्त थी और कतिपय विद्वानो के अभिमत मे 'नृसिहपुराण' नामक क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक महाकाव्य के प्रणयन से ही यह उपाधि इस कवि को प्राप्त थी। एर्राप्रेगड से पूर्व एव समकालीन साहित्यिक कृतियो मे रूपविधान की दृष्टि से 'नृसिहपुराण' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तेलुगु की महाकाव्य-विधा के विकासक्रम मे 'नृसिहपुराण' एव उसके कर्ता का योगदान स्वीकार किया जाता है। पुराणों के आख्यान-कथन की शैली से भिन्न वर्णनात्मक शैली के स्थापनाचार्य के रूप मे आन्ध्र साहित्य मे कविवर एर्राप्रेगड को आचार्य लक्ष्मीकान्तम्‌जी ने श्रेय दिया है।[1] वास्तव मे एर्राप्रेगड की इस कृति मे क्षीरसमुद्र, वैकुण्ठ, अप्सराओ के पुष्पापचय, सगीत आदि के सुन्दर वर्णन है। एर्राप्रेगड के उपरान्त पन्द्रहवी शताब्दी के श्रीनाथ के द्वारा विरचित 'काशीखण्ड' एवं 'भीमेश्वरपुराण' मे क्षेत्रमाहात्म्य प्रतिपादक काव्य-रचना के दर्शन होते हैं। 16वी शताब्दी के श्रीकृष्ण देवराय के युग मे रचित 'पाण्डुरगमाहात्म्य' एव 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्य' मे क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक महा-काव्य का सर्वाधिक परिणत रूप दृष्टिगत होता है। इन काव्यों मे वस्तु सम्बन्धी एकता को विविध उपाख्यानो के गुम्फन से यद्यपि क्षति पहुँची है तथापि अलंकृत साहित्यिक शैली एव हृदयावर्जक वर्णनविधान के कारण इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दी साहित्य मे साहित्यिक सौष्ठव से युक्त क्षेत्रमाहात्म्यपरक महा-काव्यों की कोई धारा दिखायी नहीं पडती। इसका कदाचित् यही कारण हो सकता है कि हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियो की दृष्टि शृंगारी मुक्तको की रचना मे, संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो को आधार बनाकर रसमय उक्तियों का विशाल भण्डार उपस्थित करने में, भक्ति की अलौकिक रसवाहिनी मे तन्मय होकर हजारों की सख्या में विनयपद एव लीलावर्णन के पद गाने मे, स्वान्तः सुखाय रामकथा का भव्य चरित रचने मे विशेष रूप से रमती थी।

---

1. गौतमव्यासमुलु, पृ. 20

फिर भी समग्ररूप से इस प्रकार की रचनाओ के अनुपलब्ध होने पर भी तुलसी के 'रामचरितमानस' मे उनके भक्तिपरक व्यक्तित्व तथा पौराणिक स्रोतों से इतिवृत्त-ग्रहण के कारण इन काव्यग्रन्थों की कतिपय प्रवृत्तियाँ दिखायी पडती है। केशव, जायसी, गोरेलाल आदि के काव्यो मे पौराणिक तत्त्व की न्यूनता के कारण इन विशेषताओ का समावेश नही है।

बहुअर्थक महाकाव्य

संस्कृत साहित्य मे पाण्डित्य-प्रदर्शन एव श्लेष अलकार का सपूर्ण काव्य मे निर्वाह करने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप द्विसन्धान और बहुअर्थक महाकाव्यो का प्रणयन किया गया है। जायसी आदि के काव्यो मे जहाँ-जहाँ प्रतीक-विधान का निर्वाह हुआ है, वहाँ प्रस्तुत पक्ष वाच्य एव अप्रस्तुत पक्ष को व्यग्य मान सकते है। इसके विपरीत श्लेष-काव्यों मे वर्णित दोनों अथवा दो से अधिक अर्थ अभिधावृत्ति से ही प्रतीत होते है। 'भट्टि काव्य' मे एक पक्ष मे रामकथा का वर्णन तथा दूसरे पक्ष मे व्याकरण के नियमो का प्रतिपादन किया गया है। जैनाचार्य हेमचन्द्र के 'कुमारपालचरित' मे राजा कुमारपाल के जीवनवृत्त के साथ व्याकरणिक नियमो का भी निर्वाह हुआ है। व्याकरण के प्रखर आचार्यो की रचनाएँ होने के कारण इन काव्यो का शास्त्रपक्ष कवित्व पक्ष की अपेक्षा प्रबल है। इसीलिए इनको शास्त्रकाव्य कहा जाता है। काव्यशास्त्रीय मान्यता के अनुसार शास्त्रकवि का स्थान कवित्व-वैभव की दृष्टि से ऊँचा नही है। शास्त्रकाव्यो से भिन्न, फिर भी भिन्न इतिवृत्तो का एक साथ निर्वाह करनेवाले बहुअर्थक महाकाव्य सस्कृत में 'राघवपाण्डवीय', 'राघानैषधीय', 'पार्वतीरुक्मिणीय' आदि है। कुछ सस्कृत कवियो ने सात से अधिक अर्थो का निर्वाह अपने काव्यो मे किया था। एक ही कथा के निर्वाह मे कवि को काव्य-कला एव भाव-व्यजना के लिए जो अच्छा अवकाश रहता है, वह श्लेष के बल पर विभिन्न अर्थो का, समूचे काव्य मे निर्वहण करने में रह नही सकता। क्योकि कवि का ध्यान हमेशा विभिन्न अर्थों को प्रकट करने में समर्थ शब्दावली के चयन पर केन्द्रित रहता है। इस प्रवृत्ति का घातक प्रभाव कथानक के समुचित निर्वाह एव मार्मिक प्रसगो के चयन पर पडता है। इस दृष्टि से बहुअर्थक महाकाव्य अन्य वर्गों के महाकाव्यों की तुलना मे कभी भी श्रेष्ठ नही हो सकते। महाकाव्य की एक शैली-विशेष के रूप मे ही इनका महत्त्व है। किन्तु यहाँ पर यह स्मरणीय है कि दो भिन्न कथाओ का निर्वाह करते हुए भी दोनों कथाओं के लिए समान ऋतुवर्णन सलिल-क्रीडावर्णन विवाह-वर्णन आदि वर्णनों का समावेश कविगण अपने काव्यो के अ[illegible]गत करते हैं और

इन वर्णनों मे दो भिन्न अर्थो की अनिवार्य प्रतीति का बन्धन नहीं रहता। वास्तव मे इन वर्णनों के माध्यम से ही कवियो की सरसता, भावुकता एवं काव्य प्रतिभा का परिचय इन महाकाव्यों में हमे प्राप्त होता है।

तेलुगु साहित्य मे उपलब्ध बहुअर्थक महाकाव्यो मे सबसे प्रथम, कालक्रम की दृष्टि से पिंगलि सूरनार्य का 'राघवपाण्डवीय' है। इससे पूर्व भीम कवि से विरचित 'राघवपाण्डवीय' का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु वह कृति अनुपलब्ध है। अपने समय में (16 वीं शताब्दी) भी इस कृति के अनुपलब्ध होने का उल्लेख सूरनार्य ने किया है।[1] सूरनार्य को 'राघवपाण्डवीय' की रचना पर बड़ा गर्व रहा है, इस कृति का उल्लेख उन्होने अपने अन्य काव्यों मे किया है।[2] आश्रयदाता के मुंह से सूरनार्य की यह गर्वोक्ति है कि—"भाषाकाव्य मे रामकथा एवं महाभारत कथा के निर्वाह मे सूरनार्य के सिवा दक्ष कौन है ?"[3] संस्कृत से भिन्न देश भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग हिन्दी एव तेलुगु के कवियो की समान प्रवृत्ति है। सूरनार्य की गर्वोक्ति उनके प्रगाढ आत्म-विश्वास एवं वास्तविकता पर आधारित है। संस्कृत भाषा मे विभिन्न अर्थो के द्योतन की शक्ति सहज रूप से है, किन्तु देशी भाषाओं मे वह शक्ति उस मात्रा मे नहीं है। इसलिए संस्कृत भाषा मे द्विसन्धान काव्य लिखने के कवि की अपेक्षा हिन्दी या तेलुगु मे द्विअर्थक काव्य-प्रणेता को ही श्रेय देना समीचीन है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त तेलुगु शब्दो मे भी दो विभिन्न अर्थो की विवृति सूरनार्य की समर्थता का ज्वलन्त प्रमाण है। तेलुगु साहित्य मे इस प्रकार के काव्यो की परम्परा के लिए मूल पुरुष के रूप में सूरनार्य का महत्त्व अक्षुण्ण है। सूरनार्य के उपरान्त रामराजभूषण के द्वारा प्रणीत 'हरिश्चन्द्रनलोपाख्यान' की प्रशस्ति साहित्य-जगत मे है।

हिन्दी में बहुअर्थक महाकाव्यों की धारा दिखायी नहीं पडती। सम्भवत. मध्यकालीन कवियो की दृष्टि इस ओर नहीं गई होगी। तुलसी सूर जैसे भक्ति तन्मय रीतिमुक्त कवियो की प्रवृत्ति इस चमत्कार-प्रधान काव्यरचना में मग्न नही हो सकती। रीतिप्रिय कवियो के द्वारा इस प्रकार की काव्यरचना सम्भव थी, परन्तु उनका ध्यान इस ओर गया नही था।

---

1. राघवपाडवीयमु, प्रथम आश्वास—11
2. कलापूर्णोदय 1—14, प्रभावती प्रद्युम्नमु 1—6
3. राघवपाडवीयमु—1—10

देशज–तद्भव शैली के महाकाव्य

तेलुगु के साहित्य मे तत्सम शब्दावली का नितान्त बहिष्कार करके पूरे काव्य की रचना देशज एवम् तद्भव शब्दो में करने के कुछ प्रयास लक्षित होते है। तेलुगु के अधिकाश काव्य-ग्रन्थो की भाषा-शैली तत्सम शब्दबहुला है। तत्सम शब्दो का बाहुल्य इस मात्रा तक है कि काव्यग्रन्थो के सुष्ठु अध्ययन से कोई भी व्यक्ति, संस्कृत भाषा की शब्दराशि पर भी अधिकार प्राप्त कर सकता है। कवियो का प्रौढ सस्कृत पाडित्य, सस्कृत मे भी काव्य-रचना की दक्षता और काव्यो के लिए स्वीकृत पौराणिक धार्मिक इतिवृत्त तेलुगु की सस्कृत गर्भित काव्यशैली के मुख्य कारण है। इस वातावरण मे नवीनता-प्रदर्शन एवम् नयी दिशा मे काव्य-रसिकों का ध्यान आकर्षित करने के रूप मे देशज तदभव शैली के निबद्ध काव्यों की रचना हुई। इन निबद्ध काव्यो मे सर्गबन्धत्व, काव्य के आरम्भ मे मगलाचरण, सुकवि जनों की वन्दना, आश्रयदाता की प्रशसा, रामायण, महाभारत आदि से स्वीकृत पौराणिक इतिवृत्त आदि का बाह्य रूप एवम् आन्तरिक स्वर अन्य वर्गो के महाकाव्यो के समान ही है। केवल भाषाशैली सस्कृत शब्दरहित होने के कारण भिन्न है। वास्तव मे सस्कृत के तत्सम शब्द हमारे विचार, अभिव्यक्ति एवम् अनुभूति के अनिवार्य अग बन गये है। उनके प्रयोग से विमुख काव्य मे स्वाभाविकता का समावेश नही होता और इस हेतु भाषा-सौन्दर्य भी कृत्रिमता से नष्ट हो जाता है। आचार्य लक्ष्मीकान्यम् जी ने इस स्थिति को पहचाना है।[1]

16 वी शताब्दी के पोन्नगटि तेलगन्ना नामक कवि ने महाभारत के आधार पर 'ययातिचरित' की रचना इस शैली मे की। तेल्गन्ना के काव्य के उपरान्त कूचिमंचि तिम्मकवि विरचित 'अच्च तेलुगु रामायण' एवम् 'नीला सुन्दरी परिणय' इस शैली के प्रसिद्ध काव्य हैं। बीसवी शताब्दी मे इस शैली के काव्यो की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित है। परन्तु आधुनिककाल मे रचित ब्रजभाषा काव्यों के समान उनको प्रसिद्धि प्राप्त नही है। हिन्दी के कवियो ने इस प्रकार की कृत्रिम शैली का प्रयोग पूरे काव्य मे नही किया। चमत्कार प्रदर्शन एवम् रीतिप्रियता की उनकी प्रवृत्ति 'खटमल बाईसी' जैसी रचनाओ एव शब्दनाद के अनावश्यक प्रयासों मे द्रष्टव्य है।

पद्यबन्ध एवम् मिश्रबन्ध

काव्य-रचना के लिए प्रयुक्त गद्य, पद्य और दोनो के मिश्रण के आधार

---

1. गौतम व्यासमुलु, पृ, 47

पर गद्य-काव्य, पद्यकाव्य एवम् मिश्रकाव्य का वर्गीकरण हो सकता है। मध्यकाल तक की साहित्य-सर्जना मे गद्य की अपेक्षा पद्य को ही सर्वाधिक श्रेय एवम् कवियो की प्रतिभा का वरद हस्त प्राप्त था। यद्यपि काव्य-जगत् मे गद्य का नितान्त अभाव नही था, प्राधान्य एवम प्राचुर्य की दृष्टि से मध्यकाल तक के साहित्य को तेलुगु-हिन्दी के विशिष्ट सन्दर्भ मे भी पद्यप्रधान साहित्य कहा जा सकता है। आधुनिक युग को गद्यसाहित्य की अभूतपूर्व उन्नति के कारण गद्यकाल भी कहा गया है। मध्यकाल तक के जनजीवन एवम् तदनुसार साहित्य-सर्जना में काल्पनिक दृष्टि तथा आधुनिक काल मे वास्तविक दृष्टि का प्राधान्य दिखायी पड़ता है। आधुनिक युग मे काल्पनिक दृष्टि की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टि की प्रमुखता इस युग की चेतना के फलस्वरूप है। साहित्यकार तथा पाठक दोनो कल्पना मे उस हद तक आजकल लीन नही हो सकते, जैसे मध्यकाल मे होते थे। साहित्य के विविध रूपों मे इसका प्रतिफलन आजकल पात्रो के मनोवैज्ञानिक चित्रण मे स्पष्ट है। मध्यकाल के काव्यो मे वर्णनो एवम शैली के विन्यास पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान कवि लोग देते थे और चरित्र-चित्रण पर उनका उतना ध्यान नहीं रहता था। आधुनिक युग मे वर्णन-विधान एवम् शैली की अपेक्षा चरित्रचित्रण ही मुख्य है। महाकाव्य के रूप-शिल्प में यह अन्तर स्पष्ट दिखायी पडता है। पाश्चात्य आलोचको के आधुनिक अभिमत मे महाकाव्य की रचना केवल गद्य मे भी सभव है।[1] किन्तु मध्यकाल तक के महाकाव्यों में केवल गद्य का प्रयोग दृष्टिगत नही होता। कुछ महाकाव्यो ने केवल पद्यात्मक शैली को ग्रहण किया तो और कुछ महाकाव्यो मे गद्य-पद्य की मिश्रित शैली को अपनाया गया। तेलुगु के अधिकाश महाकाव्यो मे गद्य-पद्य दोनो का प्रयोग सामान्य रूप से हुआ है। गद्य का प्रयोग जिनमें नही हुआ, वे अपवाद स्वरूप ही है। तिक्कन का 'निर्वचनोत्तर रामायण' पद्यमय काव्य है। इसमे प्रयुक्त 'निर्वचन' शब्द का अर्थ गद्यरहित है। हिन्दी के रामचरितमानस, रामचिन्द्रका आदि मे गद्य का प्रयोग नही है। किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' मे प्रयुक्त वचनिकाओ को गद्य ही मान सकते हैं। विद्यापति की 'कीर्तिलता' मे पद्यो के बीच-बीच मे

---

1. The epic must be a heroic narrative (though not necessarily in verse) and it must be ample in scope—M. W, Tillyard. The English Epic and its background, page 182

अलंकृत गद्यखण्ड भी दिखाई पडते हैं। फिर भी अनन्तर-कालीन हिन्दी मे मिश्रित शैली का व्यापक प्रयोग नहीं मिलता। तेलुगु के महाकाव्यो मे प्रयुक्त गद्यपद्य मिश्रित शैली के कारण उनको चम्पूकाव्य मानकर उनके महाकाव्यत्व को नकारा भी नही जा सकता, क्योकि 'केवल गद्य-पद्य के मिश्रण मात्र से किसी भी काव्य को चम्पू नहीं कहा जा सकता। चम्पू की शास्त्रीय परिभाषा यह है कि जिस काव्य मे वस्तु और दृश्यो का रूप चित्रण गद्य में किया गया हो और उसकी पुष्टि के हेतु भावों या विभावादि का पद्य में निरूपण हो, वह चम्पू काव्य है।'[1] अतः हिन्दी एवम् तेलुग मे मध्यकाल तक प्रणीत महाकाव्यो को इस आधार पर (1) पद्यबन्ध, (2) मिश्रबन्ध-इन दो वर्गो मे विभाजित कर सकते है।

रस की प्रधानता के आधार पर वर्गीकरण

रस की प्रधानता के आधार पर महाकाव्यों का वर्गीकरण (1) शृंगाररस प्रधान महाकाव्य, (2) शान्तरस प्रधान महाकाव्य एवम् (3) वीररस प्रधान महाकाव्य इन तीनो रूपो मे किया जा सकता है। काव्यो मे साधारणतया इन तीनो मे से किसी एक का विधान मुख्य रूप से और अन्य रसो का गौण रूप से किया जाता है। विश्वनाथ कविराज का महाकाव्य लक्षण ही यह बताता है कि शृंगार, वीर, शान्त मे से किसी एक की स्थिति प्रधान रूप मे एवम् अन्य की गौण रूप मे होती है।[2] रसो मे मुख्य रस, रसो की संख्या, रस निष्पत्ति की प्रक्रिया आदि के विषय मे सस्कृत के काव्याचार्यों मे मतभेद है। भोज के अनुसार शृंगार ही मुख्य रस है तो भवभूति के के मत मे 'एकोरस करुण एव और आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त तथा भट्टतौत के अभिमत मे शान्त ही मुख्य रस है, क्योकि वह 'प्रकृति रस' है और शेष विकृतियाँ प्रकृति से उद्भूत होती है। किसी निमित्त से रत्यादि स्थायीभावो का प्रवर्तन रहता है और उस निमित्त के समाप्त होने पर शान्त ही परिपुष्ट होकर प्रकाशित होता है।[3] काव्यों के विशेष सन्दर्भ मे कौन रस प्रधान है, कौन-सा गौण है, इसके निर्णय मे भी मतभेद के लिए अवकाश है, जैसे आनन्दवर्धन के मतानुसार महाभारत मे प्रधान रस शान्तरस है।[4] इसको

1. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ. 360
2. शृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते—साहित्यदर्पण
3. नन्निचोडुनिवस्तुकविता, पृ. 55 4. ध्वन्यावलोक, चतुर्थ उद्योत, कारिका 5

वीररस प्रधान माननेवाला मत भी दृष्टिगत होता है।[1] इसके अतिरिक्त अधिकाश काव्यशास्त्रियो के मत मे नौ रस है। प्रेयस, भक्ति एवम् वात्सल्य को भी रस माननेवाले आचार्य है। भक्ति का शान्तरस मे अन्तर्भाव माननेवाले काव्यशास्त्री अधिक है। इसलिए भक्तिरस प्रधान महाकाव्यो का वर्ग मानने के बजाय शान्तरस प्रधान मानना ही उपयुक्त है। कवि का दृष्टिकोण, काव्य का प्रतिपाद्य विषय तथा तदनुसार घटनाओ के विन्यास के आधार पर किसी भी काव्य मे मुख्य रस का निर्णय करना समीचीन होगा। इस दृष्टि से अवलोकन करने पर स्वारोचिष मनुसम्भव, वसुचरित्र पारिजातपहरण, कलापूर्णोदय आदि मे शृगाररस का, आमुक्तमाल्यदा कुमारसम्भव, पाडुरगमाहात्म्य, काल्हस्तिमाहात्म्य मे शान्तरस का तथा कृष्णराय विजयमु, और पलनाटि वीरचरित्र मे वीररस का प्राधान्य मान सकते है। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे रामचरितमानस एवम् पद्मावत को शान्तरस-प्रधान, पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, छत्रप्रकाश, राजविलास, सुजानचरित एवम् हम्मीरहठ को वीररस-प्रधान महाकाव्य माना जा सकता है।

छन्द-विधान के आधार पर वर्गीकरण

छन्दो के प्रयोग-विधान की दृष्टि से हिन्दी के महाकाव्यो मे दो भिन्न शैलियाँ लक्षित होती है—एक तो विविध छन्दो के प्रयोग की शैली है और दूसरी दोहा-चौपाईवाली शैली है। जायसी आदि के प्रेमाख्यान शैली के महाकाव्यो मे दोहा-चौपाई पद्धति का प्रयोग निरपवाद रूप से मिलता है और चन्द, केशव, जोधराज, मान, सूदन एव चन्द्रशेखर के काव्यो मे छन्दोवैविध्यपरक शैली का प्रयोग मिलता है। छत्रप्रकाशकार गोरेलाल ने दोहा-चौपाई वाली शैली का ही प्रयोग किया है। तुलसीदास के महाकाव्य मे यद्यपि संस्कृत के अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, नगस्वरूपिणी आदि वर्णवृत्तो सोरठा, छप्पय, हरिगीतिका, तोमर, त्रिभंगी, चौपैया आदि मात्रिक छन्दो का प्रयोग दिखायी पडता है तो भी दोहा-चौपाई शैली का ही प्राधान्य है। हिन्दी से पूर्व के अपभ्रंश साहित्य में हिन्दी में प्रयुक्त दोनों शैलियो के पूर्व रूप दिखायी पड़ते है। रामचरितमानस एवं पद्मावत मे प्रयुक्त दोहा-चौपाई शैली को अपभ्रंश की कडवक शैली का ही विकसित रूप माना जाता है। इसी प्रकार

1. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ. 131

पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, आदि वीरकाव्यो तथा रामचन्द्रिका मे प्रयुक्त विविध छन्दो के प्रयोग को 'सुदर्शनचरिउ', 'जिनदत्तचरिउ' आदि अपभ्रंश काव्यो से आगत प्रवृत्ति माना जाता है। इन दोनो शैलियो के अतिरिक्त समूचे काव्य को एक ही पद्धडिया, गाहा या दूहा छन्द मे रचने के प्रयोग भी दृष्टिगत होते है, जिन्हे पद्धडिया बन्ध, गाहाबन्ध या दूहाबन्ध के नाम से व्यवहृत किया गया है। प्राकृत भाषा मे कौतूहल के द्वारा रचित 'लीलावई कहा' गाथाबद्ध रचना है। क्योकि इस काव्य मे प्रधान छन्द गाथा है और इस कृति के 1333 पद्यो मे बहुत ही कम पद्य शार्दूलविक्रीडित आदि भिन्न छन्दो में है।[1] तेलुगु साहित्य के महाकाव्यो मे विविध छन्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति मुख्य है। एक ही 'द्विपद' छन्द मे सम्पूर्ण काव्य-रचना की प्रवृत्ति भी दिखायी पड़ती है। 'आमुक्त-माल्यदा', 'स्वारोचिष मनुसम्भव', 'वसुचरित्र', 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि मे छन्दोवैविध्य की शैली तथा 'रगनाथ रामायण', 'पलनाटिवीरचरित आदि में एक ही प्रकार के छन्द 'द्विपद' के प्रयोग की शैली अपनायी गयी है। अतएव छन्दविधान के आधार पर महाकाव्यो का वर्गीकरण (1) छन्दोवैविध्य-परक महाकाव्य, (2) एकछन्दाश्रित महाकाव्य, (3) द्विछन्दमिश्रित महाकाव्य इन तीन रूपो मे किया जा सकता है।

कवियो के दृष्टिकोण के आधार पर वर्गीकरण

कवियो को काव्य-रचना मे प्रवृत्त करनेवाले मुख्य लक्ष्य या उनके दृष्टिकोण के आधार पर भी महाकाव्यो का वर्गीकरण सभव है। कह नही सकते कि सभी कवियों का दृष्टिकोण एक हो प्रकार का होता है। काव्य के अवतारिका भाग मे उपलब्ध कवि के स्वीय कथन से, पात्रो के मुँह से या अप्रस्तुत विधान से और कथानक के विविध प्रसंगो के विन्यास से कवि के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है। काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा एव परम लक्ष्य के रूप में आत्मानुभूति का प्रकाशन एव स्वान्त-सुख सभी काव्यो के लिए समान होते हुए भी व्यावहारिक धरातल पर उस स्वान्त:सुख के विधायक विविध तत्वों एवं आत्मानुभूति के विविध प्रकारों मे अन्तर स्वाभाविक है। इस रूप मे कवियो के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होते है और उनके आधार पर महाकाव्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

भक्ति और आत्मोद्धार का दृष्टिकोण गोस्वामी तुलसीदास जी के

---

1. डॉ रामसिंह तोमर, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 38

'रामचरितमानस', नन्निचोड कविराज के 'कुमारसम्भव', श्रीकृष्णदेवराय की आमुक्तमाल्यदा', धूर्जटी के 'श्रीकाल्हस्तिमाहात्म्य' तथा तेनालि रामकृष्ण के 'पाण्डुरंग माहात्म्य' में प्रखर है। तुलसी, श्रीकृष्ण देवराय एवं तेनालि रामकृष्ण में वैष्णव भक्ति-भावना तथा नन्निचोड एवं धूर्जटी मे शैव भक्ति-भावना मुख्य है। तुलसी की दृष्टि मे कविता साधन है और साध्य रामभक्ति है। तुलसी का काव्य-कौशल एवं प्रबन्धपटुता अत्यन्त उच्चकोटि की है, फिर भी तुलसी के अभिमत मे—

भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥[1]

वैयक्तिक जीवन मे आत्मोद्धार के साथ सामाजिक जीवन मे रामसम्बन्धी भक्ति का प्रचार-प्रसार तथा उसके द्वारा लोककल्याण तुलसी का लक्ष्य रहा है। क्योंकि मानसकार की दृष्टि मे—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥[2]

इसी लोकहित भावना एवं मर्यादामार्ग से परिचालित होने के कारण राम, भरत, सीता, कैकेयी आदि पात्रो का चरित्र-चित्रण अत्यन्त भव्य रूप मे 'मानस' मे गोस्वामी जी ने किया है। यद्यपि कृष्णदेवराय तुलसी की कोटि के भक्त नही है तो भी 'आमुक्तमाल्यदा' मे अभिव्यक्त उनकी भक्तिभावना स्पष्ट है। आण्डाल, विष्णुचित्त, यामुनाचार्य, मालदासरी आदि भक्तो की कथाएँ जिस निष्ठा एवं तन्मयता से कही गयी है और अप्रस्तुत विधान मे भी दिव्य-प्रबन्ध का सयोजन एवं कथानक के बीच मे वैष्णव धर्म एवं विष्णु भगवान के उत्कर्ष की जो स्थापना की गई है, उनके माध्यम से कवि की भक्तिपरक दृष्टि की तीव्रता प्रकट होती है। इसी तीव्रता को लक्षित करके आचार्य लक्ष्मीकातम जी ने कहा है कि अद्वितीय वैष्णव तेज सर्वत्र प्रकाशित होते हुए अधिकारी तारतम्य के अनुसार भिन्न रूपो मे अज्ञानान्धकार का नाश करने का रहस्य अनेक प्रकारों से यह काव्य व्यक्त कर रहा है।[3] कविराज शिखामणि नन्निचोड ने अपने 'कुमारसम्भव' को 'वस्तुकाव्य एवं अपने कवित्व को 'वस्तुकविता' कहा है।[4] 'वस्तुकविता' शब्द की एक व्याख्या मे यह कहा गया है कि वेदान्त आदि विषयो मे वस्तु का तात्पर्य परवस्तु अर्थात् परब्रह्म है परवस्तु प्रधान कविता को वेदान्त-भावना-मार्ग मे वस्तुकविता कहा जा सकता

---

1. मानस-बालकाण्ड—10—2
2. वही, 14–5
3. गौतमव्यासमुलु, पृ. 38
4. कुमारसम्भव—प्रथम आवास, पद्य 17, 20, 21, 36

है ।[1] नन्निचोड की शिवभक्ति की अभिव्यक्ति इस महाकाव्य मे शिवोत्कर्ष के प्रतिपादक वर्णनो एव घटनाओ के रूप मे भी हुई है। धूर्जटी की शिवभक्ति उनके द्वारा वर्णित शिव-भक्तो के आख्यानो तथा अप्रस्तुत-विधान मे भी स्पष्ट है। उदाहरण के तौर पर 'श्रीकाल्हस्तिमाहात्म्य' मे उपलब्ध 'चन्द्रोदय वर्णन' को लिया जा सकता है, जिसमे कवि ने चन्द्रमा की तुलना शिवलिंग से, उदयगिरि की 'पानवट्ट' से, अभिषेक के उदकप्रवाह की समुद्र से, नक्षत्रो की भगवान की पूजा मे समर्पित पुष्पो से की है।[2] इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी और तेलुगु के कुछ महाकाव्यो मे भक्ति एव आत्मोद्धार का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है।

महाकाव्यो का एक वर्ग वह उपलब्ध होता है, जिसमे कवियो ने अपने समय मे प्रचलित साहित्यिक परम्परा में एक नया मोड उपस्थित करने तथा रचना को नई दिशा प्रदान करने के लक्ष्य मे काव्य-रचना की। इसको हम काव्य-रचना मे नये प्रयोग का दृष्टिकोण कह सकते है। वास्तव मे प्रत्येक कालजयी अमरकृति अपनी पूर्ववर्ती रचनाओ मे भिन्न नवीन प्रयोग के रूप मे सम्भाव्य है। काव्य-सृजन की प्रक्रिया ही परम्परा एव प्रयोग के कूलो के बीच प्रवाहित होनेवाली स्रोतस्विनी है। फिर भी कुछ कवियो का दृष्टिकोण अन्य कवियो की तुलना मे अपेक्षाकृत प्रयोगशील अधिक है और नवीन प्रयोग के लिए उनकी जाग्रत और सचेष्ट मनोवृत्ति का परिचय उनके काव्यो के माध्यम से मिलता है। तेलुगु के साहित्य मे पिंगलि सूरनार्य नवीन प्रयोग-कुशल कवि के रूप मे प्रसिद्ध हैं। सूरनार्य ने 'राघवपाण्डवीय' में एव 'कलापूर्णोदय' मे द्विसन्धान महाकाव्य एव उत्पाद्य महाकाव्य के रूप मे अद्भुत प्रयोग किए है। अपने समय मे प्रचलित साहित्यधारा से भिन्न प्रयोग, वैलक्षण्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के परिणाम है। सस्कृत शब्दो से भिन्न तेलुगु के देशज एव तद्भव शब्दों में भी द्विसन्धान का प्रयास प्रथम बार सूरनार्य ने ही किया था और उनका यह आत्मविश्वासपूर्ण कथन, भाषाकाव्य मे रामकथा एव महाभारत कथा का सन्धान करने मे कौन समर्थ है, इस सन्दर्भ मे ध्यान देने योग्य है। 'कला-पूर्णोदय' की रचना के समय कवि का दृष्किोण 'अत्यपूर्व-कथा-सविधान-वैचित्रीमहनीय, शृगाररसप्राय तथा पुण्यवस्तु-वर्णनाकर्णनीय महाकाव्य निर्माण' का था।[3] सूरनार्य के उपर्युक्त कथन में जो शृगाररस प्रधान एव पुण्यवस्तु-

---

1 नन्निचोडुनि वस्तुकविता, पृ 11

2 श्रीकालहस्तिमाहात्म्य, द्वितीय आश्वास, पद्य 133

3 कलापूर्णोदय, प्रथम आश्वास, पद्य 16

वर्णनपरक महाकाव्य सृजन है, वह उनके और उनके समय के अन्य सभी कवियो की समान प्रवृत्ति है। 'अत्यपूर्व-कथासविधान-वैचित्री' के कारण ही कलापूर्णोदय 'महनीय' बन सका है। डॉ सी आर. रेड्डी के शब्दो मे "कलापूर्णोदय तेलुगु मे अद्वितीय ग्रन्थ है। महाभारत, मनुचरित्र जैसे ग्रन्थो की भाँति अनूदित अथवा प्राचीन कथामूलक नही है, सिर्फ कवि की स्वकीय सृष्टि है।"[1] हिन्दी मे आचार्य केशवदास ने विविध छन्दो के प्रयोग के सचेष्ट दृष्टिकोण से ही 'रामचन्द्रिका' की रचना की। विद्वानो के मत मे 'शैली की दृष्टि से तो यह (रामचन्द्रिका) नया प्रयोग है।'[2] भाषा-शैली, स्थान-स्थान पर शीघ्रगति से छन्द-परिवर्तन एव सवाद-चातुर्य के आधार पर कह सकते हैं कि केशव का, काव्य-रचना मे नये प्रयोग का सजग दृष्टिकोण रहा है।

हिन्दी और तेलुगु के कुछ महाकाव्य-स्रष्टाओं का दृष्टिकोण ऐतिहासिक घटनावली को काव्यात्मक रूप प्रदान करने और उसके माध्यम से अपने चरितनायक को उदात्त रूप मे प्रस्तुत करने का रहा है। पृथ्वीराजरासो, 'छत्रप्रकाश', 'कृष्णरायविजय', 'सिद्धेश्वरचरित' आदि मे यह दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। आश्रयदाता का मनोरजन एव यशोगान और उसके लिए चाटुकारितापूर्ण पद्धति के वर्णनो के रूप मे इन महाकाव्यो को समझना ठीक नहीं है। क्योकि भारत के इतिहास मे उनके वीरकृत्यों, धर्म एव संस्कृति की रक्षा तथा देश-भक्ति की दृष्टि से पृथ्वीराज, हम्मीरदेव, छत्रसाल, श्रीकृष्णदेवराय, प्रतापरुद्र, रघुनाथ भूपाल आदि का गौरवपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त इन महाकाव्यो मे से कुछ का प्रणयन उन चरितनायको के अनन्तर काल मे हुआ है। पृथ्वीराजरासो के छोटे-बडे कई सस्करणो का प्राप्त होना, इस तथ्य का द्योतक है कि उस महान योद्धा की वीरगाथा ने असंख्य कवियो को मूल ग्रन्थ मे क्षेपको का भण्डार भरने की सीमा तक प्रभावित किया। यह कहना उचित होगा कि वीरकाव्य के प्रणेता चन्दबरदाई, जोधराज, गोरेलाल आदि के मन मे सच्ची वीरता और देश-भक्ति की भावनाओं का सहज उन्मेष था और तदनुसार उनको काव्यात्मक रूप प्रदान किया गया। मध्यकालीन काव्य होने के कारण उनमें पुराणोचित काल्पनिक प्रसगों की भी योजना है।

---

1. कलापूर्णोदय की पीठिका, पृष्ठ 11
2. डॉ नगेन्द्र एव डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास,

जायसी आदि सूफी सन्तो का दृष्टिकोण अपने काव्यो के माध्यम से सूफी दार्शनिक विचारो एव साधनामार्ग के प्रचार एव प्रसार का रहा है। आचार्य शुक्ल के शब्दो मे "निर्गुणोपासक भक्तो की दूसरी शाखा उन सूफी कवियों की है, जिन्होने प्रेमगाथाओ के रूप मे उस प्रेमतत्व का वर्णन किया है, जो ईश्वर को मिलानेवाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप मे मिलता है।"[1] अर्थात् सूफी सन्तो के लिए प्रेमतत्व का निरूपण ही साध्य है और उस निरूपण के लिए ग्रहण की हुई काव्य-पद्धति साधन है। शुक्लजी के अनुसार—"बीच-बीच मे रहस्यमय परोक्ष की ओर जो मधुर सकेत मिलते है वे बडे हृदयग्राही होते है।"[2] इन हृदयग्राही मधुर सकेतो का मूलकारण प्रेमतत्व मे इन कवियों की स्वाभाविक निष्ठा एव उस अलौकिक तत्व का सन्देश लौकिक सरस माध्यम से देने का प्रयत्न ही है। जायसी ने पद्मावत को एक अन्योक्ति के रूप मे माना है, जिसका स्पष्टीकरण काव्य के उपसंहार की पक्तियो मे स्वय किया है। इस अन्योक्ति का विधान प्रेमतत्व की व्यजना के रूप में कवि द्वारा उद्दिष्ट है और यह उनका सजग प्रयास ही है।

मनुसम्भव, वसुचरित्र, पारिजातापहरण आदि काव्यो के प्रणेताओ का दृष्टिकोण न भक्तिपरक है, न आध्यात्मिक साधना की सरस अभिव्यजना का है, न ऐतिहासिक घटनावली का काव्यात्मक प्रस्तुतीकरण है और नवीन प्रयोग करके विलक्षणता प्रदर्शित करने का भी नही है। पौराणिक ऐतिहासिक स्रोतों से प्रसिद्ध किसी भी वस्तु का चयन करके विशुद्ध साहित्यिक शैली मे सरस महाकाव्य का सृजन करने का लक्ष्य इन कवियों के सामने रहा है। रामकथा का आधार ग्रहण करते हुए भी कवि की दृष्टि भक्तिपरक नही है। रीतिकालीन कृष्णकाव्य मे जिस प्रकार भक्तिकाल के कृष्णकाव्य की भाँति आत्मोद्धार का दृष्टिकोण एव कैवल्य-प्राप्ति का लक्ष्य प्रेरक नही है, उसी प्रकार राम एवं कृष्ण से सम्बन्धित होने पर भी तेलुगु मे 'रामाभ्युदय' एवं 'पारिजातापहरण' महाकाव्यो मे कवियों की दृष्टि भक्ति भावना से परिचालित नही है। आधुनिक समीक्षा का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि "आलोचक को आलोच्यकाव्य से ही दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए।"[3] इस सिद्धान्त के आधार पर कह सकते हैं कि तेलुगु के सभी राम सम्बन्धी

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 87
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ 69
3. डॉ. नगेन्द्र: 'आस्था के चरण' पृ. 348

महाकाव्यो में तुलसी की भाँति की भक्तितन्मयता की अपेक्षा करना उचित नही है। शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण 'कलापूर्णोदय', 'रामचन्द्रिका', 'रामाभ्युदय', 'वसुचरित्र', 'पारिजातपहरण' आदि मे समान होने पर भी पिंगलि सूरनार्य एव केशव की दृष्टि अन्य कवियो की दृष्टि से इस रूप मे भिन्न है कि ये दोनों कवि नवीन काव्य-प्रयोग की सचेष्ट प्रवृत्ति मे परिचालित हुए है और अपनी इस दृष्टि की घोषणा स्पष्ट शब्दो मे की है। केशव एव सूरनार्य से पृथक् इस वर्ग के कवियो के दृष्टिकोण को विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण कह सकते हैं। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि न्यूनाधिक मात्रा में सभी कवि भक्त है, सभी कवि साहित्यिक सौष्ठव से युक्त महाकाव्य की रचना मे मात्रा भेद से तत्पर है, सबने अपने धार्मिक विश्वासो की विवृति किसी न किसी रूप मे की है और सबकी कृतियाँ पूर्ववर्ती रचनाओ से भिन्न नूतन प्रयोग के रूप मे भी द्रष्टव्य है। प्राधान्य की दृष्टि मे यह वर्गीकरण किया गया है।

महाकाव्यो के वर्गीकरण के उपरान्त हिन्दी एवम् तेलुगु के प्रमुख महाकाव्यो का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

पृथ्वीराजरासो

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी के प्रथम महाकाव्य के रूप मे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता एवम् ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे बूलर, गौरीशकर हीराचन्द ओझा, पडित मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, बाबू श्यामसुन्दरदास, मुनि जिनविजय आदि विद्वानों मे काफी मतभेद था। आजकल 'रासो' की ऐतिहासिकता का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण नही रह गया है। साहित्यिको की दृष्टि इस काव्यग्रन्थ के अध्ययन, आस्वादन, वैज्ञानिक सम्पादन, भाषा छन्द-विधान आदि पक्षो के अन्वेषण मे लगी है।[1] रासो की विभिन्न प्रतियो को चार प्रकारो मे विभाजित किया गया यथा (1) बृहत् रूपान्तर, (2) मध्यम रूपान्तर, (3) लघु रूपान्तर एवम् (4) लघुतम रूपान्तर। मुनि जिनविजय जी को जैन प्रबन्धों मे चन्द कवि के रचित चार अपभ्रंश के छन्द मिले, जिनमे से तीन परिवर्तित रूप में रासो मे भी मिल गये। इस आधार पर यह माना गया कि रासो का मूलरूप अपभ्रश में ही था।[2] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बहुत पहले अनुमान किया था कि चन्द हिन्दी परम्परा के आदि कवि की अपेक्षा अपभ्रश परम्परा के अन्तिम कवि थे।[3] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

---

1. डॉ उदयनारायण तिवारी, वीरकाव्य, पृ. 107–110
2. वही, पृ. 113
3. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 105

ने शुक-शुकी संवाद, कथानक-रूढ़ियों की योजना आदि तत्कालीन अन्य काव्यों में प्रयुक्त पद्धतियों के आधार पर पृथ्वीराजरासो का एक संक्षिप्त संकलन बनाया और उनका कथन है कि चन्द की मूल रचना कुछ इसी के आस-पास होगी।[1] रासो का जो संस्करण असम्पूर्ण रूप में एशियाटिक सोसायटी के द्वारा प्रकाशित हुआ और बाद में नागरी प्रचारिणी सभा ने जिसको पूर्णतः प्रकाशित किया, वह बृहत् रूपान्तर की प्रतियों के आधार पर बना। रासो का बृहत् रूपान्तर 71 समयों में निबद्ध ढाई हजार पृष्ठ का विशाल महाकाव्य है। रासो के रचनाकाल के सम्बन्ध में भी मतभेद है। बृहत् रूपान्तर को लक्षित करके रासो का रचनाकल 16 वीं-17 वीं शती माना जाता है। डॉ माताप्रसाद गुप्त के अनुसार रासो का बृहद्रूप 16 वीं-17 वीं शताब्दी में वर्तमान आकार में आया होगा, किन्तु रचना अपने मूल रूप में बहुत प्राचीन रही होगी।[2] गुप्तजी ने पाठालोचन की वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार विभिन्न प्रतियों को आधार बनाकर 'रासो' का सम्पादन किया है। गुप्तजी का अभिमत रासो के रचनाकाल के सम्बन्ध में यों है—सभी दृष्टियों से पृथ्वीराजरासो की रचना सं. 1400 के लगभग हुई ही मानी जा सकती है। इससे पूर्व नहीं।'[3] गुप्तजी की यह भी मान्यता है कि—'वीररस के काव्य की दृष्टि से तो रासो अपने लघुतम रूपान्तर में भी अप्रतिम है। हिन्दी का कोई भी अन्य काव्य वास्तविक वीरता का, जिसमें अपनी जान के लिए मर मिटने की साध ही सर्वोपरि होती है, इतना ऊँचा आदर्श प्रस्तुत नहीं करता, जितना यह।[4] रासो की आधिकारिक कथा-वस्तु पृथ्वीराज से ही सम्बद्ध है। आनुषंगिक कथाएँ अधिकांश विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन, कुछ अतिमानवीय उपाख्यानों आदि से सम्बन्धित हैं। वर्णन-कौशल, विविध छन्दों का सुन्दर प्रयोग, वीर रसानुकूल भाषा-शैली आदि की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' का काव्य-सौष्ठव अप्रतिम है।

पद्मावत

पद्मावत हिन्दी की सूफी प्रेमाख्यान परम्परा में ही नहीं, प्रत्युत् समूचे हिन्दी साहित्य में एक अमूल्य रत्न के रूप में विख्यात है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य रचना के कारण तुलसी के बाद जायसी का ही

---

1 संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो की भूमिका, पृ 15

2 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, पृ. 321

3 पृथ्वीराजरासो की भूमिका, पृ. 168

4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, पृ. 321

महत्त्व है। 'पद्मावत' के लेखक मल्लिक मोहम्मद जायसी जायस नगर के रहनेवाले थे और अपनी कृति मे शाहेवक्त की प्रशसा के रूप मे दिल्ली के सुल्तान शेरशाह की प्रशसा जायसी ने की। इस आधार पर पद्मावत का रचनाकाल सोलहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। पद्मावत की मुख्य प्रतियाँ फारसी लिपि मे उपलब्ध है। उस समय की अवधी भाषा का रूप पद्मावत मे फारसी लिपि मे सुरक्षित है। डॉ रामकुमार वर्मा के अनुसार —'हिन्दी साहित्य के केवल जायसी ही ऐसे पुराने लेखक है, जिनकी कृति का वास्तविक स्वरूप हमारे सामने है। 'पृथ्वीराजरासो' महान ग्रन्थ होते हुए भी सदिग्ध है, विद्यापति और मीरा के गाये गीत गायकों के कण्ठो से बहुत कुछ बदल गये है, कबीर के पद कबीर पन्थियो ने तोड मरोड डाले हैं तथा अन्य कवियो के ग्रन्थ पण्डितो ने शुद्ध कर डाले है।'[1] पद्मावत की अवधी में तत्कालीन बोलचाल की भाषा का माधुर्य है। कवि के सस्कृत पण्डित न होने के कारण क्लिष्ट सस्कृत शब्दों का प्रयोग नही हुआ है। मुसलमान होने के कारण कवि ने तत्कालीन साहित्यिक चेतना एवम् अपने व्यक्तित्व के अनुरूप फारसी एवम् अरबी के शब्दो का प्रयोग किया है। पद्मावत की प्रतियो के पाठ-भेद का मुख्य कारण ठेठ हिन्दी का फारसी मे लिपिबद्ध होना है।

'पद्मावत' की कथावस्तु राजा रत्नसेन का रूपश्रवण के कारण पद्मावती से अनुरक्त होकर उसको प्राप्त करने के लिए सिहल द्वीप की ओर प्रस्थान करने और असख्य कठिनाइयों का सामना करके आखिर पद्मावती से विवाह करने और पद्मावती के रूप-सौन्दर्य पर मोहित अलाउद्दीन से युद्ध करके स्वर्ग सिधारने की मुख्य घटनाओ से सम्बन्धित है। रत्नसेन का पद्मावती से विवाह-पर्यन्त कथा को पूर्वार्द्ध एव तदनन्तर कथा को उत्तरार्द्ध कहा जाता है। इस कथावस्तु में इतिहास और उससे भी अधिक कल्पना का आश्रय कवि ने लिया। शुक्ल जी ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली है, पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय मे प्रतिष्ठित था।[2] लोक-कथात्मक स्रोतो से इस जनप्रिय प्रेमकथा का चयन करने के कारण जायसी को आध्यात्मिक प्रेमतत्व की अभिव्यंजना के लिए यथेष्ट अवकाश रहा है।

---

1. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ 310
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 94

आध्यात्मिक दृष्टिकोण की काव्यात्मक विवृति के साथ पद्मावत मे लोकपक्ष का चित्रण भी काफी महत्त्वपूर्ण ढग से हुआ है। यात्रा, पनघट, विवाह, युद्ध, षट्ऋतु, भोजन आदि के रमणीय वस्तुवर्णन पद्मावत मे हैं, जो कवि के वर्णन-कौशल के द्योतक हैं। वस्तुवर्णनो के साथ शृगार की सयोग एव वियोग सम्बन्धी मनोभावनाओं की सफल व्यजना जायसी की सहृदयता का प्रमाण है। काव्य के बीच बीच मे अलौकिक प्रेमतत्व की ओर किए गए सकेतो के कारण पद्मावत मे रूपक-तत्व का समावेश हो गया है।

'पद्मावत' की रचना-शैली भारतीय पद्धति की सर्गबद्ध शैली न होकर फारसी की मसनवियो की शैली है, यद्यपि अपभ्रश के कथाकाव्यो एव लोकगाथा का भी प्रभाव 'पद्मावत' के काव्यरूप पर पडा। फारसी का प्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' मसनवी शैली मे ही रचित है। 'पद्मावत' मे अध्याय नही है, परन्तु घटनाओ के शीर्षको के आधार पर खण्ड है। विद्वानो का कथन है कि पद्मावत की प्रामाणिक मूल प्रतियो मे खण्ड-विभाजन नही है। मसनवी की काव्य-रूढि के रूप मे पद्मावत मे कथारम्भ के पहले ईश्वरस्तुति, पैगम्बर वन्दना एव शाहेवक्त की प्रशसा की गयी है। पद्मावत में तान्त्रिक साधनामार्ग, ज्योतिष, धर्म और दर्शन सम्बन्धी कवि की बहुज्ञता का भी परिचय मिलता है। जायसी ने अश्वो, हाथियो, वृक्षो, भोजन-सामग्री आदि के वर्णनो के प्रसगो मे नामपरिगणनात्मक शैली का अवलम्ब ग्रहण किया। किन्तु यह पद्मावत की ही विशेषता नही है, मध्ययुग के प्रायः सभी काव्यो मे नामपरिगणनात्मक शैली मिलती है।

रामचरितमानस

हिन्दी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ के रूप में 'रामचरितमानस' की प्रतिष्ठा है। लोकनायक तुलसी के महान व्यक्तित्व के अनुरूप रामचरित मे भक्तितन्मयता, उत्कृष्ट काव्य-कौशल और लोककल्याणमय भव्य आदर्शों का सुन्दर समन्वय हुआ है। मानस एक श्रेष्ठ महाकाव्य के रूप मे ही नहीं, प्रत्युत् असंख्य जनता के पथप्रदर्शक धर्मग्रन्थ के रूप मे भी रचनाकाल से लेकर अद्यावधि साधारण एव व्युत्पन्न जनता का कण्ठहार बना हुआ है। तुलसी के प्रकाण्ड पाण्डित्य, आध्यात्मिक साधना एव सारग्राहिणी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप एव काव्य-रचना के लिए स्वीकृत प्रबन्धात्मक रूप के कारण मानस में विशद रूप से रामचरित का उज्ज्वल अकन सभव हो सका है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"आज का उत्तर भारत तुलसीदास के आदर्शो पर गठित हुआ है। वही उसके मेरुदड हैं।[1] "तुलसी ने नानापुराण निगमागम सम्मत यद्

---

1. हिन्दी साहित्य, पृ. 154

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि" कहकर अपनी सारग्राहिणी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। भारत की प्रमुख भाषाओं मे ही नही, बल्कि रूसी आदि विदेशी भाषाओ मे भी मानस का अनुवाद हुआ है।

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार अन्तर्साक्ष्य एव बाह्यसाक्ष्य दोनो के आधार पर मानस का रचनाकाल निश्चित रूप से संवत् 1631 है, अर्थात् ईसा की सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।[1] मानस मे कवि ने यद्यपि रामचरित का ही वर्णन किया है, तथापि उसका रूप तुलसी की मर्यादावादी दृष्टि एव औचित्य-पालन के कारण आधार ग्रन्थो मे प्राप्त रामकथा से कतिपय अशो मे भिन्न है। तुलसी ने अपने भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप राम, भरत, कौशल्या आदि के चरित्रो मे अनौचित्य का परिहार करके उन आदर्श चरित्रो को और भी उज्ज्वल बना दिया है। सस्कृत के रामायण-ग्रन्थो मे प्राप्त अन्य प्रासगिक कथाओ एव वर्णनो के विस्तार को तुलसी ने छोड़ दिया है। मानस मे मुख्य रूप से रामचरित की प्रसिद्ध घटनाओ की ही योजना है। तुलसी ने कथा के मार्मिक प्रसगो को पहचानकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया है और शुक्लजी ने तुलसी के इस गुण की प्रशसा की है और प्रबन्धकार कवि के लिए यह आवश्यक माना है। मानस की घटनाओं का विन्यास एव कथा का ढाँचा अध्यात्म रामायण के है।

रामचरितमानस मे दोहा-चौपाई वाली शैली का प्रयोग किया गया है। तुलसी और जायसी की काव्यप्रतिभा ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह शैली प्रबन्धात्मक काव्य के लिए उपयुक्त है। यह दोहा-चौपाई शैली अपभ्रश की कडवक शैली का विकसित रूप है। मुख्य रूप से इस शैली का निर्वाह होने पर भी मानस मे सस्कृत के अनुष्टुप, स्रग्धरा, भुजंगप्रयात आदि वर्णवृत्तो तथा सोरठा, तोमर, हरिगीतिका, चौपैया आदि मात्रिक छन्दो का भी प्रयोग हुआ है। प्रत्येक काण्ड के आरम्भ मे शिव, रामचन्द्र, भरत, सीता आदि की स्तुति में सस्कृत श्लोको का संयोजन मानस मे मिलता है। बहुत कम संख्या मे ही दोहा-चौपाई से भिन्न अन्य छन्दो का प्रयोग हुआ है। मानस की भाषा साहित्यिक अवधी है, जिसमे सस्कृत के तत्सम शब्दो का अच्छा-खासा प्रयोग है। तत्सम शब्द-प्रयोग की यह प्रवृत्ति हिन्दी भक्तिकाव्य की सामान्य प्रवृत्ति है, जिसमे मध्यकाल के धार्मिक पुनर्जागरण का प्रतिफलन है। अवधी भाषा का प्रयोग पद्मावत में भी हुआ है, किन्तु मानस की भाषा पद्मावत की भाषा से भिन्न

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 423

है। यह भिन्नता तुलसी के तत्सम शब्दप्रयोग मे ही नही, बल्कि पात्रो के स्वभावानुसार विन्यास मे भी द्रष्टव्य है।

गोस्वामी तुलसीदास आडम्बरहीन सरल स्वभाव के सन्त कवि है और कवि के इस स्वभाव के अनुसार ही उनकी वाणी मे ऋजुता और प्रवाह के दर्शन होते है। रामचरितमानस मे अतिशय अलकरण की प्रवृत्ति बिलकुल नही है। अलकार नैसर्गिक और अनिवार्य उपकरण के रूप मे ही मानस में प्रयुक्त हुए है। अलकारो का प्रयोग तुलसी ने भाव-व्यजना के सहायक अंग के रूप मे ही किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार—'कही-कही लम्बे-लम्बे सागरूपक बाँधने मे अवश्य उन्होने (तुलसी ने) एक भद्दी परम्परा का अनुसरण किया है।[1]" अलकारो की ही भाँति मानस मे कथा-प्रवाह एव वर्णनो का उचित अनुपात भी इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है। अलकारो एव वर्णनो की योजना मे कवि की काव्य-कुशलता के साथ उनका माधु स्वभाव भी दृष्टिगत होता है। वर्षाकालीन मेघो मे विद्या से प्राप्त विनम्रता का दर्शन तुलसी के सन्त स्वभाव के कारण सम्भव हो सका है। इस प्रकार उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित मानस महाकाव्य कवि के काव्य-कौशल के कारण हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ ही नही, प्रत्युत् विश्वसाहित्य का बहुमूल्य रत्न भी है।

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य मे रामचन्द्रिका का महत्त्व साहित्यिक दृष्टिकोण से विरचित एव काव्यशास्त्रीय मान्यताओ के निकटस्थ वर्णनात्मक शैली के महाकाव्य के रूप मे है। इस महाकाव्य के प्रणेता आचार्य केशवदास है, जो ओडछा दरबार के राजकवि थे। ओडछा-नरेश इन्द्रजीत सिंह के द्वारा कवि को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था, जिसका सकेत कवि के "भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग, केशौदास जाके राज राज सो करत है"—इन शब्दो मे पाया जाता है।[2] सस्कृत के विद्वान एव दरबारी कवि होने के कारण केशव के व्यक्तित्व मे रीतिप्रियता, वस्तु-वर्णन की विदग्धता एव सवाद-चातुर्य के गुण स्वाभाविक है और उन्ही गुणो का साकार रूप उनका काव्य है। सस्कृत साहित्य के परवर्ती महाकाव्यो मे भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष की वर्णनात्मकता तथा बहुशास्त्र मर्मज्ञता की जो प्रवृत्ति है, ठीक वही प्रवृत्ति रामचन्द्रिकाकार केशव की भी प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप राजसी वातावरण सम्बन्धी विविध

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 134
2. कवि-प्रिया, चौथा प्रभाव, पृ. 22

वस्तुवर्णनों की योजना रामचन्द्रिका में मिलती है। रुद्रट की परिभाषा के अनुसार भी महाकाव्य मे राजवैभव सम्बन्धी वर्णनो की योजना आवश्यक है। रामचन्द्रिका नाम से यही प्रकट होता है कि रामचन्द्र के धवल यश का विस्तार-पूर्वक वर्णन करना ही कवि के लिए अभीष्ट था।

केशव के महाकाव्य का रचनाकाल कवि के अनुसार—"सोरह सै अट्ठावन कातिक सुदि बुधवार" है।[1] अर्थात् तदनुसार ईस्वी 1601 है। भाषा में काव्य-रचना करना सम्भवत तत्कालीन पण्डित-मण्डली को इष्ट नहीं था। केशव अपने वंश मे प्रतिष्ठित सस्कृत विद्या की प्रशमा करने के उपरान्त यह भी कहते है—"उपज्यो तेहि कुल मदमति शठ कवि केशवदास। रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥"[2] वाल्मीकि महर्षि के स्वप्नावस्था मे साक्षात्कार एव रामचरित वर्णन करने के उपदेश के कारण केशव ने रामचन्द्रिका की रचना की। रामचन्द्रिका के अध्यायो के नाम 'प्रकाश' हैं जो 'चन्द्रिका' शब्द के अनुरूप सार्थक हैं। सम्पूर्ण काव्य मे उनतालीस प्रकाश है और प्रत्येक प्रकाश के आदि मे दोहा छन्द के माध्यम से उस प्रकाश मे वर्णित इतिवृत्त की सूचना दी गयी है। इस महाकाव्य मे विविध छन्दो का प्रयोग कवि द्वारा प्रयत्नपूर्वक किया गया है और इस आधार पर भी रामचन्द्रिका का यश कलंकित हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे—"12वी, 13वी शती के अपभ्रंश साहित्य मे छन्दो का यह परिवर्तन बहुत अधिक प्रचलित हो गया था। जो छन्द-परिवर्तन के लिए केशव को दोषी समझते है, वे बहुत ऊपर से काव्य-रूपो की आलोचना करते हैं।"[3]

रामचन्द्रिका मे दशरथ के राज्यवैभव से आरम्भ करके राम-सीता के पुनर्मिलन तक की कथा है। अर्थात् रावणवध एव राम की राज्य-प्राप्ति तक के पूर्व रामायण एवं इसके उपरान्त के उत्तर रामायण की पूरी कथा को केशव ने ग्रहण किया है। रामचन्द्रिका के आधार-ग्रन्थो के रूप में वाल्मीकि-रामायण, हनुमन्नाटक एव प्रसन्नराघव है। इस महाकाव्य में कई सुन्दर संवादों की योजना है, जिनमें रावण-बाणासुर सवाद, हनुमान-रावण सवाद, लक्ष्मण-परशुराम सवाद मुख्य हैं। सवादों मे केशवदास को प्राप्त सफलता के विषय में सभी विद्वानो का मतैक्य है। इन संवादो मे राजनीति के दाँव-पेच, प्रत्युत्पन्न मति,

---

1 रामचन्द्रिका, पहिला प्रकाश—6

2. वही,—5

3 संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो की भूमिका पृ 14

वाक्पटुता आदि गुण स्पष्टत दिखायी पड़ते है। आचार्य शुक्ल का यह मत है कि उनका अगद-रावण संवाद तुलसी के सवाद से कही अधिक उपयुक्त और सुन्दर है।"[1] रामचन्द्रिका की भाषा बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा है, जिसमे सस्कृत के विभक्त्यन्त शब्द-रूपो का भी प्रयोग है।

छत्रप्रकाश

कविवर गोरेलाल के द्वारा विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य 'छत्रप्रकाश' को हिन्दी के विद्वानो ने इतिहास एव कवित्व दोनो ही दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण माना है। आचार्य शुक्ल के मत मे—'इतिहास की दृष्टि से छत्रप्रकाश बड़े महत्त्व की पुस्तक है।'' '''ग्रन्थ की रचना प्रौढ और काव्यगुणयुक्त है। वर्णन की विशदता के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर ओजस्वी भाषण है। लालकवि मे प्रबन्धपटुता पूरी थी। सम्बन्ध का निर्वाह भी अच्छा है और वर्णन-विस्तार के लिए मार्मिक स्थलो का चुनाव भी। वस्तु-परिगणन द्वारा वर्णनों का अरुचिकर विस्तार बहुत ही कम मिलता है। सारांश यह है कि लाल कवि-सा प्रबन्ध-कौशल हिन्दी के इने-गिने कवियो मे ही पाया जाता है।"[2] श्रीगणेशप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"लाल ने अपनी कविता बहुत सरल, सुन्दर, सुरुचिपूर्ण रची, बाह्याडम्बर के लिए उनके हृदय मे रत्ती भर भी स्थान नही था, युद्ध के वर्णन इनके बड़े सजीव और ज्वलन्त हुए और इन्ही गुणो के कारण कथा प्रासगिक वं रकाव्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा हो जाता है।"[3] डॉ. उदय-नारायण तिवारी लाल के विषय मे यह मानते है कि—"इस कवि की प्रसिद्धि उतनी नही हुई जितनी आवश्यक थी।"[4] ऐतिहासिक घटनावली के यथातथ्य वर्णन एव काव्यगुणो के अतिरिक्त तेलुगु भाषी विद्वानो का हिन्दी साहित्य के सम्वर्धन मे योगदान की दृष्टि से भी गोरेलाल जी का महत्त्व है। लालकवि के पूर्वजो का निवासस्थान आन्ध्रदेश मे राजमहेन्द्री जिले के गोदावरी नदी के तटस्थ नृसिंहक्षेत्र धर्मपुरी मे था। लालकवि के वंशधर श्री उत्तमलाल गोस्वामी से ज्ञात इस सामग्री का मिश्रबन्धुओ ने संग्रह किया था।[5]

'छत्रप्रकाश' की रचना छत्रसाल की आज्ञा से ही हुई। इस ग्रन्थ मे

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 196

2 वही, पृ 307

3. हिन्दी के कवि और काव्य, पृ. 310

4 वीरकाव्य, 315

5 हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) प 169

महाराजा छत्रसाल के मऊ पहुँचने तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। यह अन्तिम घटना लगभग स 1763 तक की है, जो औरंगजेब का मृत्यु संवत् है। ग्रन्थ के परिशीलन से यह मालूम पड़ता है कि ग्रन्थ की अचानक समाप्ति की गयी है। इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि उस समय तक या तो गोरेलाल अथवा छत्रसाल का निधन हुआ होगा। इस प्रकार इस काव्य का रचनाकाल अठारहवीं शताब्दी का प्रथम चरण है। छत्रप्रकाश मे छब्बीस अध्याय है और इन अध्यायो मे चरितनायक के जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन हुआ है। हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार गार्सां द तासी के मतानुसार छत्रप्रकाश बुन्देलखण्ड के इतिहास का अंशमात्र है।[1] परन्तु इस काव्य के परिशीलन से यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता है। कवि ने छत्रसाल के वंश का आरम्भ सूर्य से बताया है। इसलिए सूर्य, मनु, रामचन्द्र एव कुश की परम्परा से इस वंश का सम्बन्ध जोड़ा गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे एक पुष्पिका है, जिसमे उस अध्याय की वर्ण्यवस्तु का कथन किया गया है, यथा—"इति श्री लाल कवि विरचिते छत्रप्रकाशे बुन्देल जन्म वर्णनोनाम प्रथमोऽध्याय:"।

'छत्रप्रकाश' मे दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है। जायसी और तुलसी ने इस शैली के अपने काव्यो मे अवधी भाषा का प्रयोग किया था। किन्तु लाल ने अवधी, ब्रज एव बुन्देलखण्डी की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। इस भाषा के प्रयोग मे कवि की अभिव्यक्ति-कुशलता का परिचय मिलता है। छत्रप्रकाश की भाषा मे कही भी क्लिष्टता नहीं है, समग्र काव्य मे प्रसाद गुण की ही प्रधानता है।

साधारणतया वीररसप्रधान काव्यो मे भूषण, पद्माकर, सूदन आदि कवियों के द्वारा टकार, डकार, रेफ आदि से युक्त संयुक्ताक्षरो का बहुल प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग की अधिकता से अर्थहीन शब्दो की भरमार हो गयी है। इसे शब्दनाद की प्रवृत्ति कहते है। इस प्रवृत्ति के अभाव के कारण छत्र-प्रकाश की भाषा आचार्य शुक्ल प्रभृति विद्वानो की प्रशंसा-भाजन बनी। वर्णनो मे सजीवता का गुण छत्रप्रकाश की प्रमुख विशेषता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अनुप्रास आदि अलकारों का नैसर्गिक प्रयोग छत्रप्रकाश मे द्रष्टव्य है। दूसरे शब्दो मे अतिशय अलकरण की प्रवृत्ति का अभाव लाल के कवित्व मे है। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने छत्रप्रकाश के भाषा-दोषों का विवेचन करते हुए यह लिखा है—'अनेक स्थलो पर उन्होंने शब्दो को अत्यन्त विकृत रूप मे रख

---

1. बाबू श्यामसुन्दरदास की भूमिका, छत्रप्रकाश, पृ. 10

दिया है।'[1] अपने इस कथन के उदाहरण स्वरूप तिवारी जी ने 'मसीदैं' शब्द को भी पेश किया है। तेलुगु भाषा मे आज भी 'मसजिद' को मसीद ही कहा जाता है। तेलुगु ब्राह्मण होने के कारण मातृभाषा के संस्कारो के फलस्वरूप गोरेलाल जी ने मसजिद के लिए 'मसीद' शब्द का प्रयोग किया होगा।

हम्मीररासो

भारत के इतिहास—प्रसिद्ध महवीर, रणथभौर दुर्ग के महाराजा हम्मीरदेव की वीरगाथा का वर्णन इस महाकाव्य मे जोधराज नामक कवि ने किया। विशेष रूप से इस ग्रन्थ मे हम्मीरदेव की अलाउद्दीन के साथ हुई लडाइयो का वर्णन हुआ है। युद्ध के मूलकारण के रूप मे एक काल्पनिक घटना की योजना इस ऐतिहासिक काव्य मे की गयी है। यह काल्पनिक घटना अलाउद्दीन की रूपविचित्रा नामक बेगम से सम्बन्धित है। कवि जोधराज अन्त साक्ष्य के आधार पर अलवर प्रान्त के निम्बराण नामक स्थान के अधिपति चन्द्रभान नामक राजा के आश्रित थे अ र अपने आश्रयदाता की आज्ञा से ही इस काव्य की रचना की। जोधराज अत्रिगोत्रीय गौडवश कुलोत्पन्न ब्राह्मण था और ज्योतिष शास्त्र का भी विद्वान था। इस ग्रथ की रचना चन्द्रभान की आज्ञा से हुई, इस विषय का समर्थन ग्रन्थ के अन्त मे प्राप्त निम्नाकित पुष्पिका से भी होता है—

'इति श्रीमन्महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्रीमदखिल चाहुवान कुल-तिलक नीमराना अधिपति श्रीमहाराजा चन्द्रभानजी देवाज्ञया कवि जोधराज विरचित यवनीश अलाउद्दीन प्रति हम्मीर जुद्ध समाप्तम्।[2]

इस ग्रन्थ का रचनाकाल आचार्य शुक्ल के अनुसार सम्वत् 1875 है और श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धुओ तथा लाला सीतारामजी के अनुसार सम्वत् 1785 हैं। डॉ. टीकमसिंह तोमर ने उपर्युक्त दोनो सवतो को अशुद्ध मानकर काव्य मे वर्णित घटनाओ के आधार पर रचना-काल 1828 ईस्वी माना है।[3] डॉ. उदयनारायण तिवारी का भी यही मत है।"[4]

'हम्मीररासो' में कोई सर्गविभाजन नही है। पूरा काव्य 171 छन्दों में समाप्त हुआ है। काव्यारम्भ मे मगलाचरण के रूप मे गणेश और वाणी जी की वन्दना की गयी है। इसके उपरान्त कल्पातर के प्रारम्भ मे सृष्टि-रचना के

---

1 वीरकाव्य, पृ. 316 2 हम्मीररासो, 163

3 हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड), पृ. 176-177

4 वीरकाव्य, पृ. 412

उपाख्यान से कथा आरम्भ होती है। इस उपाख्यान में पौराणिक ढंग से ब्रह्म के मन से मरीचि, कान से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, त्वचा से नारद, छाया से कर्दम आदि ऋषियो की उत्पत्ति का वर्णन है। पुरुरवा, चन्द्रवश और भार्गव परशुराम का उल्लेख और उसके बाद क्षत्रियो की उत्पत्ति के लिए आबू पर्वत पर ऋषियो के द्वारा यज्ञ, यज्ञकुण्ड से चालुक्य, परमार और चौहानो की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। चौहान वश मे जैतराव नामक राजा और पद्म ऋषि की आज्ञा से उग्र तपस्या करके उस राजा के द्वारा भगवान शिव को प्रसन्न किया जाना और रणथम्भौर दुर्ग की स्थापना की घटनाएँ वर्णित है। अप्सराओ के द्वारा पद्मऋषि का तपोभग और यज्ञ मे अर्पित किये गये ऋषि के मस्तक से अलाउद्दीन, वक्षस्थल मे हम्मीरदेव, भुजाओ से महिमाशाह और चरणो से रूपविचित्रा की उत्पत्ति का कथन किया गया है। एक बार अलाउद्दीन अपनी बेगमो सहित आखेट खेलने जगल गया। एक आँधी के कारण रूपविचित्रा भटककर जगल मे चली गयी। वहाँ मीर महिमाशाह से बेगम ने घृणित प्रस्ताव किया और रानी के आग्रह को मानकर महिमाशाह ने रानी की वासना-पूर्ति की। उस समय महिमाशाह ने एक ही बाण से शेर को मारकर अपनी वीरता प्रकट की। कुछ दिन बाद अन्त-पुर मे रूपविचित्रा के साथ बात करनेवाला बादशाह एक चूहे से डर गया और रूपविचित्रा ने हँसकर महिमाशाह की वीरता की प्रशसा की। अलाउद्दीन ने महिमाशाह को अपने राज्य से निकाल दिया तो हम्मीरदेव ने उनको शरण दी। अलाउद्दीन के अनुरोध करने पर भी हम्मीर ने महिमाशाह को आश्रय-मुक्त करने से अस्वीकार किया। इस कारण से हम्मीरदेव और अलाउद्दीन का युद्ध हुआ। विजय हम्मीरदेव की ही हुई। किन्तु रणथम्भौर के दुर्ग मे रानियाँ भ्रमवश जौहर करके भस्म हुई। इस पर दुखी हम्मीरदेव ने शिव जी को अपना शिर अर्पित कर दिया और अलाउद्दीन ने रामेश्वर में प्राणत्याग किया। सक्षेप मे यही हम्मीररासो की कथावस्तु है। स्पष्ट है कि ऐतिहासिक घटना के ऊपर कल्पना का रग खूब चढा है।

'हम्मीररासो' मे दोहा, छप्पय, पद्धरी, मुक्तादाम, दोहरा, लघुनाराच, भुजगप्रयात, चौपाई, सोरठा, कवित्त, त्रोटक, नाराच, दातार, हनुफल, रसवाल, त्रिभंगी आदि विविध छन्दो का प्रयोग किया गया है। अत कह सकते हैं कि हम्मीररासो छन्दोवैविध्यपरक रासो–परम्परा का काव्य है। रास और रासो नामधारी काव्यरूपों के सम्बन्ध मे भिन्न विचारो के कारण हिन्दी ससार मे अनिश्चित स्थिति थी। किन्तु डॉ- माताप्रसाद गुप्त ने भ्रान्तियों का निराकरण

करके गीतनृत्यपरक रास-काव्यों से रासो-काव्यो के पार्थक्य को स्पष्ट किया ।[1] हम्मीररासो मे पद्यो के बीच-बीच में कई वचनिकाएँ मिलती है, जिन्हे गद्य-खण्ड ही मान सकते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि प्राकृत की पद्यबद्ध कथाओ जैसे लीलावती, विद्यापति की कीर्तिलता आदि मे जो गद्य और पद्य की मिश्रित शैली है, उसी की भाँति पृथ्वीराजरासो मे भी गद्य अवश्य रहा होगा । उनका यह भी मत है कि—"वस्तुत रासो मे बीच-बीच मे जा वचनिकाएँ आती है, वे गद्य ही है ।[2]" 'हम्मीररासो' मे वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर इन छहों ऋतुओ का वर्णन एक साथ एक ही प्रसंग मे किया गया है और वह प्रसग पद्य ऋषि का तनुपात-प्रसग है । इस महाकाव्य की भाषा मे ओजस्विता का समावेश वीररस के वर्णन के लिए बहुत ही उपयुक्त है । इस भाषा में साहित्यिक ब्रजभाषा के रूप और साधारण बोलचाल के रूप भी दृष्टिगत होते है । वीररस के प्रसग मे सयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है । आचार्य शुक्ल के शब्दो मे—"प्राचीन वीरकाल के अन्तिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप मे और जिस प्रकार की भाषा मे अकित होना चाहिए था, उसी रूप और उसी प्रकार की भाषा में जोधराज अकित करने मे सफल हुए है ।[3]"

सूजानचरित

हिन्दी के वीररसात्मक काव्यों मे सुजानचरित का गणनीय स्थान है । इस महाकाव्य की प्रसिद्धि का मुख्य कारण इसमे वर्णित चरितनायक सुजान सिंह उपनाम सूरजमल का प्रतापी व्यक्तित्व ही है । सूदन इस महाकाव्य के रचयिता है । लाला सीतारामजी के अनुसार—"सूदन वीररस के श्रेष्ठ कवियो मे से एक प्रतीत होते है । ······सूदन का उत्तरभारत की सभी बोलियों पर पूर्ण अधिकार था । युद्धों के सजीव और चित्रात्मक वर्णनो में केवल पृथ्वीराज-रासो के अमर कवि ही इनका प्रतिद्वन्द्वी है ।[4]" श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी उक्त

---

1 पृथ्वीराजरासो की भूमिका, पृ. 172 2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ 64
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 324
4. "Sudan seems to have been one of the greatest poets of Vir (Heroic) rasa·········Sudan was master of all the vernaculars of Upper India and his graphic discription of the battles is rivalled only by the immortal author of Prithviraj Raso"
–Selections from Hindi Literature, Book I Bardic poetry, Page 241-242

मान्यता को स्वीकार करते हुए इस प्रकार कहते हैं—"कोई-कोई तो चन्द के बाद इन्ही को वीररस का सर्वोच्च कवि मानते हैं और कदाचित् उनका कथन अतिशयोक्तिपूर्ण भी नही है।[1]" वस्तुओं की गिनती गिनाने की प्रणाली, विभिन्न भाषाओ और बोलियों का अधिक प्रयोग और भाषा की कृत्रिमता के कारण आचार्य शुक्ल सुजानचरित को महत्त्व नही देते। सूदन मे वीररसात्मक स्थलो के वर्णन की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए भी शुक्लजी उपर्युक्त त्रुटियो के कारण यह मानते है कि इस ग्रन्थ का साहित्यिक महत्त्व बहुत कुछ घटा हुआ है।[2]

'सुजानचरित' का रचनाकाल काव्य मे वर्णित घटनाओ के आधार पर सवत् 1810 के आसपास माना जाता है। चूँकि इस काव्य मे सवत् 1802 से लेकर 1810 तक की घटनाओ का वर्णन है, रचनाकाल के विषय मे अधिक मतभेद नही है। सूदन ने अपने को मथुरा ब्राह्मण एव बसन्त के पुत्र बताया है। अपने आश्रयदाता की प्रशसा मे कवि ने यह ग्रन्थ लिखा है। सुजानचरित की रचना सर्गबद्ध रूप मे हुई है। वीररसात्मक युद्ध वर्णनो के अनुरूप ही सूदन ने अपने काव्य के सर्गों को जग कहा है। हर एक जग को फिर अको मे विभाजित किया गया है। सात जगो मे यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। प्रत्येक अक के पश्चात् एक छन्द प्रयुक्त हुआ है, जिसमे प्रसग के अनुसार छन्द की अन्तिम पक्ति बदल गयी है और अन्य शब्दावली सभी स्थानों पर समान है।

प्रत्येक जग के अन्त मे निम्नांकित प्रकार की पुष्पिका भी सयोजित है—

"सिद्धि श्रीमन्महाराजाधिराजब्रजेन्द्र कुँवार सुजान सिंह हेतवे कवि सूदन विरचिते सुजानचरित्रे असदखान हतनो नाम प्रथम जग समाप्त।[3]" सूदन ने अपने चरितनायक को यदुवंशी बताया है। इस ग्रन्थ मे ऐतिहासिक घटनावली का विस्तृत एवं यथातथ्य वर्णन है। अतः इतिहास की दृष्टि से भी यह महत्त्व की रचना है।

'सुजानचरित' मे कवित्त, दोहा, अरिल्ल, छप्पय, पदगा, कुण्डलिया, तोटक, मधु-मार सोरठा, तिलक, लीलावती, गगोदक, मनोरमा आदि विविध छन्दो का प्रयोग किया गया है। इकतीस अंको के इस काव्य मे निन्यानबे प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है। इस काव्य की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। पजाबी,

---

1. हिन्दी के कवि और काव्य (भाग 1), पृ 421
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 335
3. सुजानचरित, प्रथम जग

मारवाडी, पूरबी बोली आदि अन्य भाषाओं एव बोलियों का प्रयोग भी इस ग्रन्थ में है। ग्रन्थारम्भ में कवि ने मगलाचरण के अनन्तर पहले सस्कृत के और बाद मे हिन्दी के 175 कवियो का नामोल्लेख करके उनकी वन्दना की है। कवि की वस्तुपरिगणनात्मक प्रवृत्ति को समझने के लिए यह उल्लेख ही पर्याप्त है। यद्यपि इस काव्य का नाम सुजानचरित है, इसमे नायक के शौर्य प्रधान पक्ष का ही वर्णन है। शब्दनाद एव अनुप्रासयुक्त शब्दावली का प्रयोग इस काव्य की अन्य विशेषता है।

हम्मीरहठ

मध्यकाल तक हिन्दी मे प्रवाहित वीरकाव्य धारा की अन्तिम प्रसिद्ध एव साहित्यिक सौष्ठव से युक्त ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप मे 'हम्मीरहठ' महत्त्वपूर्ण है। इसके रचयिता चन्द्रशेखर वाजपेयी की अन्य कृतियाँ भी प्रकाशित है, जिनके आधार पर कवि के जीवनवृत्त सम्बन्धी कतिपय अश हिन्दी ससार को ज्ञात है। वाजपेयी का जीवनकाल ई 1798-1875 तक माना जाता है। यद्यपि इनका जन्मस्थान फतेहपुर जिले मे है, तो भी ये पर्यटन करते हुए दरभगा, जोधपुर और पटियाला आदि स्थानो मे जाकर वहाँ के नरेशो से सम्मानित हुए। आखिर ये पटियाला मे ही रह गये। अपने आश्रयदाता नरेन्द्रसिंह के आदेश से इन्होने 'हम्मीरहठ' महाकाव्य की रचना की।

हम्मीरहठ मे सर्गविभाजन प्राप्त नही होता। पूरी रचना 403 छन्दो मे समाप्त हुई है। मगलाचरण के रूप मे कवि ने 'गिरिवरधर अरु गगधर चरन सरन सिर नाई' मात्र कहा है, जिसमे अन्य कवियो की तुलना मे सक्षेप की प्रवृत्ति एवम् हरिहर के अभेद का दृष्टिकोण प्रकट है। इस ग्रन्थ में रणथम्भोर के राव हम्मीर एवम् अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन है। अलाउद्दीन के चरित्र को हास्यास्पद ढग से चूहे से डरने के रूप मे निरूपित करना आचार्य शुक्ल के मत मे एक खटकनेवाली त्रुटि अवश्य है।[1] किन्तु कथा के अन्य अंशों की भाँति यह भी चन्द्रशेखर जी की पूर्ववर्ती रचनाओं मे प्राप्त है। इसको कवि की अपनी उद्भावना नही समझकर परम्परागत प्रसग मान सकते है। साहित्यिक दृष्टि से इस काव्य के मूल्य को सभी विद्वानो ने स्वीकार किया है। ब्रजभाषा काव्य के मर्मज्ञ तथा सफल कवि जगन्नाथदास जी रत्नाकर के शब्दो मे—"इस ग्रन्थ की कविता बड़ी मनोहर और उमगवर्द्धिनी है। ओज, माधुर्य और प्रसाद अपने अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हैं···किस अवसर पर कैसे अर्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 369

का साधन किन शब्दों द्वारा करना उचित है, इस बात पर कवि ने ध्यान रखा है और इसमे वे कृतकार्य भी हुए है।"[1] शुक्ल जी के अनुसार—"इनकी कीर्ति को चिरकाल तक स्थिर रखने के लिए हम्मीरहठ ही पर्याप्त है। उत्साह की, उमग की व्यजना जैसी चलती, स्वाभाविक और जोरदार भाषा मे इन्होने की है वैसे ढग मे करने मे बहुत ही कम कवि समर्थ हुए। वीररस वर्णन में इस कवि ने बहुत सुन्दर साहित्यिक विवेक का परिचय दिया है।" भाषा भी पूर्ण व्यवस्थित च्युत सस्कृति आदि दोषो से मुक्त और प्रवाहमयी है। साराश यह कि वीररस वर्णन की अत्यन्त श्रेष्ठ प्रणाली का अनुसरण चन्द्रशेखर जी ने किया है।"[2]

'हम्मीरहठ' में दोहा, कवित्व, सोरठा, चौपाई, सवैया, झूलना, त्रिभगी, भुजगप्रयात, छप्पय आदि विविध छन्दो का प्रयोग किया गया है। केशव की रामचन्द्रिका की ही भाँति इस काव्य में भी संवादों की योजना में बेगम उवाच, मीरउवाच, हम्मीर देव उवाच, इस प्रकार के शीर्षक रखे गये हैं। केशव के सन्दर्भ में शुक्ल जी ने इस पद्धति को प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से दोष माना है।[3] हम्मीर हठ की भाषा परिमार्जित एवं साहित्यिक ब्रजभाषा है।

स्वारोचिषमनुसंभव

तेलुगु साहित्य की शास्त्रीय महाकाव्य परम्परा के सर्वश्रेष्ठ तथा परवर्ती महाकाव्यो के पथप्रदर्शक ग्रन्थ के रूप मे इसका महत्त्व है। सस्कृत साहित्य के विद्यार्थी जिस प्रकार काव्यपचक का अध्ययन अनिवार्य रूप से करते हैं, उसी प्रकार तेलुगु के पच महाकाव्यो मे 'मनुचरित' का अध्ययन व्युत्पत्ति के लिए किया जाता है। सविधानचातुर्य, सजीवपात्र-निर्माणकौशल, सुन्दर वस्तुवर्णनों की योजना तथा अलकृत भव्य भाषाशैली के कारण यह महाकाव्य अपने उद्भवकाल से लेकर अद्यावधि काव्य-रसिकों का प्रीतिभाजन बना हुआ है। यद्यपि कवि ने इसका नाम 'स्वारोचिषमनुसम्भव' रखा और काव्य के वर्णित कथानक की दृष्टि से भी यही नाम उपयुक्त है, तो भी प्रयत्न-लाघव की प्रवृत्ति से परिचालित जन-व्यवहार में इसका 'मनुचरित्र' नाम रूढ हो गया और आज भी वही नाम व्यवहृत है। सम्भवत: 'वसुचरित्र' महाकाव्य के नाम-सादृश्य के आधार पर यह रूढ़ि चल पडी होगी।

---

1. 'हम्मीरहठ' की भूमिका, पृ. 4
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 3 8-59
3. वही प 194

इस महाकाव्य के रचयिता अल्लसानि पेद्दनार्य हैं जो विजयनगर साम्राज्य के अधीश्वर सम्राट कृष्णदेवराय के प्रीतिपात्र तथा उनसे सम्मानित राजकवि है। अपने आश्रयदाता की सम्मानपूर्ण अभ्यर्थना के फलस्वरूप ही कवि ने इस काव्य की रचना की थी। श्रीकृष्ण देवराय की अभ्यर्थना के अनुसार इस कवि की वाणी शिरीष कुसुम के समान पेशल तथा सुधा की भाँति मधुर है। पेद्दनार्य चतुरवचोनिधि है अतुलनीय पुराण, आगम एव इतिहास की कथाओ के मर्मज्ञ है तथा आन्ध्र-कविता-पितामह है और उनके समान कवि कोई और नही है।[1] इस अन्त.साक्ष्य के अलावा पेद्दनार्य को प्राप्त राजसम्मान को प्रमाणित करनेवाला बाह्यसाक्ष्य भी पर्याप्त मिलता है। पेद्दनार्य द्वारा प्रणीत एक फुटकर छन्द के अनुसार श्रीकृष्ण देवराय ने राजमार्ग मे जाते समय यदि पेद्दनार्य दिखायी पडे तो हाथ का सहारा देकर हाथी के ऊपर अपने पास बिठाया था, कवि के अभिलषित प्रान्तो मे अनेक गाँव दान मे दिये, 'मनुचरित्र' काव्य को स्वीकार करते समय अपने हाथ से कवि की पालकी को उठाया था और 'गडपेंडेर' नामक स्वर्णमय आभरण को स्वय कवि के चरण मे पहनाया था।[2] हिन्दी साहित्य मे भी राजा के द्वारा कवि के सम्मान मे पालकी उठाने का उल्लेख मिलता है। जब भूषण छत्रसाल के यहाँ से बिदा हो पालकी पर सवार होकर चलने लगे तो छत्रसाल ने अपूर्व प्रेमभाव से प्रेरित हो, अपनी मान-मर्यादा आदि का कुछ ख्याल न कर कहारों के साथ स्वय भी इनकी पालकी मे अपना कधा लगा दिया था।"[3] श्रीकृष्णदेवराय का राज्यकाल ई. 1509 से 1530 तक माना जाता है। अतएव मनुचरित्र का रचनाकाल सोलहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

इस महाकाव्य की कथावस्तु मार्कण्डेयपुराण से ग्रहण की गयी है। इसमे मार्कण्डेय एवं क्रोष्टी तथा धर्मपक्षी एवं जैमिनि मुनि की वक्ता-श्रोता योजना भी प्राप्त होती है। सम्पूर्ण ग्रन्थ छः आश्वासो मे विभाजित है और 800 छन्दो मे समाप्त हुआ है। तेलुगु के मार्कण्डेय पुराण मे 145 छन्दो मे वर्णित इस कथा को पेद्दनार्य ने अपने रचना-चातुर्य से पल्लवित करके विस्तृत एव आकर्षक रूप प्रदान किया। सस्कृत के मार्कण्डेय पुराण मे 256 श्लोक है। मार्कण्डेय पुराण मे स्वायभुव, वैवस्वत आदि विविध मनुओ के आख्यान है। मनुचरित्र में

---

1 मनुचरित्र, प्रथम आश्वास—14, 15

2. मनुचरित्र की पीठिका, श्रीवेटूरि प्रभाकर शास्त्री, पृ 11

3 हिन्दी के कवि और काव्य- पृ- 348

स्वारोचिष मनु के उद्भव की कथा है। स्मरणीय है कि 'कामायनी' मे वर्णित मनु वैवस्वतमनु है।

मनुचरित्र के इतिवृत्त का समापन निर्वेद भाव से होने के कारण इसमे शान्तरस की प्रधानता कुछ लोग मानते हैं। परन्तु काव्य की कतिपय घटनाओ मे रति भाव की ही मुख्य रूप से योजना है। अतएव इस महाकाव्य को शृगाररस-प्रधान मानना ही उचित है। इस काव्य के सभी पात्रो मे प्रवर एव वरूधिनी के पात्रो का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक सजीव रूप मे हो सका है। जितेन्द्रियत्व के लिए प्रवर तथा प्रलोभन देकर पुरुष को वशीकृत करने के लिए वरूधिनी के पात्र तेलुगु भाषियो में सर्वाधिक लोकप्रिय बन गये। इस काव्य के सुन्दर वर्णनो मे अरुणास्पद नगर, हिमालय, वरूधिनी, सायकाल, चन्द्रिका, विवाह आदि उल्लेखनीय है। कथावस्तु के साथ इन वर्णनो का सुन्दर सामंजस्य इस काव्य की मुख्य विशेषता है। विवाह-वर्णन के एक पद्य का भावार्थ नमूने के तौर पर द्रष्टव्य है।

"मागलिक तूर्यनाद की सुहावनी वेला मे परस्पर दर्शनाकांक्षी वधू-वर के बीच मे तना हुआ धवल पर्दा धीरे-धीरे नीचे उतार दिया जा रहा था तो दुलहिन मनोरमा का जूडा, मुख, गर्दन एव पयोधर क्रमश दिखाई पडे। तब मनोरमा क्षीरसागर की लहरो मे से उदित इदिरा की भाँति बहुत सुन्दर लग रही थी।"[1]

वसुचरित्र

तेलुगु के काव्यपंचक मे 'मनुचरित्र' के बाद 'वसुचरित्र' का स्थान है। कालक्रम की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ की रचना मनुचरित्र के बाद ही हुई। श्री वज्झल चिन सीतारामस्वामी शास्त्री के मत में यह ग्रन्थ महाकाव्य लक्षण-लक्षित है।[2] श्री सन्निधान सूर्यनारायण शास्त्री के अनुसार मनुचरित्र की अपेक्षा वसुचरित्र पर ही महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण घटित होते हैं।[3] भाव-गम्भीरता, व्यग्य-वैभव, समुचित शब्द-प्रयोग-चातुर्य, सुन्दर वस्तु-वर्णन एव सगीतात्मकता के कारण पण्डित-मण्डली मे इस महाकाव्य की अपूर्व ख्याति रही है। तेलुगु मे इस महाकाव्य की शैली के अनुकरण पर बहुत सी कृतियाँ रची गयी, जिन्हें 'वसुचरित्र की पुत्रिकाएँ' कहा जाता है। अप्पय्य दीक्षित के शिष्य श्री कालहस्ति कवि ने संस्कृत मे इसे अनूदित किया था, तमिल मे भी

---

1. मनुचरित्र, 5—80
2. वसुचरित्रविमर्शनमु, पृ. 5
3. अष्टदिग्गजमुलु, पृ. 222

इसका अनुवाद हुआ और उन्नीसवी शताब्दी में इसके कुछ अशो का अनुवाद अग्रेजी मे भी किया गया। अठारहवी शती से ही इस काव्य की व्याख्याएँ लिखी गयी, जिनमे से छ व्याख्याएँ प्रसिद्ध है।

इस महाकाव्य के प्रणेता रामराजभूषण उपनाम भट्टुमूर्ति है, जिन्होने इसके अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्रनलोपाख्यान' नामक द्व्याश्रय महाकाव्य तथा 'काव्यालकारसग्रह' नामक लक्षण-ग्रन्थ की भी रचना की। इन ग्रन्थो के आधार पर कवि की प्रतिभा, पाण्डित्य, सगीतकला-मर्मज्ञता एव उनको प्राप्त राजादर को समझा जा सकता है। ग्रन्थों में प्राप्त ऐतिहासिक घटनावली के आधार पर आचार्य दिवाकर्ल वेकट अवधानी ने वसुचरित्र का रचनाकाल ई. 1552--75 के बीच निर्धारित किया है। विजयनगर साम्राज्य के अधीश्वर रामराज के दरबार में रहने के कारण इस कवि का उपनाम रामराजभूषण पडा। 'वसुचरित्र' रामराज के अनुज तिरुमलराय की इच्छा से रचित होकर उन्ही को समर्पित किया गया।

महाभारत के आदिपर्व में बहुत सक्षेप मे प्राप्त उपरिचर नामक वसु के आख्यान को ग्रहण करके, नई कल्पनाओ से आकर्षक बनाकर, रमणीय वर्णनो से अलकृत करके शृगार रस का परिपाक प्रधान रूप से करते हुए कवि ने इस महाकाव्य की सृष्टि की है। कवि ने आश्वासान्त पुष्पिकाओं एव अवतारिका (भूमिका) मे अपने काव्य को 'महाकाव्य' एव 'महाप्रबन्ध' कहा है। अन्य प्रसिद्ध महाकाव्यों की भाँति इसमे भी शार्दूलविक्रीडित, मत्तेभविक्रीडित, चंपकमाला, उत्पलमाला आदि वर्णवृत्तो के साथ कदमु, सीसमु, तेटगीति जैसे देशी छन्दो तथा बीच बीच मे अलकृत गद्यखण्डो का प्रयोग किया गया है। आश्वासो के अन्त मे स्रग्धी, तरल, मालिनी, कविराजविराजित, पंचचामर एवं पृथ्वी छन्दो का प्रयोग आश्रयदाता के सबोधन मे किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा सागरूपक, श्लेष, समासोक्ति, काव्यलिग आदि अलकारो की छटा महाकाव्य मे दर्शनीय है।

इस महाकाव्य की सभी घटनाएँ कोमल प्रसग है। इनके द्वारा शृगार-रस के समुचित परिपाक के लिए कवि को यथेष्ट अवकाश मिला। असदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि वसुचरित्र का प्रधान रस शृगाररस है। पुरवर्णन, वसन्तवर्णन, सूर्योदयवर्णन, वन वर्णन, सध्या वर्णन, नखशिख वर्णन, विवाह वर्णन, सूर्यास्त वर्णन, चन्द्रवर्णन, आदि की योजना इस महाकाव्य मे की गयी है। प्रौढ़ साहित्यिक भाषा-शैली के दर्शन काव्य मे सर्वत्र मिलते है। पात्रो का प्रवेश, राजा के नर्मसखा रूप में विदूषक की योजना आदि मे सस्कृत के

दृश्यकाव्यों की रचना-पद्धतियों का प्रभाव इस महाकाव्य पर परिलक्षित होता है । शब्दों की श्रुतिरजकता एव श्लेष अलकार का सुन्दर निर्वाह रामराजभूषण के कवित्व की गणनीय विशेषताएँ है । कोलाहल पर्वत एव शुक्तिमती नदी पर मानवीय गुणों का आरोप करके सजीव पात्रों के रूप से उनका वर्णन श्लेष के बल पर करना इस महाकाव्य की अनन्य विशेषता है ।

पारिजातापहरण

तेलुगु के श्रृंगाररस-प्रधान महाकाव्यो मे पारिजातापहरण का महत्त्व मानिनी नायिका सत्यभामा की विविध मनोदशाओ का सुन्दर चित्रण तथा कवि की प्रसादगुणयुक्त सुमधुर भाषा-शैली के कारण है । एक अनुश्रुति प्रचलित है कि प्रणय-कलह मे पटरानी के द्वारा किये गये अपराध के कारण रुठे हुए सम्राट श्रीकृष्ण देवराय को रानी के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करने का संदेश देने के लिए इस महाकाव्य की रचना हुई थी । नायक श्रीकृष्ण तथा सम्राट श्रीकृष्णदेवराय मे नाम-साम्य के कारण कवि को अपना सदेश व्यग्य रूप मे देना सुकर था । हिन्दी साहित्य मे भी आश्रयदाता राजा को व्यग्यात्मक पद्धति से सदेश देने का उदाहरण बिहारी के—

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल' वाले दोहे से सबधित जनश्रुति मे मिलता है ।

इस महाकाव्य के रचयिता नदि तिम्मनार्य है, जो श्रीकृष्णदेवराय के आश्रित राजकवि थे । इस कृति का रचनाकाल विद्वानो के द्वारा ई. 1518 के लगभग निर्धारित किया गया है । यह काव्य सम्राट श्रीकृष्णदेवराय को समर्पित हुआ है ।

इस महाकाव्य की कथावस्तु कवि ने हरिवंशपुराण से ग्रहण की । आरंभ मे कवि ने वेंकटेश भगवान, शकर, गणेश, वाणी एवं चन्द्रमा का वर्णन करके आश्रयदाता के लिए मगलाशासन किया है । इस प्रकार नमस्क्रिया एव आशीर्वाद रूपी मगलाचरण सम्पन्न हुआ । इसके उपरान्त श्रीकृष्णदेवराय की वशपरंपरा, उनकी विजय-यात्राओ, पराक्रम आदि का वर्णन किया गया है । इसके वस्तु-सविधान मे दृश्यकाव्योचित पद्धतियो को अपनाया गया है । सम्पूर्ण काव्य मे पाँच आश्वास तथा 512 छन्द हैं ।

पारिजातापहरण की कथावस्तु इस प्रकार है । एक समय श्रीकृष्ण भगवान रुक्मिणी के भवन में विनोद की क्रीडाओ मे मग्न थे । नारद जी आकाश मार्ग से वहाँ पधारे । नाराद जी का स्वागत-सत्कार हुआ । नारद ने स्वर्गलोक का पारिजात पुष्प भेंट स्वरूप श्रीकृष्ण को दिया । श्रीकृष्ण ने

वह पुष्प रुक्मिणी को दिया। अपने जूडे मे उस पुष्प को धारण करने के कारण रुक्मिणी के सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि हुई। नारद ने उस पुष्प का प्रभाव, रुक्मिणी की सज्जनता एव सत्यभामा के रूपगर्व का खूब वर्णन किया। अपनी सखी के द्वारा यह सारा समाचार मानवती नायिका सत्यभामा को मिला तो वह अत्यन्त क्षुब्ध तथा श्रीकृष्ण पर क्रोधित होकर अपने कोप भवन मे चली गयी। श्रीकृष्ण सत्या के पास गये, विभिन्न प्रकारो से उन्हे मनाया। शिर नवाया तो सत्यभामा ने क्रोध से श्रीकृष्ण के शिर पर लात मार दी। इससे श्रीकृष्ण बिगड़ नही, मधुर बातो से सत्या का अनुनय करने लगे। उन्होने सत्यभामा से कहा कि एक पुष्प मात्र के लिए इतनी चिन्ता क्यो करती हो, स्वर्गलोक जाकर आवश्यक हो तो देवेन्द्र को भी जीतकर पारिजात वृक्ष को उखाड लायेगे और तुम्हारे आगन मे लगायेगे। इस पर सत्यभामा अतीव प्रसन्न हो गयी। श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुडवाहन पर बैठकर स्वर्ग जाकर पारिजात का अपहरण करके द्वारका लौट आये।

इस महाकाव्य के काव्य-सौन्दर्य को समझने के लिये नमूने के तौर पर एक छन्द का भावार्थ नीचे दिया गया है।

"एक भौरा परकीया के मदन व्यापारो मे उन्मत्त होकर अपनी धर्म पत्नी को कमल-गृह में मकरन्द-पान करते हुए छोडकर दिन भर घूमकर सायकाल के समय किसी भी प्रकार से अपनी पत्नी के पास जाने मे असमर्थ होकर उस सरोवररूपी लक्ष्मी के पहरेदार की भाति चारो ओर चक्कर काट रहा था। सरोवरलक्ष्मी उपकार-बुद्धि से बिल्कुल शून्य है। अपने पहरेदार की सहायता भी नही करती।"[1]

आमुक्तमाल्यदा

सृजनात्मक कलाकार के रूप मे सम्राट श्रीकृष्णदेवराय के यश को चिरकाल तक स्थिर रखनेवाला ग्रन्थ 'आमुक्तमाल्यदा' है। भगवान विष्णु की प्रसिद्ध भक्तिन गोदादेवी (आन्डाल) का दिव्य शृगार, विष्णुचित्त नामक आल्वार सत का सरल-स्वाभाविक चरित्र, यामुनाचार्य आदि भक्तों के आख्यान, वर्णन-बाहुल्य, प्रकृति-निरीक्षण की कुशलता, प्रौढ़ साहित्यिक तत्सम-शब्दप्रधान भाषा-शैली तथा राजनीति के उपदेश—इन सबका समन्वित रूप यह महाकाव्य है। आन्डाल ही आमुक्तमाल्यदा है। अतः यह काव्य पद्मावत एव 'कामायनी' की भाति नायिका-प्रधान है। कर्नाटक प्रान्त की

---

1. पारिजातापहरण, 2—33

अक्कमहादेवी, राजस्थान की मीरा एव तमिल प्रान्त की गोदादेवी की भक्ति मधुर भक्ति है, जो भागवत पुराण और तदनुसार वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रतिष्ठित गोपिकाओ की प्रमलक्षणा भक्ति है। अपना रूपसौन्दर्य भगवान को प्रिय लगे, इस उद्देश्य से अपने जूडे मे धारण की हुई पुष्पमाला विष्णु को समर्पित करने के कारण आन्डाल का नाम आमुक्तमाल्यदा पडा।

श्री कृष्णदेवराय का शासनकाल सोलहवी शती का पूर्वार्ध है, अत इस महाकाव्य का रचनाकाल भी वही माना जा सकता है। कृति तिरुपति के वेकटेश भगवान को समर्पित है। काव्य के आरम्भ मे कवि ने अपनी वैष्णव भक्ति-भावना के अनुरूप वेकटेश भगवान, अनत, गरुड, विष्वक्सेन, सुदर्शन चक्र, पाँचजन्य एव बारह आल्वार सतों की वन्दना की है। इसके उपरात अपनी युद्ध-यात्रा के सम्बन्ध मे कृष्णा नदी के तटस्थ श्रीकाकुल क्षेत्र के भगवान आन्ध्रविष्णु की सेवा और एकादशी की रात मे भगवान के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है। आमुक्तमाल्यदा मे छ आश्वास है। पूरी रचना 873 छन्दो मे समाप्त हुई है। अन्य प्रसिद्ध महाकाव्यो की भाति इसमें भी सस्कृत के वर्णवृत्तो, तेलुगु के देशीय छन्दो एव बीच बीच में अलकृत गद्यखण्डो का प्रयोग हुआ है।

'आमुक्तमाल्यदा' की आधिकारिक कथावस्तु सक्षेप मे इस प्रकार है। श्री विल्लिपुत्तूर नामक नगर मे विष्णुचित्त नाम का एक भक्त रहता था। वह न्यायार्जित धन से सतो की सेवा करता था और अपना सारा समय भगवद्-भजन में व्यतीत करता था। उस समय मथुरापुर मे मत्स्यध्वज नामक राजा ऐहिक जीवन से विरक्त हो गया था। उसने पडितों से यह प्रश्न पूछा कि कौन-सा भगवान मोक्ष देने में समर्थ है और कौन-सा धर्म वेदमत के अनुसार है। शास्त्रार्थ करके राजसभा मे इस विषय का निरुपण करनेवाले विद्वान के लिए पुरस्कार भी घोषित किया। विष्णुचित्त ने भगवान की प्रेरणा से मथुरा जाकर शास्त्रार्थ द्वारा सिद्ध किया कि विष्णु भगवान ही एकमात्र परम सत्ता है। राजा को वैष्णव धर्म में दीक्षित करके विष्णुचित्त श्रीविल्लिपुत्तूर चला गया। एक दिन तुलसी के पौधो के बीच विष्णुचित्त को एक शिशु मिल गयी। उसे भगवान का प्रसाद मानकर पालन-पोषण कर रहा था। वह बालिका कालांतर मे यौवनवती बन गयी और अपनी सखियो के साथ हरि का गुणगान मधुर ढग से कर रही थी। पिता के द्वारा बनायी गयी पुष्पमाला को अपने केशो मे अलकृत करके कुएँ के जल में अपना सौंदर्य देखती थी। फिर उन मालाओ को यथास्थान रखती थी। विष्णुचित्त को यह मालुम नही था,

उन्ही मालाओं को भगवान को चढाता था। एक दिन अपनी पुत्री का हाल देखकर विष्णुचित्त को बडा दुख हुआ और अपने अपराध के लिये उसने भगवान से क्षमायाचना की। विष्णुदेव ने यह बताया कि विष्णुचित्त की वह पुत्री आन्डाल परम भक्तिन है। आन्डाल विष्णु को ही अपना पति मानकर वियोग-दुख मे पीडित थी। विष्णुचित्त ने अपनी पुत्री का विवाह श्रीरंगनाथ के साथ सम्पन्न किया।

'आमुक्तमाल्यदा' का सौन्दर्य मुख्यत वर्णन-कौशल पर आधारित है। इन वर्णनो मे बडे ही स्वाभाविक ढग से पशुओ, पक्षियो, वृक्षो, कीडो आदि के आकार तथा चेष्टाओ की योजना की गयी है। सपन्न गृहस्थो के अतिरिक्त गरीब जनता के जीवन के भी कुछ अपूर्व चित्र इस काव्य मे प्राप्त होते हैं। पात्रो के माध्यम से राजनीति के उपदेश दिये गए है, जो कवि के तद्विषयक वैदुष्य के द्योतक हैं। वैष्णवधर्म-भावना इस काव्य मे सर्वत्र परिव्याप्त है।

वर्णन-कौशल के उदाहरणस्वरूप निम्नोक्त अवतरण द्रष्टव्य है।

"धान के खेतो के समीप मे बहनेवाली नहरो की रेत पर बतखे अपना सिर एवं चोंच पखो मे छिपाकर सो रही थी। उन बतखो को देखकर नगर की रखवाली करनेवाले पहरेदारों को भ्रम हुआ कि ब्राह्मी मुहूर्त मे स्नान करने आकर ब्राह्मण अपने गीले वस्त्रो को यहाँ भूलकर चले गये होगे। वस्त्र समझकर नहर की तरफ जानेवाले पहरेदारो के भ्रम पर खेतों की रखवाली करनेवाली रमणियाँ खिलखिलाकर हँस पडी।"[1]

कलापूर्णोदय

महाकाव्य-रचना मे विशुद्ध नूतन प्रयोग के रूप मे पिंगलि सूरनार्य ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। इतिहास, पुराण आदि प्रख्यात स्रोतो से कथा-वस्तु का चयन नही करके विशुद्ध काल्पनिक इतिवृत्त की योजना, परम्परागत रूप मे कथा-कथन से भिन्न नवीन वस्तु-विन्यास तथा शृंगाररस के विविध रूपो की योजना इस महाकाव्य की विशिष्टताएँ है। आचार्य लक्ष्मीकांतम जी के अनुसार इस काव्य के नाम से यह व्यजित होता है कि कला की परिपूर्णता का आविर्भाव इस महाकाव्य में द्रष्टव्य है।

अधिकाश विद्वानो के मतानुसार सोलहवी शती के उत्तरार्द्ध मे इसकी रचना हुई। इसमे आठ आश्वास है और सम्पूर्ण रचना 1847 छन्दों मे समाप्त हुई। काव्य-रचना एव श्रेष्ठ कवित्व से सम्बन्धित अपनी मान्यताओं का प्रकाशन कथा के बीच मे पात्रों के माध्यम से कवि ने किया है।

---

1 आमुक्तमाल्यदा, 1—64

वस्तुयोजना में सूरनार्य ने विलक्षण ढग अपनाया है, जो इसके पूर्ववर्ती तथा पश्चात् के काव्यों में दृष्टिगत नहीं होता। पाठको की उत्सुकता को बनाये रखने के निमित्त आजकल के उपन्यासों में कथा के बीच के किसी प्रसग से रचना का आरम्भ किया जाता है। ठीक इसी पद्धति को सोलहवी शताब्दी के सूरनार्य ने महाकाव्य-रचना मे अपनाया। डॉ. सी. आर. रेड्डी ने इतिवृत्त-निर्वहण की दो पद्धतियाँ मानी है—कालक्रम-पद्धति एव कार्यकारण-पद्धति। इस महाकाव्य मे कार्यकारण-पद्धति को अपनाया गया है। असल मे 'कलापूर्णोदय' की कथा का वास्तविक आरम्भ कालक्रम-पद्धति के अनुसार पचम आश्वास मे वर्णित सरस्वती-चतुर्मुख-सवाद से होता है। परन्तु कवि ने कलभाषिणी के वृत्तान्त से काव्य का आरम्भ किया है।

कथावस्तु में अनावश्यक घटनाओ का गुफन बहुत ही विरल है। आदि से अन्त तक निबद्ध सभी घटनाओ को परस्पर बाधनेवाली एकसूत्रता का पूर्ण सद्भाव इस महकाव्य मे है। प्रख्यात इतिवृत्त को ग्रहण करने से कवि को यह सुविधा रहती है कि वह पाठकों का तादात्म्य काव्यगत पात्रों एवं वातावरण से सुगमतापूर्वक करा सकता है। उत्पाद्य इतिवृत्त मे प्रायः यह सुविधा नही होती। परन्तु एक सीमा तक इस महाकाव्य में पौराणिक वस्तु का प्रभाव उत्पन्न करने मे कवि सफल हुआ है। कल्पना-प्रसूत इतिवृत्त होने पर भी सरस्वती, ब्रह्मा, श्रीकृष्ण, द्वारका, नारद, नलकूबर, रभा आदि पौराणिक नामावली के कारण पाठकों को अनुभूति वही मिलती है, जो पौराणिक कथा के रसास्वादन में मिलती है।

कलापूर्णोदय की कवित्व-माधुरी को समझने के लिए एक छन्द का भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—"यदि सहज ही शीतल चन्द्रिका में सुगन्ध का समावेश हो जाय, सुगन्ध एव शीतलता से युक्त कपूर के टुकड़ो में कोमलता का गुण भी हो जाय और सुगन्ध, शीतलता एव सुकुमारता से पूर्ण मन्द मलयानिल में माधुर्य का भी योग हो तो तभी इन पदार्थों की तुलना कवित्व से की जा सकती है।"[1]

कुमारसम्भव

संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास एव कुमारसम्भव का बोध किसी भी व्युत्पन्न सहृदय के मन में अविच्छिन्न रूप से होना स्वाभाविक है। किन्तु तेलुगु साहित्य के सन्दर्भ मे काव्य-गुणों का उत्कर्ष, कवि की दार्शनिक विचार-

1. कलापूर्णोदय 1—83

धारा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति, नवीन कथा-प्रसगो की योजना, वर्णन-कौशल, भाषा-प्रयोग तथा छन्दविधान की विशिष्ट रीतियो की दृष्टि से नन्निचोड विरचित 'कुमारसम्भव' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण, पउमचरिउ, सेतुबन्ध आदि रामकथात्मक प्रसिद्ध ग्रन्थो के प्रणयन के बाद रचित होने पर भी तुलसी का 'मानस' स्वतन्त्र एव उत्कृष्ट महाकाव्य के रूप मे सम्भावनीय है, उसी प्रकार कालिदास के कारण लब्ध-प्रतिष्ठ इतिवृत्त को लेकर रचित नन्निचोड कवि की कृति भी समादरणीय है। नन्निचोड ने अपने काव्य को अष्टादश वर्णनो से परिपूर्ण, दश प्राणो से सप्राण, नवरसभावभरित, षट्त्रिंशत् अलकार-अलकृत रमणीय 'दिव्यकथा' 'प्रबन्ध' 'काव्य' 'नानारुचिरवस्तुविस्तरित उत्तम काव्यरत्न' तथा 'कथा' भी कहा है। काव्यो को कथा कहने की प्रवृत्ति हिन्दी एवं अपभ्रंश मे भी देखी जा सकती है। तुलसी ने मानस को तथा विद्यापति ने 'कीर्तिलता' को 'कथा' कहा है।

कविवर नन्निचोड के समय के विषय मे विद्वानों मे मतैक्य नही है। श्रीपाद लक्ष्मीपति शास्त्री के अनुसार तेरहवी शताब्दी का चौथा चरण एवं चौदहवी सदी का प्रथम चरण इस महाकवि का जीवनकाल है। कुमार-सभव महाकाव्य द्वादश आश्वासो मे विभक्त है। पूरी रचना 2005 छन्दो मे समाप्त हुई है। यह काव्य कवि के धर्मगुरु तथा कालामुख शैव-सप्रदाय के आचार्य मल्लिकार्जुन को भक्तिपूर्वक समर्पित किया गया। मगलाचरण के रूप मे कवि ने शिवभक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप शिव की वन्दना प्रधान रूप से तथा विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, कामदेव, हैमवती एवं भारती की वन्दना गौण रूप से की है।

इस महाकाव्य के आधारग्रन्थ कालिदास एवं उद्भट के कुमारसंभव हैं। गणेश जी की उत्पत्ति का आख्यान शैवागमों से गृहीत माना जाता है। सस्कृत के विभिन्न ग्रन्थो से गृहीत छन्दों के भावों को कवि ने प्रसगवश कई स्थानो पर निक्षिप्त किया है, जिससे कवि के वैदुष्य का परिचय हमे मिलता है। इसके अतिरिक्त दर्शन, आगम, नृत्य, अभिनय, धर्मशास्त्र आदि से सबधित बहुज्ञता की भी विवृति इसमे हुई है। कवि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि चौंसठ कलाओं में पारगत कवि ही उत्कृष्ट काव्य की रचना मे समर्थ होता है।

इस 'कुमारसंभव' के कवित्व-सौन्दर्य के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित अवतरण दृष्टव्य है—"वसन्त के समागम से सहकारवृक्षरूपी लतागी पुष्पो के मन्दहास से- भौंरों के मंजुगान से शुकसमुदाय की मीठी बातो से कोंपलो

की रागलीला से, कोयल की मधुर ध्वनि से, मयूररूपी केशभार से तथा झडते पत्तो की खिमकती मेखला मे अत्यन्त मनोहर लगी ।[1]"

पांडुरंगमाहात्म्य

तेलुगु साहित्य के क्षेत्रमहिमा-प्रनिपादक महाकाव्यो मे कविता-वैभव की दृष्टि से इमका प्रथम स्थान है। तेलुगु के पच महाकाव्यों के अन्तर्गत इसकी गणना की जाती है। क्षेत्रमहिमा सबधी ग्रन्थो मे साधारणतया धार्मिक अशो का बाहुल्य होता है और निम्न कोटि की काव्य-प्रतिभा दिखाई पडती है। साहित्यिक मूल्य बहुत कम और धार्मिक महत्त्व अधिक होता है। किन्तु इस महाकाव्य की प्रतिष्ठा साहित्यिक दृष्टि से ही बनी हुई है। महाकाव्य-रचना की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर ही इसका प्रणयन किया गया था। पौराणिक तत्वो एव पुराणो की रचना-विधि का प्रभाव इस पर होने पर भी इसे पुराण नही कहा जा सकता। "अभिनव-प्रबन्ध-निर्माण-कौतूहलायत्तचित्त" से इसकी रचना हुई और कवि के शब्दों मे यह 'परमभागवतचरित्र' है।[2] आलकारिक परिनिष्ठत भाषा-शैली, प्रसगानुसार सयोजित सुन्दर वर्णन, आश्वासबद्धता, सजीव रूप मे कथाकथन तथा सुन्दर पात्रकल्पना के आधार पर इसको महा-काव्य मान सकते है।

इस काव्य के रचयिता तेनालि रामकृष्ण हैं, जिनका समय सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना विरूरि वेदाद्रि मन्त्री की अभ्यर्थना से करके उसी मन्त्री को समर्पित किया। इस काव्य मे रामकृष्ण कवि को 'कविजन-मद्दकारावली-वसंतोत्सव-सूक्तिनिधि' एवं शारदा का साकार रूप माना गया है।[3] आश्रयदाता ने कवि को कर्पूरताबूल प्रदान करके अभ्यर्थना की थी कि वे काव्य-रचना करे। उस ताबूल मे वाग्देवी की अधरकान्ति के समान लाल सुपारी के कण, शारदा के कपोलों के सदृश कोमल स्वच्छ पान तथा वाणी के शब्दो की भाति सुगन्धित कर्पूर के टुकडे थे।[4] इस काव्य को पाच आश्वासो मे विभक्त किया गया। पूरी रचना 1301 छन्दो मे समाप्त हुई है। काव्यादि मे निबद्ध मगलाचरण में श्रीकृष्ण, श्रीदेवी, ब्रह्मा, शारदा, शकर, पार्वती, विष्वक्सेन, गरुड़ तथा शेषनाग की वन्दना के साथ

---

1 कुमारसभव, 4—102

2. पांडुरगमहात्म्य, 1—18,19

3. वही, 1—22, 27

4. वही, 1—29

आश्रयदाता के प्रति आशीर्वाद भी है। व्यास, वाल्मीकि, नन्नयभट्ट आदि सुकविजनों की वन्दना, कुकवि-निंदा, वैष्णवजनों की वदना तथा गुरुवन्दना की गयी है। कृतिपति का वर्णन एव उनका वंशवर्णन भी किये गये है।

'पांडुरंगमाहात्म्य' की कथा के वक्ता-श्रोता है शिव-कार्तिकेय, शिव-नारद एव शिव-पार्वती। इसमे कवि ने पुंडरीक मुनि का आख्यान, निगम शर्मा की कथा, राधा का वृत्तान्त, सुशीला का आख्यान आदि भिन्न-भिन्न कथाओ में एकसूत्रता का संपादन करके, सब के माध्यम से पांडुरंग भगवान और पुंडरीक क्षेत्रमहिमा का प्रतिपादन किया है। प्रतिपाद्य विषय भक्ति होने के कारण इस प्रबन्ध का मुख्य रस भक्ति है। निगम शर्मा तथा सुशीला के प्रसंग बहुत ही आकर्षक बन पड़े है। ये चरित्र कवि के पात्र-कल्पना-कौशल के उदाहरण है। परम्परा इस कवि की प्रशंसा 'शब्द-विन्यास' के आधार पर करती आयी है। चमत्कारोत्पादक अर्थों की व्यंजना की दृष्टि से कवि ने शब्द-प्रयोग किया है। कवि की वैष्णव-धर्म-भावना इस काव्य मे मुखरित हुई है। वक्ता-श्रोता के रूप मे शिव-पार्वती की योजना, शिव के द्वारा विष्णु का ध्यान वर्णित करना और मंगलाचरण मे शिव-पार्वती की वन्दना आदि कवि के समन्वयवादी दृष्टि-कोण को प्रकट करते है। इस महाकाव्य मे काशीनगर, मध्याह्न, राधा का नख-शिख, उद्यान आदि सुन्दर वर्णनो की योजना है।

इस महाकाव्य के कवित्व-वैभव को समझने के लिए नमूने के तौर पर एक पद्य का भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है— हे गुणभद्रा तुंगभद्रा नदी ! रत्नाकर ऊपर उठे हुए ऊँचे तरंगरूपी हस्तो से यदि तुम्हारा स्पर्श करके सुख पायेगा तो गंगा से मिलने की इच्छा नही करेगा, यमुना से आनंद-भोग नही करेगा और कावेरी को अपनी रानी के रूप में स्वीकार नही करेगा।[1]"

निर्वचनोत्तर रामायण

तेलुगु साहित्य में रामकथा के आधार पर विरचित कई महाकाव्य उपलब्ध होते है। लक्षणग्रन्थो मे प्राप्त कतिपय छंदो के आधार पर मान सकते है कि कुछ बहुमूल्य रामकथात्मक महाकाव्य काल के गर्भ मे विलीन हो गये हैं। उपलब्ध महाकाव्यों में तिक्कनामात्यकृत 'निर्वचनोत्तर रामायण' का महत्त्व कई दृष्टियो से है। उस समय मे प्रचलित गद्यपद्यात्मक मिश्रित शैली के अपवाद-स्वरूप केवल छन्दात्मक (गद्यरहित) रूप में इसकी रचना की गयी है। कवि ने स्पष्ट शब्दो मे इसको महाकाव्य स्वीकार किया है।

---

1. पांडुरंगमाहात्म्य, 1—139

डॉ रामकोटि शास्त्री का मत है कि कवि के द्वारा प्रयुक्त, यह महाकाव्य शब्द किसी निर्दिष्ट अर्थ का बोधक नही है। 'महा' शब्दांश इस काव्य की विस्तृति से संबंधित प्रतीत होता है। इस आलोचक का मत है कि यह कृति दो लघुकाव्यो का सग्रथन है।[1] ठीक यही मत आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'साकेत' के सन्दर्भ मे व्यक्त किया है।[2]

तिक्कनामात्य का समय ईसा की तेरहवी शताब्दी माना जाता है और यही इस महाकाव्य का भी रचनाकाल है। श्री मधुनापतुल सत्यनारायण शास्त्री के अनुसार यह महाकाव्य है। वाल्मीकि रमायण के उत्तरकाण्ड की कथा को आधार बनाकर स्वतत्र ढग से कवि ने इसको सुखान्त बनाया, जबकि आधार-ग्रन्थो मे यह विषादान्त रूप मे है। सग्रह-त्याग की प्रवृत्ति से इतिवृत्त को काव्योचित नवीन रूप प्रदान किया गया है।[3] इस महाकाव्य की रचना कवि के सखा तथा आश्रयदाता नरेश मनुमसिद्धि की अभ्यर्थना से की गयी। कवि और आश्रयदाता का सबध निकटतम स्नेहपूर्ण सबध था, क्योकि मनुमसिद्धि नरेश तिक्कना को मामा कहकर सबोधित करते थे। जब मनुमसिद्धि कालान्तर मे, शत्रुओ के कारण राज्यभ्रष्ट हुआ तो काकतीय नरेश गणपति देव की सहायता से तिक्कना ने फिर उनको राज्य दिलाया था। हिन्दी साहित्य मे केशव-दास के सबध मे प्रसिद्ध है कि उन्होने अपनी कवित्व-चातुरी से इन्द्रजीत सिंह पर अकबर के एक करोड रुपये का जुर्माना माफ करा दिया था।

'निर्वचनोत्तर रामायण' मे दस आश्वास है। पूरी रचना 1291 छन्दो मे समाप्त हुई है। तेलुगु के आदि कवि नन्नय की भांति इस कवि ने मगलाचरण के अन्तर्गत संस्कृत श्लोक की योजना की है। इसमे आश्रयदाता के प्रति आशीर्वाद किया गया है। कवि ने कुकविनिन्दा की है, अपना परिचय दिया और काव्य-रचना विषयक मान्यताओ को प्रकट किया है। आश्रयदाता का वशवर्णन भी किया गया है।

अपनी काव्यप्रतिभा और साहित्य-विषयक मान्यताओ के सम्बन्ध मे तिक्कनामात्य के कथन का साराश इस प्रकार है। वे अमल एव उदात्त मनीषा से युक्त हैं, उभय काव्यों (सस्कृत एव तेलुगु) की प्रौढता के अनुरूप रचनाशिल्प मे पारंगत तथा कलाविद् हैं। सौरभ का प्रसार करनेवाले गन्धवाह की भाँति कवि को आह्लादक शब्दो का विधान करना चाहिए। अनुपयुक्त शब्दो के

1. तिक्कन काव्यशिल्पमु, पृ. 19
2. आधुनिक साहित्य, भूमिका, पृ. 19
3. तेलुगु लो रामायणालु, पृ. 32

प्रयोग से रसभंग करते हुए, पुराने शब्दों के व्यवहार मे अपनी निपुणता दिखाकर किसी भी प्रकार से सहृदयो को सन्तुष्ट करने मे अक्षम कवि परिहास-पात्र बनते है। तेलुगु मे कविता करने के इच्छुक कवि को अर्थोपयुक्त शब्द-विन्यास मे छन्दशास्त्रानुमोदित यतिनियम एव प्रासनियम का पालन करना चाहिए। किसी भी कवि को अपनी कृति बहुत सुन्दर लगती है। अत. सरस कवियो को जब तक रिझा नही सकता, तब तक परिणत कवीश्वर अपने काव्यगुणो मे विश्वास नहीं करता। मै तेलुगु भाषा की प्रकृति के विरुद्ध संस्कृत को अपने काव्य में स्थान नही दूँगा। सुललित एव सुन्दर पद्यों मे कथा का पूर्वापर क्रम सुगठित रूप मे, छोटी छोटी कड़ियों को जोड़ने से बनी हार की भाँति होना चाहिए।[1]

कवि ने पूर्वरामायण की कथा को सक्षेप मे पहले आश्वास मे वर्णित किया। इसके उपरान्त जनक और महर्षियों द्वारा राजसभा मे राम का अभिनन्दन किया गया है। राम की इच्छा को पूर्ण करने के लिए अगस्त्य जी ने विस्तारपूर्वक रावण की वंशपरम्परा, जन्म, कर्म आदि को सुनाया। राम के राजतिलक मे आगत ऋषियों, सुग्रीव, विभीषणादि को विदा करना बाद का प्रसग है। सीता-राम का संयोग शृंगार, सीता का गर्भवती होना, सीता के द्वारा गगातट पर विहार करने की इच्छा प्रकट करना, लोकनिन्दा, सीता-परित्याग राम की यज्ञशाला में कुश-लव का रामायण-गान, वाल्मीकि के प्रयास से सीता-राम का मिलन, सीता का भू-प्रवेश, राम का राज्यपालन—इन मुख्य घटनाओं की योजना इस महाकाव्य मे की गयी।

कथावस्तु को रोचक बनाने के लिए तिक्कनामात्य ने अयोध्यावर्णन, कैलासवर्णन, अन्धकारवर्णन, चन्द्रिकावर्णन, उद्यान विहारवर्णन, जलविहारवर्णन आदि को सयोजित किया है। इस कवि की प्रवृत्ति अतिशय अलकरण की नहीं है। कथानक के समुचित निर्वाह पर ही उनका ध्यान लगा था। इसलिए वस्तु एव वर्णन का अनुपात औचित्यपूर्ण है। श्रीराम, सीता, लक्ष्मण आदि के चरित्रो को उदात्त और गम्भीर रूप मे चित्रित किया गया है। सयोग शृंगार, वीर एवं करुण रसों का उचित परिपाक यथास्थान किया गया है। तिक्कनामात्य की शैली सवादात्मक एवं नाटकीय शैली है। प्रस्तुत महाकाव्य मे पात्रो के वचन, उनके स्वभाव और प्रसग के उपयुक्त हैं।

---

1. निर्वचनोत्तर रामायण, 1–11

तिक्कनामात्य की कविता के उदाहरण-स्वरूप एक छन्द का भाव द्रष्टव्य है।

"सुन्दर बगुलों की मालाओं की भाँति दाँतों की शोभा से, मेघगर्जन के समान बृंहितनाद से, बौछार के सदृश दान-जल से काली मेघमालाओं की तरह चलायमान हाथी-समुदाय अयोध्यानगर मे शोभित होते है।"[1]

रामाभ्युदय

रामभद्र कवि द्वारा विरचित यह महाकाव्य युगानुरूप वर्णनात्मक शास्त्रीय शैली और अलकार-बहुल प्रौढ भाषा-प्रयोग का अच्छा उदाहरण है। स्वर्गीय चेल्लपिल्ल वेंकटशास्त्री के अनुसार—"इस काव्य को उतना प्रचार नही मिला, जितना वसुचरित्रकार की कविता को मिला। रामभद्र की कविता को इस आधार पर कम सरस नही समझना चाहिए। यह कविता बहुत ही सरस है। ......बहुत से कवियो के द्वारा रामायण के इतिवृत्त को स्वीकार किया जाना उसकी ऐहिक-पारलौकिक कल्याणदायकता के कारण ही नही, बल्कि उस कथा में सभी रसों के परिपाक के लिए उपयुक्त विस्तृत अवकाश के हेतु भी है। इस महाकवि ने उन सब रसों की सुन्दर व्यजना की है।"[2] श्री मधुनापतुल सत्यनारायण शास्त्री की स्वीकारोक्ति है—"रामाभ्युदय की कविता प्रशसनीय प्रबन्धकाव्य के अनुरूप प्रौढता और माधुर्य से युक्त है। लोकज्ञता को व्यक्त करनेवाले वर्णनो की योजना में यह कवि बड़ा ही समर्थ है। महाप्रबन्ध के रूप में अवतरित रामायण ही रामाभ्युदय है।"[3]

'रामाभ्युदय' का रचनाकाल लगभग 1540 माना जाता है। यह काव्य आठ आश्वासो में विभाजित है। पूरी रचना 1850 छन्दो मे समाप्त हुई है। समसामयिक महाकाव्यो की तरह इसमे चम्पू शैली एवं छन्दो वैविध्य दृष्टिगत होते है। कवि ने आश्वासान्त पुष्पिकाओ मे इसको 'महाप्रबन्ध' कहा है और 'महाप्रबन्ध' 'महाकाव्य' का ही पर्यायवाची है। इसमे वाल्मीकि रामायण के षट् काण्डो मे वर्णित कथा को ग्रहण किया गया है। उत्तरकाण्ड की कथा को छोड़ दिया गया है।

इस महाकाव्य मे कविवर रामभद्र ने वर्णनो एवं प्रसगो की योजना मे अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया है। ऋष्यश्रृंग का वृत्तान्त, श्रीराम-जन्म एव

---

1. निर्वचनोत्तर रामायण, 1-53
2. सारस्वत व्यासमुलु (प्रथम भाग), पृ. 261
3. तेलुगु लो रामायणालु पृ. 44

सीता-राम का सयोग श्रृगार आदि प्रसगो का निर्वाह रमणीय ढग से किया गया है। इस महाकाव्य के कवित्व-सौन्दर्य के उदाहरणस्वरूप एक छन्द का भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

"अशोकवन मे राक्षस-स्त्रियों के बीच मे दुखी सीतादेवी उलूक-महिलाओ के बीच आधी रात में फँस गयी चकवी की भाँति, जरठ बिडालिका-समुदाय मे शुकी की तरह, मदमस्त मयूरमण्डल के मध्य सर्पकन्या के समान तथा कपटी शिकारी भीलनियो के बीच हिरणी के सदृश थी।"[1]

1. रामाभ्युदय 6—130

चतुर्थ अध्याय

वस्तुयोजना

काव्यग्रन्थों मे वस्तु कवियो की वैयक्तिक रुचि, प्रवृत्ति, दृष्टिकोण और लक्ष्य के अनुरूप इतिहास, पुराण आदि पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित वाड्मय से अथवा साधारण जनता मे व्यवहृत लोककथाओ से गृहीत होकर कवि की प्रतिभा के अनुसार कतिपय काल्पनिक प्रसंगों, रसात्मक वर्णनो तथा संवादों से विभूषित होकर विविध रूपो मे सयोजित होती है। एक ही इतिवृत्त विभिन्न कवियो के द्वारा स्वीकृत होने पर भी, उसकी योजना एक ही प्रकार की नही होती है। वास्तव मे जितने कवि है, उतने प्रकारो से वस्तु विन्यस्त होती है। एक ही कवि की विविध रचनाओ मे वस्तुयोजना सम्बन्धी वैविध्य दृष्टिगत हो सकता है, क्योकि श्रेष्ठ कवि निरन्तर प्रयोगशील होता है। प्रथम श्रेणी का कलाकार अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता है। वह दूसरो का अनुकरण नही करता, अपनी ही पूर्ववर्ती रचनाओ का अनुकरण परवर्त्ती रचनाओं मे नही करता। इस प्रकार निरन्तर नवीनता का अन्वेषण एव प्रयोगशीलता मे साहित्य का सौन्दर्य अवस्थित है।

तेलुगु साहित्य मे नन्निचोड नामक कवि ने अपने 'कुमारसभव' मे 'वस्तु-कविता' शब्द का प्रयोग कई बार किया है। उक्त कवि ने वाल्मीकि के लिए 'वस्तुकाव्याब्ज-रवि' विशेषण प्रयुक्त किया। भारवि को वस्तुकविता मे जनाराधित कहकर भारवि शब्द के श्लेपार्थ के बल पर सूर्य से तुलना की और उद्भट के काव्य को गूढवस्तुमय काव्य बताया।[1] अपनी कविता को वस्तु-कविता स्वीकार किया।[2] साथ ही वेदव्यास, कालिदास तथा बाणभट्ट की प्रशंसा की। एक और स्थान पर पार्वती के कानो की तुलना सुकवि के काव्य से करते हुए कान तथा काव्य दोनो पक्षो मे 'सकल-वस्तु-सपूर्णालकार' शब्द का प्रयोग सार्थक रीति से किया।[3] इतना ही नही, कथा से युक्त, वर्णनो से अलकृत, सूक्तियो, रसपरिपाक और उत्कृष्ट भावो से परिपूर्ण कविता को वस्तुकविता का अभिधान दिया है।[4] इसमे यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल कथावस्तु की योजना ही काव्य मे अपेक्षित नही है, प्रत्युत् उस कथा का समुचित ढग से रसात्मक रीति से वर्णनो एव अलकारो से विभूषित करके विन्यस्त करने में कवि तथा काव्य की सफलता है।

साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थों मे वस्तु का अभिप्राय कथावस्तु है। श्री वेद

---

1. कुमारसंभव, 1–17, 20, 21
2. वही, 1–49
3. वही, 3–67
4. वही, 1–36

वेंकटराय शास्त्री का मत है कि महाकाव्य कथावस्तु की प्रधानता से युक्त काव्यरूप है और ऐसी वस्तु का आश्रय ग्रहण करके जो कविता प्रवर्तित होती है, वही वस्तुकविता है।[1] श्री रामलिंगेश्वर राव के अनुसार भी इतिवृत्त-प्रधान या कथावस्तु-प्रधान कविता को वस्तुकविता मान सकते है। इतिवृत्त के प्राधान्य की रक्षा करते हुए अलकारो, दशविध प्राणो (काव्यगुणो), नवरसो एव अष्टादश वर्णनो का प्रयोग नन्निचोड के काव्य मे किया गया है। अर्थात् अलकार आदि उपादान कथावस्तु को रमणीय रूप मे प्रदर्शित करने मे सहायक हुए है।[2] इस प्रकार नन्निचोड ने वस्तुयोजना के महत्त्व का प्रतिपादन विविध प्रकारो से करके अपने सिद्धान्त के उदाहरण-स्वरूप 'कुमारसभव' का प्रणयन किया है।

परम्परागत स्रोतो से कथा के सूत्रो का चयन करते हुए भी उन सूत्रो के साथ मौलिक उद्भावनाओं का सामजस्य स्थापित करने से कोई भी काव्य स्वतन्त्र बन सकता है। कविवर नन्निचोड ने इस तथ्य की ओर भी सकेत किया है। कवि के इस आशय की प्रतिपादक शब्दावली इस प्रकार है—"अस्मदीयानून प्रतिभाणवोदीर्ण रुचिर वस्तुविस्तारितोत्तम काव्यरत्न-विभूषणबु[3]" अर्थात् कवि की श्रेष्ठ प्रतिभारूपी समुद्र मे उदित सुन्दर वस्तु से विस्तृत उत्तम काव्यरत्न यह 'कुमारसभव' है। श्री वेद वेंकटरायशास्त्री के अनुसार कवि के उपर्युक्त कथन से ध्वनित होता है कि इस काव्य मे बहुत कुछ कवि की मौलिक उद्भावना है और साथ ही वस्तु के कारण काव्य के विस्तारित होने का प्रतिपादन भी है। आचार्य कुन्तक ने केवल कथा के आश्रय की अपेक्षा सरस सन्दर्भो की योजना पर बल देते हुए कहा है—

"निरन्तर रसोद्गार गर्भ सन्दर्भ निर्भराः।
गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिता ॥"[4]

कवियो तथा काव्यशास्त्रियो ने वस्तु के तीन प्रकार किये हैं, जैसे प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र। पिनवीरभद्र नामक कवि के मत मे—"प्रख्यात, मिश्रबन्ध तथा उत्पाद्य के भेद से तीन प्रकार की कथावस्तु होती है। प्रख्यात इतिवृत्त को ग्रहण करके काव्य-रचना करने से कवि तथा श्रोता दोनो को यश मिलता है।[5]" हिन्दी तथा तेलुगु के अधिकाश कवियो ने उत्पाद्य कथओ की अपेक्षा

---

1. नन्निचोडुनि कवित्वमु, पृ. 191
2. नन्निचोडुनि वस्तुकविता, पृ. 11
3. कुमारसभव, 1–59
4. वक्रोक्तिजीवित, 4–11
5. शृगार शाकुन्तलमु, 1–27

प्रख्यात इतिवृत्त का ही अवलम्ब लेकर अपनी प्रतिभा को प्रकट किया है। राम-राजभूषण का कथन है कि केवल काल्पनिक कथाएँ कृत्रिम रत्न हैं और आद्य सत्कथाएँ समुद्र के गर्भ से तत्काल निकाले हुए रत्न है। सत्कवि की कल्पना से विभूषित प्राचीन इतिवृत्त सान पर चढाकर परिष्कृत बनाये गये रत्न है। इस कथन मे अधिकाश मध्यकालीन साहित्यिको की मान्यता का प्रतिफलन है।

महाकाव्य का लक्षण-निरुपण करनेवाले सस्कृत के आचार्यो ने वस्तुसगठन के विषय मे भी कुछ निर्देश दिये है। भामह, दडी तथा विश्वनाथ कविराज ने पंचसधियों की योजना को आवश्यक मानकर क्रमबद्ध रूप से इतिवृत्त-निर्वहण का महत्व प्रतिपादित किया। भोज के 'शृगारप्रकाश' मे निरुपित प्रबन्धगुणो एव प्रबधालकारो मे कुछ वस्तु-सविधान से सबधित है। असक्षिप्त ग्रन्थत्व, अनतिविस्तीर्णसर्गत्व तथा श्लिष्टसन्धित्व ऐसे ही गुण है। डॉ राघवन ने इन गुणो की व्याख्या की है। उनके अनुसार महाकाव्य मे महान इतिवृत्त की योजना के कारण उसका आकार यथेष्ट विस्तृत होना चाहिए। ऐसा काव्य लघुकाव्य कभी नही हो सकता। यह गुण भोज के शब्दो में असंक्षिप्त-ग्रन्थत्व कहा गया है। अनति विस्तीर्ण-सर्गत्व के विषय मे इस विद्वान ने लिखा है कि महाकाव्य को बहुत विस्तृत भी नही होना चाहिए, क्योंकि उस परिस्थिति मे उसे कोई नही पढता और इसलिए सर्ग बहुत लबे न हो। जिस प्रकार विभिन्न शब्द परस्पर मिलकर वाक्य का निर्माण करते है, उसी प्रकार काव्य के सर्ग परस्पर सबधित होकर काव्य के समग्र सौन्दर्य के पोषक होने चाहिए। इस गुण को भोज ने श्लिष्टसधित्व कहा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रबन्धकाव्य के भीतर इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार-वर्णन, भाव-व्यजना और सवाद होते हैं। इन सब अवयवो के उचित समावेश के कारण ही रामचरितमानस एक सफल प्रबन्धकाव्य है। दूसरी बात यह कि इतिवृत्त की शृंखला भी कही टूटती नही है। इसके अलावा मानस मे कथा के मार्मिक स्थलो की पहचान भी है।[1] जायसी के सन्दर्भ में शुक्ल जी ने अपने मत की व्याख्या प्रस्तुत की जैसे—"प्रबन्धकाव्य मे बडी भारी बात है सबधनिर्वाह'''संबधनिर्वाह पर विचार करते समय पहले तो यह देखना चाहिए कि प्रासंगिक कथाओ का जोड आधिकारिक वस्तु के साथ अच्छी तरह मिला हुआ है या नही, अर्थात् उनका आधिकारिक वस्तु के

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 131

साथ ऐसा संबंध है या नहीं, जिससे उसकी गति मे कुछ सहायता पहुँचती हो। जो वृत्तान्त इस प्रकार संबद्ध न होंगे, वे ऊपर से व्यर्थ ठूसे हुए मालुम होंगे।"[1]

आधिकारिक वस्तु की योजना के विषय मे शुक्ल जी ने यह प्रश्न उठाया है कि प्रबन्धकाव्य मे क्या जीवन-चरित के समान उन सब बातो का विवरण होना चाहिए जो नायक के जीवन मे हुई है। इस प्रश्न के उत्तर मे उन्होंने स्वयं कहा कि संस्कृत के प्रबन्धकाव्यों को देखने मे पता चलता है कि कुछ मे तो इस प्रकार का विवरण होता है और कुछ मे नही। कुछ की दृष्टि तो व्यक्ति पर होती है और कुछ की किसी प्रधान घटना पर।[2] शुक्ल जी यह भी मानते थे कि प्रबन्ध के वस्तु-विन्यास की समीक्षा बहुत कुछ दृश्यकाव्य के वस्तुविन्यास के समान ही होनी चाहिए। घटनाप्रधान प्रबन्धकाव्य मे उन्ही वृत्तान्तो का सन्निवेश अपेक्षित होता है जो साध्य कार्य के साधनमार्ग में पडते है, अर्थात् जिनका उस कार्य से सम्बन्ध होता है। शुक्ल जी का एक और निर्देश है कि सम्बन्ध-निर्वाह के अन्तर्गत ही गति के विराम का भी विचार कर लेना चाहिए।[3]

जैसे महाकाव्यो के वर्गीकरण के अध्याय मे कहा गया है, तेलुगु एवं हिन्दी महाकाव्यों की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लोककथात्मक स्रोतो से ग्रहण की गयी। शुद्ध काल्पनिक कथानक भी एक-दो काव्यो मे दृष्टिगत होता है। परन्तु साधारणतया कवियो की प्रवृत्ति प्रख्यात इतिवृत्त को संयोजित करने की रही है। पौराणिक इतिवृत्त के पुन. रामायण-सम्बन्धी, महाभारत-संबधी, हरिवंशपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि मे सम्बन्धित—इस प्रकार अवान्तर भेद किये जा सकते हैं। ऐतिहासिक वस्तु के अन्तर्गत पृथ्वीराज, हम्मीर, राजसिंह, कृष्णदेवराय आदि मे सम्बन्धित वस्तु गणनीय है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो पर लोककथा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। शुद्ध काल्पनिक कोटि का श्रेष्ठ उदाहरण 'कलापूर्णोदय' का इतिवृत्त है।

'रामचरितमानस' और 'रामचन्द्रिका' रामायण की कथा के आधार पर विरचित हुए है। मानस मे वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा को बिल्कुल छोड दिया गया। तेलुगु के 'रामाभ्युदय' मे भी षट्काण्डपर्यन्त कथा को लेकर काव्य की परिसमाप्ति राम के राज्याभिषेक से की गयी है।

---

1. जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका पृ 70
2. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 70—71
3. वही, पृ. 73

'रामचन्द्रिका' और 'रगनाथरामायण' मे उत्तरकाण्ड की कथा भी निबद्ध हुई है। 'निर्वचनोत्तर रामायण' तथा पापराजकृत 'उत्तररामायण' मे केवल उत्तरकाण्ड की कथावस्तु और आदि मे बहुत संक्षेप मे पूर्वरामायण की कथा वर्णित है। इसलिए प्रधानता उत्तररामकथा की है। इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यो मे सयोजित रामकथा के तीन प्रकार हैं।

तुलसीदास ने 'नानापुराण निगमागम सम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोपि' कहकर काव्य के आरम्भ मे ही अपनी दृष्टि का परिचय दिया है। प. रामनरेश त्रिपाठी और बाबू श्यामसुन्दरदास, कवि के इस मधुसचय पर अत्यन्त मुग्ध हुए है। अध्यात्मरामायण को तो मानस मे प्राय आधार माना गया है। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण मे मुख्य अन्तर यही है कि प्रथम मे राम का दिव्यत्व व्यग्य है तो द्वितीय मे वाच्य बन गया है। अपने भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप तुलसी ने इस द्वितीय पद्धति का अनुगमन किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के शब्दो मे "रामचरितमानस कथा कौशल की दृष्टि से इतना पुष्ट है कि उसका प्रचार और प्रसार अपने मूलाधार ग्रन्थो से भी कई गुना अधिक है। मानस की कथा तो तुलसी ने जिस रूप मे पल्लवित किया है, उसका रूप ही कुछ निराला है। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा अन्य सस्कृत ग्रन्थो से कथा का स्रोत ग्रहण करके भी तुलसी ने उसे अपनी उद्भावना शक्ति से एकदम नवीन कलेवर दे दिया है।"[1]

केशव की 'रामचन्द्रिका' में कथा के सूत्र वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, उत्तररामचरित, अध्यात्मरामायण आदि से गृहीत हुए है। प्राय कथा के स्रोतों के समान होते हुए भी केशव की वस्तुयोजना तुलसी की वस्तु-योजना से भिन्न बन गयी है। जहाँ तुलसी मे सागोपाग रूप मे कथा उपस्थित करने का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है, वहाँ केशव मे सक्षेप एव क्षिप्रता की प्रवृत्ति प्रमुख है।

तेलुगु साहित्य मे रगनाथ रामायणकार ने कतिपय स्थलों पर अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। विवाह आदि सामाजिक रीति-रिवाजो की योजना मे अध्यात्म रामायण, वाल्मीकि रामायण आदि का मात्र अनुवाद प्रस्तुत न करके अपने समय मे प्रचलित लोकाचारो का वर्णन सरस ढग से किया है। अपने भक्तिपरक दृष्टिकोण के अनुरूप राम के अवतारी पुरुष होने का उद्घाटन करनेवाले प्रसगों की योजना इस कवि ने की।

1. तुलसीदास : एक विश्लेषण, पृ. 36

श्रीकृष्णदेवराय के युग में प्रणीत 'रामाभ्युदय' वस्तुयोजना की दृष्टि से रंगनाथरामायण से पृथक कोटि का महाकाव्य है। रंगनाथरामायण का लक्ष्य यथासंभव रामचरित सम्बन्धी अधिक से अधिक प्रसंगों की योजना करना रहा है तो 'रामाभ्युदय' के कवि का लक्ष्य मुख्य प्रसंगों का चयन करके रामचरित सम्बन्धी महाकाव्य का प्रणयन अलंकृत शैली में करना था। प्रथम में सर्व-साधारण का अनुरंजन, लोकतत्व एवं गीतशैली का प्रभाव है तो दूसरे में प्रौढ़ पाण्डित्य की अभिव्यक्ति प्रमुख है।

तेलुगु में वाल्मीकि रामायण में प्राप्त उत्तरकाण्ड की कथा के आधार पर दो प्रसिद्ध महाकाव्य रचे गये। इनमें से कालक्रम की दृष्टि से प्रथम तेरहवीं शताब्दी का तिक्कनामात्य प्रणीत 'निर्वचनोत्तर रामायण' है और द्वितीय अठारहवीं शताब्दी का पापराज-विरचित 'उत्तररामायण' है। इन दोनों में सन्दर्भ जोड़ने के लिए पूर्वरामायण की कथा भी संक्षेप में कही गयी है। तिक्कनामात्य की अपेक्षा पापराज अतिशय वर्णन-प्रिय कवि है और तिक्कनामात्य अल्पाक्षरों में अनल्पार्थ की व्यंजना के लिए विख्यात रहे हैं। परवर्ती होने के कारण पापराज को तिक्कना के काव्य का अध्ययन करके उस कथा में अतिरिक्त अंश जोड़ने-पल्लवित करने की सुविधा मिली।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में राम के महाप्रयाण की योजना के कारण कथा विषादान्त बन गयी है। किन्तु तिक्कनामात्य की कृति में श्रीराम के द्वारा कुश-लव को शिक्षा-दीक्षा दिलाकर लोकरंजक रीति से राज्यपालन करने तक की कथावस्तु है। इस प्रकार तिक्कनामात्य ने काव्य-नायक के निर्याण की सूचना नहीं देकर अपने काव्य को सुखान्त बनाया। सीता-राम का वनविहार, जलक्रीडा आदि के वर्णनों तथा कथारम्भ में अयोध्या-नगर के वर्णन में स्वकीय कल्पनाओं की समुचित योजना की है।

पापराजकृत उत्तररामायण में यथासम्भव उत्तरकाण्ड की समस्त कथा को अधिक पाठ समझे जानेवाले श्लोकों सहित अनूदित करने का प्रयास लक्षित होता है। बहुत अधिक वर्णनों से अपने काव्य को विभूषित करने की प्रवृत्ति समूचे काव्य में प्रबल रूप में दिखाई पड़ती है। काव्य की परिसमाप्ति में केवल रामनिर्याण ही वर्णित नहीं है, बल्कि वैकुण्ठ नगर का वैभव, भक्तों द्वारा पूजा, इन्दिरा और विष्णु के शृंगारपूर्ण अनुभाव, शिव द्वारा विष्णु की स्तुति, लक्ष्मी-विष्णु का प्रणय-कलह आदि का भी सुन्दर विधान है।[1]

---

1. उत्तररामायण, 8–234-238

उत्तररामकथा पर आधारित इन दोनो महाकाव्यो की तुलनात्मक विवेचना करते हुए गडियार वेंकटशेष शास्त्री जी ने निम्नोक्त सम्मति प्रकट की है—"काव्य का विस्तृत आकार जितना अच्छा है, उतना ही अच्छा काव्य के अन्तर्गत गुणो और औचित्य का विस्तार होना चाहिए। पापराजु की रचना मे काव्य तो बहुत विस्तृत हुआ, परन्तु गुण और औचित्य की वृद्धि नही हुई। इसके विपरीत तिक्कनामात्य की रचना मे गुण और औचित्य की मात्रा अधिक है, परन्तु काव्य का आकार विशाल नही है। पापराजु की रचना मे गम्भीर शब्दप्रयोगधारा का विलास है, किन्तु तिक्कनामात्य की भाति उचित भाव स्फोरक शब्दसधान का अभाव है। एक ही भाव को विविध विन्यासो से पापराजु प्रस्तुत कर सकते है, मगर तिक्कनामात्य की भाति विविध भावो को सक्षेप मे व्यग्य-मधुर रीति से अभिव्यक्त नही कर सकते।"[1]

महाभारत के आदिपर्व मे वर्णित उपरिचर वसु की कथा को लेकर 'वसुचरित्र', मार्कण्डेयपुराण की कथा के आधार पर 'मनुचरित्र', हरिवशपुराण से कथानक ग्रहण करके 'पारिजातापहरण' और 'प्रभावतीप्रद्युम्न' तथा शिव-पुराण की वस्तु लेकर 'कुमारसम्भव' रचे गये। ये सभी महाकाव्य साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी कथावस्तु यद्यपि प्रख्यात आधार ग्रन्थो से ग्रहण की गई है, तथापि कवियो की सधान-कुशलता के कारण बिलकुल नवीन रूप मे ढल गयी है। इन काव्यो को इसी आधार पर तेलुगु की स्वतन्त्र कृतियाँ मान सकते हैं। अष्टादश वर्णनो की योजना करते हुए रसात्मक दृष्टि के अनुकूल, मूलकथा मे परिवर्तन करके वस्तुविन्यास करने की प्रवृत्ति प्राय इन सभी काव्यो मे समान है।

पौराणिक इतिवृत्तो की अपेक्षा कवियों का ध्यान हिन्दी मे ऐतिहासिक वस्तु को लेकर काव्य-रचना करने पर विशेष रूप से केन्द्रित रहा है। आदिकाल के चन्दवरदाई से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के चन्द्रशेखर वाजपेयी तक हिन्दी मे ऐतिहासिक महाकाव्यो की अबाध परम्परा रही है। इन ऐति-हासिक महाकाव्यो मे इतिहास और कल्पना के सम्मिश्रण से कथावस्तु का निर्माण हुआ है। ऐतिहासिक काव्यो के विवेचन के सन्दर्भ मे यह नही भूलना चाहिए कि मूलतः ऐसे ग्रन्थों में इतिहासतत्व की अपेक्षा काव्यतत्व या कल्पना-तत्व का प्रबल होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त मध्यकाल तक की समयावधि में इतिहास की अवधारणा वर्तमान समय की अवधारणा से भिन्न

---

1 उत्तररामायण काव्यशिल्पम्, पृ 254 255

रही है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे—"वस्तुत इस देश मे इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ मे कभी नही लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। कुछ मे दैवी शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है।'' '' कर्मफल की अनिवार्यता मे, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति मे, और मनुष्य के अपूर्व शक्तिभण्डार होने मे विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यो को सदा काल्पनिक रग मे रगा है।"[1]

जहाँ तक हिन्दी और तेलुगु का सम्बन्ध है, कतिपय ऐतिहासिक महाकाव्यो के प्रणेताओ ने अपनी समसामयिक घटनाओ को काव्यात्मक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। काव्यो मे वर्णित नायको से निकट रूप से सम्बद्ध होने के कारण कवियो के लिये तत्कालीन घटनावली का ज्ञान सुलभ था। चन्दबरदायी पृथ्वीराज के, मान राणा राजसिंह के, गोरेलाल छत्रसाल के और सूदन सूरजमल के आश्रित राजकवि थे।

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों मे गृहीत इतिवृत्त मुख्यत: लोकगाथाओ पर आधारित है। उनमे ऐतिहासिक नाम और कुछ कुछ इतिहास सम्मत घटनाएँ भी मिल जाती है। इस कोटि का प्रतिनिधि महाकाव्य पद्मावत् में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वानो ने काल्पनिक तत्व के साथ इतिहास तत्व के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

महाकाव्यों मे स्वीकृत वस्तु के स्रोतों की समीक्षा के उपरान्त इतिवृत्त की संयोजन-पद्धति अब विचारणीय हैं। मध्यकाल के प्राय: सभी महाकाव्यो मे विस्तृत भूमिका-भाग मिलता है, जिसके अन्तर्गत मगलाचारण, पूर्वकवि-वदना, सज्जन-स्तुति, कवि का आत्म-परिचय, आश्रयदाता की प्रशंसा आदि अशो का समावेश है।

सस्कृत के काव्याचार्यो ने मगलाचरण के तीन भेद माने हैं, जैसे आशीर्वचन रूप, नमस्कार-रूप तथा वस्तुनिर्देश-रूप। रामचरितमानस के आरम्भ मे ही नहीं बल्कि प्रत्येक काण्ड के आदि में मगलाचरण प्राप्त होता है। मानस का प्रथम श्लोक नमस्क्रिया-रूप मंगलाचरण के लिए उदाहरण है। निम्नोक्त छन्द वस्तुनिर्देशात्मक मगलाचरण के लिए उदाहरण है—

"बन्दउं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 77 2. मानस-बालकाण्ड, 16

जहाँ पात्र द्वारा राम का जयजयकार कराया गया है, वहाँ आशीर्वादात्मक मगलाचरण माना जा सकता है। पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, छत्रप्रकाश, रामचन्द्रिका आदि मे नमस्क्रियात्मक मंगलाचरण मिलता है। पद्मावत मे भी मगलाचरण का विधान है, किन्तु वहाँ पर उसका रूप मानस, रासो आदि के मगलाचरण से भिन्न है। इस भिन्नता का कारण कवि की सूफी विचारधारा एवं फारसी की मसनबी काव्य-शैली है। तेलुगु के महाकाव्यो मे इष्टदेवता की वन्दना के रूप मे, आश्रयदाता के प्रति आशीर्वचन के रूप मे और काव्य-वस्तु के निर्देश के रूप मे मगलाचरण किया गया है। इस प्रकार काव्यशास्त्र मे निरूपित तथा कवि-परम्परा से अनुमोदित मगलाचरण की योजना आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यो मे की गई है।

तेलुगु के कतिपय महाकाव्यो मे विशेष रूप से कुछ प्रमुख अशो को निबद्ध करके उनके आधार पर वस्तु को विकसित किया गया है। पूर्वकालीन कवियो के द्वारा सयोजित इन अशो को किंचित् परिवर्तन के साथ अनन्तरकालीन कवियो ने ग्रहण किया है। इस तरह विविध अशो के नियोजन से सबधित एक प्रकार की परपरा बन गई है। श्री वज्झल चिनसीताराम शास्त्री ने 'शृगारनैषध', 'शृगारशाकुतल', 'स्वारोचिषमनुसम्भव' और 'वसुचरित्र' नामक चार प्रमुख महाकाव्यो मे समान रूप मे प्राप्त अंशो को तालिकाबद्ध रूप में दिखाया है।[1] अर्थात् शृगारनैषधकार श्रीनाथ से शृगारशाकुतल के कर्ता पिनवीरभद्र और इन दोनो से मनुचरित्रकार एवं वसुचरित्रकार पर्याप्त प्रभावित हैं :

रामचरितमानस, रामचन्द्रिका और पद्मावत मे विवाह, भोज, युद्ध, नायक-नायिका का विरह आदि प्रसग अवश्य मिलते हैं। तेलुगु महाकाव्य मे भी इन प्रसगो का विधान है, किन्तु भिन्न प्रदेशो की सास्कृतिक परिस्थितियो के अनुरूप इनमे साम्य के साथ विषमता भी दृष्टिगत होती है। विवाह के अवसर पर तेलुगु महाकाव्यो मे वर्णित मगलसूत्र-धारण, वर-वधू के द्वारा मोती या चावल एक दूसरे के सिर पर डालना, वर-वधू के बीच का पर्दा आदि अंशों का अभाव हिन्दी के महाकाव्यो मे है। इसी प्रकार तेलुगु महा-काव्यों मे स्त्रियो का व्यग्यमय गारियाँ गाना, जयमाल आदि प्रसग प्राय: नही मिलते।

पूर्वराग के प्रसग के रूप में परस्पर अवलोकन का अश 'मानस',

---

1 वसुचरित्रविमर्शनमु, पृ 11 15

'पद्मावत', वसुचरित्र', 'विजयविलास' आदि महाकाव्यो मे प्राप्त होता है। अपनी अभिलषित स्त्री से विवाह के हेतु नायक का सन्यासी, योगी या ब्रह्मचारी के रूप मे उपस्थित होने की कथानक-रूढि जायसी, नन्निचोड़ और चेमकूर वेंकटकवि के काव्यों मे संयोजित है। तेलुगु के कुछ प्रमुख महाकाव्यो मे विवाह या विजय-यात्रा के सिलसिले मे नगर के राजपन्थ से अवलोकन के लिए वहाँ की सुन्दरियो की उत्कंठा और इन विषय मे उनके परस्पर मधुर वार्तालाप का विधान है। 'वसुचरित्र' मे स्वरोचि के विवाह के संदर्भ मे, पारिजातापहरण' मे श्रीकृष्ण के स्वर्गगमन के प्रसग मे, और 'मानस' मे राम-विवाह के प्रसग मे यह अश प्राप्त होता है।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यो मे कथावस्तु को विकसित करने मे सहायक कतिपय अश समान है। साथ ही क्षेत्रीय संस्कृति की विशिष्टता के द्योतक भिन्न भिन्न अशो के सयोजन के कारण अन्तर भी प्राप्त होता है।

दोनों क्षेत्रो के महाकाव्यो में कथावस्तु की परिसमाप्ति प्राय फलश्रुति से की गयी है। तुलसी के काव्य की यह फलश्रुति है—'श्रीमद्-रामचरितमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये ससार पतग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवा ।[1]" केशव ने यह फलश्रुति निबद्ध की है कि जो कोई रामचन्द्रिका को सुनेगा, पढेगा वह इस लोक के भोग भोगकर अन्त मे मोक्ष प्राप्त करेगा।[2]

हिन्दी के कुछ ऐतिहासिक महाकाव्यों मे कथावस्तु की परिसमाप्ति कुछ आकस्मिक ढग से की गयी प्रतीत होती है। मान के 'राजविलास' की समाप्ति चित्तौर पर राजसिह के पुत्र जयसिह के अधिकार से की गयी और तदनन्तर घटनावली की योजना नही है। डॉ. उदयनारायण तिवारी जी का अनुमान है कि सभवत' राणा का मृत्यु के कारण ऐसा करना पडा हो।[3] गोरेलालकृत 'छत्रप्रकाश' की परिसमाप्ति के विषय मे श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने लिखा—'छत्रप्रकाश मे स. 1764 तक की घटनाओ का वर्णन मिलता है, इसके पीछे ग्रन्थ अपूर्ण जान पडता है। अंतिम अश पढने से ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रन्थ एकाएक यहाँ समाप्त हो गया है। महाराज छत्रसाल का स्वर्गवास स. 1790 मे हुआ था। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स 1764 या 65 के आसपास लाल की मृत्यु हो गयी या कोई ऐसी बात हो गयी होगी, जिससे आगे लिखना उनके लिए असंभव हो गया हो।"[4] सूदन के सुजानचरित के

---

1. रामचरितमानस—अंतिम पंक्ति
2. रामचन्द्रिका—39-39
3. वीरकाव्य, पृ 253
4. हिन्दी के कवि और काव्य, पृ 304

विषय मे भी यही बात है। इस महाकाव्य के सप्तम जंग के अंतिम अंक मे सुजानसिंह के साथ मरहठों की लडाई की तैयारी का वृत्तान्त मिलता है। उस युद्ध के परिणाम की कोई सूचना नही मिलती। तेलुगु के 'सिद्धेश्वरचरित' मे भी रचना तृतीय आश्वास के मध्य मे आकस्मिक रूप से समाप्त हो गयी। इस प्रकार आलोच्य ऐतिहासिक महाकाव्यो मे आकस्मिक ग्रन्थ-समाप्ति भी दृष्टिगत होती है।

आधिकारिक एव प्रासगिक कथा-वस्तु

रामचरितमानस, पद्मावत, पृथ्वीराजरासो, आमुक्तमाल्यदा पाण्डुरग-माहात्म्य, वसुचरित्र आदि महाकाव्यो मे मुख्यकथा के साथ आनुषगिक कथाओ की योजना मिलती है। पद्मावत मे पद्मावती और रत्नसेन की प्रेमकथा आधिकारिक है। 'आमुक्तमाल्यदा' मे श्रीहरि के प्रति गोदादेवी का प्रेम और उन दोनो का परिणय मुख्य कथा है। रामचरितमानस मे राम का चरित्र प्रधान कथा है जिसकी समाप्ति राम के राज्याभिषेक से होती है। पृथ्वीराज-रासो मे पृथ्वीराज के जन्म से लेकर शब्दबेधी बाण से प्रतिनायक के सहार तक का इतिवृत्त आधिकारिक है। वसुचरित्र मे वसुराज तथा गिरिका का प्रणय-वृत्तात मुख्य कथावस्तु है।

'पृथ्वीराजरासो' मे प्रासगिक कथाओ की भरमार है जिसमे से अधिकाश लोककथाओं पर आधारित काल्पनिक अश है। ये अवान्तर प्रसग अनेक युद्धो, विवाहो, मृगया, यात्रा और अन्य प्रकार की कथाओ से सम्बन्धित है। इन अवान्तर कथाओ की अधिकता के कारण रासो का आकार बहुत विशाल बन गया है। डॉ. शम्भूनाथ सिह के अनुसार यह गुण केवल पृथ्वीराजरासो का ही नही बल्कि विश्व के सभी विकसनशील महाकाव्यो मे प्राप्त होता है[1] 'राम-चरितमानस' मे प्रतापभानु की कथा, शिव-पार्वती-विवाह, नारदमोह-प्रसग और मनु-शतरूपा आख्यान अवान्तर प्रसग है। डॉ. शम्भूनाथ सिह का यह मत है कि यद्यपि भूमिका और उपसहार भाग मे वर्णित कथाओ का सीधा सम्बन्ध आधिकारिक कथा से नही है फिर भी महाकाव्य का वर्णन-वैशिष्ट्य, गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्ता की दृष्टि से ये अंश आवश्यक है। पौराणिक शैली का महाकाव्य होने के कारण 'मानस' मे इनका विस्तार है और इसलिये मानस के कथानक का परीक्षण शास्त्रीय शैली के महाकाव्यो की दृष्टि नही होना चाहिये :[2] 'पद्मावत' मे राघव चेतन का प्रसग, सिंहल से लौटते समय समुद्र मे

1 हिन्दी महाकव्य का स्वरूपविकास पृ 303 2 वही पृ 529

तूफान का प्रसंग और देवपाल के द्वारा पद्मावती के पास दूती भेजना अवान्तर प्रसग हैं। वसुचरित्र मे कोलाहल और शुक्तिमती का प्रसग आनुषगिक है। 'आमुक्तमाल्यदा' में यामुनाचार्य की कथा, चडाल-ब्रह्मराक्षस सवाद और खाण्डिक्य-केशिध्वज की कथा अवान्तर प्रसग है।

पृथ्वीराजरासो के विषय मे कह सकते है कि बृहदम्स्करण में वर्णित गौण प्रसंगों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से चरितनायक पृथ्वीराज से है। किन्तु मुख्य कथा या कार्य की प्रगति मे सहायक नही होने के कारण अधिक विवाहो और आखेट-यात्राओ का सीधा सम्बन्ध मुख्य कथा से नही है। महाभारत के असख्य उपाख्यानों की भांति रासो मे वर्णित अवान्तर कथाओं की स्थिति है। जैसे पहले कहा जा चुका है, रामचरितमानस की प्रासगिक कथाओ का सीधा सम्बन्ध आधिकारिक वस्तु से नही है। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि इन काव्यो की वस्तुयोजना सस्कृत के पुराणो, अपभ्रश के चरितकाव्यो कथाकाव्यो और लोककथाओ से प्रभावित है। पद्मावत की प्रबन्ध-कल्पना के विषय मे आचार्य शुक्ल की समीक्षा से लगता है कि वे इसको सुसम्बद्ध मानते है और सतुष्ट भी है, क्योकि शुक्ल जी ने राघवचेतन की घटना, समुद्र मे तूफान और देवपाल का दूती भेजना—इन प्रसगो का योगदान कथावस्तु के विकास में स्वीकार किया है।[1] डॉ गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार—"पद्मावत की कथा को राजा के चित्तौड गढ मे सिंहासनारूढ हो जाने के बाद बलात् बढाया गया है। ·· वे अपनी कथा को सूफी सिद्धान्तो मे ढालने के लिए लालायित थे। केवल कथा के पूर्वार्द्ध से सूफी सिद्धान्तों की पूर्ण अभिव्यक्ति नही होती। ······अतएव उन्हे उत्तरार्द्ध को पूर्वार्द्ध से चिपकाना पडा। उत्तरार्द्ध की अधिकाश कथाएँ प्रासंगिक सी लगती है। फिर भी उन्हे आधि-कारिक का रूप देने का प्रयास किया है। ·····उन्होंने कथा का ही नही, अनेक प्रसगो का भी व्यर्थ विस्तार किया है।"[2] इस प्रकार मानस, रासो और पद्मावत मे जो लोकोन्मुखी प्रवृत्ति है, वह कथानक मे प्राप्त आधिकारिक तथा प्रासगिक इतिवृत्त की प्रत्यक्ष सम्बन्धहीनता के लिए उत्तरदायी है। इसका यही कारण है कि शास्त्रीय लक्षणो के पालन के लिए इन काव्यों की रचना नही हुई।

'आमुक्तमाल्यदा' में अवान्तर कथाओं का सम्बन्ध प्रधान प्रतिपाद्य से

---

1. जायसी-ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 71, 72
2 जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन, पृ. 356

कवि ने किसी तरह स्थापित किया है। किन्तु आधिकारिक कथा के साथ उन आनुषंगिक प्रसगों का अनिवार्य सम्बन्ध दिखाई नही पडता। इन प्रासगिक इतिवृत्तो को हटाने से मुख्य कथा मे कोई बाधा नही पडेगी। आधार ग्रन्थो से भिन्न-भिन्न उपाख्यानो को ग्रहण करके वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए प्रधान कथा से कृत्रिम रूप से सम्बद्ध किया गया है। खाण्डिक्य-केशिध्वज का उपाख्यान, यामुनाचार्य की कथा, एव ब्रह्मराक्षस का प्रसग गोदा-श्रीरगनाथ-विवाहरूपी कार्य मे किसी भी प्रकार सहायक नही हुए है। इसी कारण 'आमुक्तमाल्यदा' पर यह आक्षेप किया गया है कि वह एक छोटा-सा विष्णुपुराण बन गया है।[1]

क्षेत्रमहिमा-प्रतिपादक 'पाडुरगमाहात्म्य' 'श्रीकालहस्तिमाहात्म्य' आदि महाकाव्यों मे भी भक्तिमहिमा या क्षेत्रमहिमा की दृष्टि से विभिन्न उपाख्यानो को ग्रहण किया गया है। महाभारत, हरिवश, भागवत आदि पुराणो मे इस प्रकार की वस्तुयोजना मिलती है। 'स्वारोचिषमनुसभव' मे प्रारभिक आश्वासो मे वर्णित प्रवर-वरुथिनी-प्रसग, मध्य का स्वरोचि-वृत्तान्त एवं अन्त मे निबद्ध मनुसभव मे एकतासूत्र बहुत दुर्बल है। इन काव्यो को लक्ष्य करके श्री बतरा रामकृष्ण राव ने लिखा— 'हमारे महाकाव्य शैली-माधुर्य के कारण एव प्रौढ भाषा के कारण व्यष्टि रूप से प्रत्येक छन्द के रमणीय होने के कारण श्रेष्ठ काव्यो के रूप मे प्रतिष्ठा पा गये हैं। इतिवृत्त-निर्वहण की दृष्टि से देखा जाय तो हमारे बहुत से महाकाव्य दोपयुक्त प्रतीत होते है।"[2] डॉ सी.आर रेड्डी का एक आक्षेप 'कथावस्तु की एकता' से सम्बन्धित है। उन्होने तेलुगु के प्रसिद्ध महाकाव्यो की कटु आलोचना इसी आधार पर की। अपने प्रिय महाकाव्य 'कलापूर्णोदय' की तुलना शाखा-प्रशाखाओ से नयन-सुख प्रदान करनेवाले महावृक्ष से और अन्य महाकाव्यो की तुलना कई भिन्न कडियों को जोडने से बनी शृखला से उन्होने की।[3] फिर भी तेलुगु में 'वसुचरित्र', 'कलापूर्णोदय', 'प्रभावती-प्रद्युम्न' आदि ऐसे महाकाव्य हैं जिनमे कवियो ने इतिवृत्त के सुन्दर निर्वाह पर पर्याप्त ध्यान दिया है। अत. कह सकते है कि श्री रामकृष्ण राव तथा डॉ सी. आर. रेड्डी के आक्षेप तेलुगु के कुछ महाकाव्यों पर घटित होते है, सब पर नही।

---

1. अष्टदिग्गजमुलु, पृ. 80
2. भारती-जुलाई 1967 'इतिवृत्त-निर्वहण' नामक लेख
3 कलापूर्णोदय की भूमिका पृ 27

हिन्दी के 'सुजानचरित' 'छत्रप्रकाश' 'हम्मीररासो' 'हम्मीरहठ' आदि ऐतिहासिक वीरकाव्यो की कथावस्तु एक ही नायक से सम्बन्धित है। उनमे प्रासगिक कथाओ की स्फीति नही है। अतः हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यो मे दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है। एक प्रवृत्ति आधिकारिक एव प्रासगिक से मूलकथा को पल्लवित करने की है और दूसरी है यथोचित अनुपात में वस्तु विन्यास की।

मार्मिक प्रसंगो की योजना

वस्तुप्रधान काव्यो मे घटनाओ के सामान्य कथन के साथ-साथ उस इतिवृत्तात्मक अंश को सरस बनानेवाले प्रसगो की भी योजना होती है। आचार्य विश्वनाथ और समीक्षक-प्रवर रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रबन्ध के नीरस पद्यों मे भी रसवत्ता इन मर्मस्पर्शी स्थलों के प्रभाव से समाविष्ट होती है।[1] 'रामचरितमानस' मे चित्रकूट-प्रसग, शिव-धनुर्भंग, राम का वनगमन, केवट-प्रसग आदि विशेष स्थल रसात्मक है। इसी प्रकार 'पद्मावत' में मायके मे कुमारियो की स्वच्छन्द क्रीड़ा रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक, प्रेममार्ग के कष्ट, रत्नसेन को सूली की व्यवस्था, उस दण्ड के सम्बन्ध मे विप्रलम्भ दशा मे पद्मावती की करुण सहानुभूति, रत्नसेन और पद्मावती का सयोग आदि मार्मिक प्रसग है। 'स्वारोचिष-मनुसभव' में प्रवराख्य का हिमालय पर पहुँचकर वहाँ के सुन्दर दृश्यो को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होना, वरूथिनी के हाव-भाव और प्रवर की धर्मनिष्ठा, वरूथिनी की विरह-व्याकुलता, स्वरोचि का आखेट खेलने जाना आदि मार्मिक स्थल है। 'आमुक्तमाल्यदा' मे विष्णुचित्त नामक भक्त का राजसभा मे शास्त्रार्थ करना, गोदादेवी की वियोग-दशा, पाण्ड्य नरेश के मन मे वैराग्य भाव की प्रेरक घटना आदि मार्मिक स्थल है। इस प्रकार दोनो क्षेत्रों के महाकाव्यो मे इतिवृत्तात्मक अंश की नीरसता को मार्मिक स्थलो के सयोजन से सरस बनाने की प्रवृत्ति समान है।

महाकाव्यों मे अष्टादश वर्णनो का समावेश काव्यवस्तु को सरस और वैविध्यपूर्ण बनाने की दृष्टि से आचार्यों ने निरूपित किया है। ऐसे स्थलों मे कथा विराम ग्रहण करती है और वर्णन के समाप्त होने पर फिर आगे बढती है। शुक्ल जी के शब्दों मे—"काव्यों मे विस्तृत विवरण दो रूपो मे मिलते हैं—(1) कवि द्वारा वस्तुवर्णन के रूप में (2) पात्र द्वारा भावव्यजना के रूप मे"[2]

---

1. साहित्यदर्पण-प्रथम परिच्छेद, पृ. 18
2 जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ 75

वस्तुवर्णन के अवसर पर नामपरिगणन के रूप में बहुलता प्रदर्शन की प्रवृत्ति मानस और पद्मावत में प्राप्त होती है। इससे रस का सचार नही होता। नामपरिगणनात्मक वस्तुवर्णन पारम्पारिक है, जिनमे कवियो की भावुकता लक्षित नही होती। महाकाव्यो मे वर्णनो का संयोजन दो प्रकार का होता है—(1) कथा का निर्वाह मुख्य रूप से करते हुए आनुषगिक रूप से वर्णनो को भी स्थान देना और (2) कथा के क्षीणतंतु मे अधिकाधिक वर्णनो के मुक्ता-फलों को पिरोना। 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', 'पृथ्वीराजरासो', 'निर्वचनोत्तर रामायण', 'रगनाथ रामायण' आदि प्रथम प्रकार के महाकाव्य है तो 'राम-चन्द्रिका', 'वसुचरित्र', 'आमुक्तमाल्यदा' आदि दूसरे प्रकार के महाकाव्य है।

रचना-प्रवृत्ति एव लक्ष्य की दृष्टि से तुलसी के सामने राम का आख्यान मुख्य था, जायसी के सामने प्रेमगाथा के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना का लक्ष्य था और चन्दबरदायी के सम्मुख पृथ्वीराज की वीरगाथा का वर्णन प्रमुख था। किन्तु केशव और रामभद्र के सम्मुख रामकथा के सागोपाग कथन का लक्ष्य नही था। ये कवि राजदरबारो मे सम्मान प्राप्त करते थे। अत. अन्य कवियो की तुलना मे अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के हेतु सभा-रजन की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर इन कवियो ने काव्य-रचना की। सस्कृत महाकाव्यो की परम्परा से प्रेरणा लेकर काव्यशास्त्रबद्ध होकर रचना करने की प्रवृत्ति भी इन कवियो मे दृष्टिगत होती है। इस प्रकार रचना की प्रेरक साहित्यिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो के प्रभाव से इन कवियों ने अपने महाकाव्यो मे कथा-कथन को गौण और वस्तुवर्णनो को प्रधान स्थान प्रदान किया।

महाकाव्यों में संयोजित वर्णन वस्तु से सम्बन्धित होने पर, निरर्थक नही लगते। सयोग की दशा मे शृंगार की अनुभूति को तीव्रतर बनाने के लिये तथा नायक-नायिका की विरह दशा को उद्दीप्त करके वियोग शृगार को परिपक्व बनाने के लिये प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन कथावस्तु का सहायक ही होता है। इतना ही नही, प्रतिभाशाली कवि वस्तुवर्णनो से कथागत पात्रो की मन स्थिति या अपनी दृष्टि की सूचना देकर पाठको का उपकार भी करता है। रामचरित-मानस मे ऐसे वर्णन प्राप्त होते है, यथा

देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा।"[1]
घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।"[2]

---

1. मानस-अरण्यकाण्ड, 37—5　　2. मानस-किष्किधाकाण्ड, 14—1

इन वर्णनो की योजना रामचन्द्र के विरहरूपी वस्तु से सम्बन्धित होने के कारण परम रमणीय है। 'मानस' मे वर्णन यथोचित सक्षिप्त रूप मे ही दिखायी पडते है, कथावस्तु को आच्छादित करने की मात्रा तक उनका विस्तार नही है।

'पद्मावत' मे विरह-विह्वल नायिका नागमती के वियोग की तीव्रता को प्रकट करने के हेतु सयोजित बारहमासा एव पद्मावती के सयोग शृगार के उद्दीपक के रूप में किया गया षट्ऋतु-वर्णन कथावस्तु से अनिवार्यत सबधित है। 'हम्मीररासो' मे पद्मऋषि की तपस्या के प्रसग मे षट् ऋतुओ का वर्णन किया गया है।[1] यह वर्णन सभी ऋतुओ मे अविचल भाव से तपस्या करनेवाले ऋषि से सम्बन्धित है। तेलुगु के 'कुमारसम्भव' मे पार्वती की तपस्या के सदर्भ मे प्राप्त षट्ऋतु-वर्णन बडी विशदता के साथ उन ऋतुओ की भीषणता के माध्यम से शैलजा की तपोमहिमा की व्यजना करता है।[2] इसी महाकाव्य मे वसन्त-वर्णन शिव जी के तपोभगरूपी कार्य का कारण है। इसलिए कथावस्तु का अनिवार्य अग है। वसुचरित्र मे गिरिका और मनुचरित्र मे वरूथिनी की विरह-वेदना को तीव्रतर बनाने के लिए उद्दीपन रूप मे चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है।[3] मनुचरित्र मे सायं-सध्या के अवसर पर विरहिणी चक्रवाकी का जो वर्णन किया गया है, उससे काव्य-नायिका वरूथिनी की विरह-दशा को सूचित किया गया है।[4] आमुक्तमाल्यदा मे वसन्तऋतु का वर्णन गोदादेवी की वियोग-वेदना को उद्दीप्त करने की दृष्टि से कथावस्तु से सम्बन्धित है। पेद्दनार्य ने सायकालीन सूर्य की लालिमा का वर्णन, काव्यगत पात्र के प्रति सूर्य के क्रोध के रूप मे करके, वर्णन का सम्बन्ध कथावस्तु से स्थापित किया है। काव्यनायिका वरूथिनी के प्रति निष्ठुर व्यवहार करनेवाले धर्मान्ध प्रवर की आलोचना और नायिका के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है।

सर्गविभाजन

सर्गविभाजन मे काव्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण मे एक व्यवस्था आ जाती है। जायसी के महाकाव्य मे शुक्लजी और अग्रवाल जी के संस्करणो के अनुसार मानसरोदक खण्ड, नागमतीवियोग खड आदि के नाम पर खंडविभाजन दिखायी पड़ता है। शुक्ल जी ने तो स्पष्ट लिखा है—"इन प्रेमगाथा काव्यो के सम्बन्ध मे पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिलकुल भारतीय

---

1 हम्मीररासो, 100—142
2. कुमारसम्भव, 84—139
3 वसुचरित्र 4—17, मनुचरित्र 3—25
4. मनुचरित्र 3—16

चरितकाव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिनमें कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती, बराबर चलती रहती है, केवल स्थान स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में रहता है।"[1] अतः स्पष्ट है कि वर्णित घटना के आधार पर नाम दे देना ही सर्गविभाजन नहीं है। क्योंकि वस्तु को व्यवस्थित रूप में संयोजित करना सर्गविभाजन का लक्ष्य है। विद्वानों का कहना है कि पद्मावत की मूल प्रतियों में खंडविभाजन नहीं है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के द्वारा वैज्ञानिक ढंग से पाठ-संशोधन करके प्रकाशित कराये गये 'पद्मावत' में खण्ड-विभाजन नहीं है। अपभ्रंश में हरिभद्र का 'णेमिणाह चरिउ', प्राकृत में वाक्पतिराज का 'गउडवहो' और उद्योतनसूरिकृत 'कुवलयमाला' में सर्ग-विभाजन नहीं है।[2] कह सकते हैं कि 'पद्मावत' पर प्राकृत-अपभ्रंश की इस परम्परा का प्रभाव पड़ा है। तेलुगु में सूफी महाकाव्यों का अभाव है और सर्गबद्धता से रहित महाकाव्यों का भी प्रायः अभाव है।

'रामचरितमानस' में काण्डों या सोपानों के अन्तर्गत, 'सुजानचरित' में जंगों के अंतर्गत, 'छत्रप्रकाश' में अध्यायों में और 'रामचन्द्रिका' में प्रकाशों के अन्तर्गत वस्तु का विभाजन दृष्टिगत होता है। 'हम्मीररासो' में सर्गविभाजन नहीं है। 'अथ हम्मीर को जन्म वर्णन' आदि कुछ शीर्षक मात्र दिये गये हैं। इस प्रकार हिन्दी महाकाव्यों में सर्गबन्ध एवं सर्गहीन की दो पद्धतियाँ हैं। तेलुगु में आश्वासों के नाम पर सर्गों का विधान किया गया है। इससे समझ सकते हैं कि हिन्दी के कुछ महाकाव्यों में प्राकृत-अपभ्रंश की सर्गविहीन पद्धति को ग्रहण किया गया है। तेलुगु में संस्कृत महाकाव्य की सर्गबद्धतावाली प्रणाली को अपनाया गया है। सर्ग के लिए 'आश्वास' शब्द का प्रयोग प्राकृत साहित्य की प्रवृत्ति है। जहाँ पर कवियों ने सर्गविभाजन को अपनाया, इतिवृत्त के संयोजन में सांगोपांगता और बीच में विराम आदि की सुन्दर व्यवस्था आ गयी है।

नामकरण की सार्थकता

आलोच्य भाषाओं में महाकाव्यों के नामकरण की सार्थकता विचारणीय है, क्योंकि वस्तु का विधान उसी पर बहुत कुछ आधारित होता है। तुलसी ने रामचरितमानस का शीर्षक अपने महाकाव्य को दिया। इससे यही प्रकट

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृ. 4
2. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ. 148

होता है कि कवि को रामचरित का आख्यान अभीष्ट था और इसकी परिकल्पना कवि-मानस मे मानसरोवर के रूप मे थी। यही कारण है कि इस महाकाव्य के सात काण्डो को सात सोपान माना गया। कवि ने मानसरोवर के रूपक को स्पष्ट भी किया है।[1] प्रस्तुत रामकथा के विविध पक्षो एव अप्रस्तुत मानसरोवर के विविध अगो के अभेद-प्रतिपादन के कारण इसको मानस-रूपक कहा जाता है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' मे नदी-रूपक का विधान है। श्री वैद्यनाथसिह के अनुसार "रामचरितमानस नाम रखने का विशेष हेतु है। और वह यह कि सर्वप्रथम शिव ने काव्य की रचना करके अपने मानस में रखा और समय पाकर शिवा से इसको कहा।''' '''ग्रन्थ का नाम मानस बड़ा अर्थगर्भित लगता है। पहले तो मानसरोवर के साथ इसका साधर्म्य बैठ जाता है, दूसरे काव्य के मनोमय-कोश का विषय होने के कारण भी मानस नाम सगत लगता है। जिस प्रकार अप्रस्तुत मानस स्नानार्थियो की श्रान्ति-क्लान्ति को दूर करता है उसी प्रकार प्रस्तुत मानस भी अपने रसिक पाठक-श्रोताओं को शांति प्रदान करता है।"[2] इसके अतिरिक्त श्री सिह ने मानस संज्ञा को इसलिए भी सार्थक माना कि गोस्वामी जी ने शुभाशुभ मानस-वृत्तियो की राम-रावण रूप मे कल्पना की है।[3]

केशवकृत 'रामचन्द्रिका' में 'रामचन्द्र की चन्द्रिका' अर्थात् राम के राज्यवैभव एव धवल यश के वर्णन की दृष्टि से घटनाओ की योजना की गई है। पद्मावत की समस्त घटनाओ का संबंध लौकिक पक्ष मे पद्मावती के साथ और आध्यात्मिक पक्ष में उस परमतत्व के साथ अनिवार्य रूप से है। 'कला-पूर्णोदय' की सज्ञा कलापूर्ण नामक पात्र के उदय की ओर समस्त घटनाओ की उन्मुखता के अतिरिक्त सर्वोत्तम कला के मूर्तरूप मे काव्य-रचना की प्रवृत्ति को द्योतित करने के कारण सार्थक है। 'वसुचरित्र' मे एकनायकत्व और वस्तु सबधी एकता के साथ-साथ नामकरण भी सार्थक है। पाडुरगमाहात्म्य, श्रीकालहस्तिमाहात्म्य जैसे महाकाव्यो में घटनाओ का विधान क्षेत्रमहिमा के प्रतिपादन की दृष्टि से किया गया है। कवियो ने विभिन्न उपाख्यानो को अभीष्ट प्रयोजन की दृष्टि से सयोजित किया है। इस प्रकार हिन्दी एवं तेलुगु के महाकाव्यों का वस्तु-शिल्प, कवि-मानस मे उस वस्तु की परिकल्पना से नियन्त्रित है। इस परिकल्पना की अभिव्यक्ति काव्य के अभिधान से होती है।

---

1. मानस-बालकाण्ड, 35-41
2 मानस मे रीतितत्व, पृ. 2
3. वही, पृ. 5

वक्ता-श्रोता योजना

'पृथ्वीराजरासो' और 'रामचरितमानस' मे तथा विद्यापतिकृत 'कीर्तिलता' आदि अपभ्रंश-काव्यो में वक्ता-श्रोता योजना है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"उन दिनो की कथाएँ दो व्यक्तियो के सवाद रूप मे लिखी जाती थी। चन्द ने भी रासो को शुक और शुकी के सवाद के रूप मे लिखा था, जैसे विद्यापति ने कीर्तिलता को भृंग और भृंगी के सवाद के रूप में लिखा था और कौतूहल कवि ने 'लीलावतीकथा' को कवि और कवि पत्नी के सवाद के रूप मे लिखा था।[1]" 'रामचरित मानस' की कथा के वक्ता शिव, याज्ञवल्क्य और कागभुशुण्डि हैं और श्रोता क्रमश पार्वती, भरद्वाज और गरुड है। वास्तव मे वक्ता-श्रोता के माध्यम से कथा कथन की पद्धति पहले संस्कृत के महाभारत और पुराणो मे दिखाई पडती है।

तेलुगु के महाकाव्यो की वस्तुयोजना पर पौराणिक रीति का प्रभाव दृष्टिगत होता है। स्वारोचिषमनुसभव का कथानक मार्कण्डेयपुराण से गृहीत है। इतिवृत्त के साथ-साथ उस पुराण के वक्ता-श्रोता भी यथावत् इस महाकाव्य मे आ गये है। मनुसभव काव्य-कथा के वक्ता धर्मपक्षी और मार्कण्डेय है। क्रमश. जैमिनि मुनि और क्रोष्ठी इसके श्रोता हैं। 'वसुचरित्र' मे सूत वक्ता है और शुक, शौनक आदि मुनि श्रोता है। 'पाडुरगमाहात्म्य' मे कथा का अभिवर्णन शिवजी ने किया तो पार्वती, नारद, अगस्त्य आदि ने उसका श्रवण किया। इस प्रकार हिन्दी एव तेलुगु के महाकाव्यो मे वक्ता-श्रोता के माध्यम से कथा-कथन का विधान है।

तेलुगु महाकाव्यो मे एक और विशे ता है। कवि अपने आश्रयदाता नरेश को या अपने इष्टदेव को श्रोता की स्थिति मे रखकर, स्वय वक्ता बनकर कथा कहने लगता है। जिस प्रकार कथावाचक कथा-कथन के दौरान आलस्य, निद्रा या अन्यमनस्कता के कारण कथा पर ध्यान नही देनेवाले श्रोताओ को सावधान करता रहता है और कक्षा मे अध्यापक छात्रो को बीच-बीच में नाम लेकर अभिमुखीकृत करते हुए प्रतिपाद्य विषय के प्रति उनकी सावधानी को बनाये रखता है, उसी प्रकार तेलुगु का महाकाव्यकार प्रत्येक आश्वास के आदि-अन्त मे अपने श्रोता का संबोधन करता रहता है। स्वारोचिषमनुसभव मे' सम्राट श्रीकृष्णदेवराय को, 'आमुक्तमाल्यदा' में वेकटेश भगवान को, 'वसुचरित्र' मे तिरुमलराय को, विजयविलास' मे रघुनाथ भूपाल को, 'कुमारसंभव'

---

1. संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो की भूमिका पृ. 12

से मल्लिकार्जुन शिवयोगी को तथा 'निर्वचनोत्तर रामायण' मे राजा मनुमसिद्धि को संबोधित करके काव्य-कथा का निवेदन किया गया है। इस प्रकार की योजना हिन्दी के महाकाव्यो मे नही है।

वस्तु में नाटकीयता

कथावस्तु मे नाटकीयता का समावेश तब होता है, जब पात्रो के माध्यम से कथा आगे बढती है। पात्रो का वार्तालाप इस निपुणता के साथ निबद्ध किया जाता है कि सवाद पात्रो की चरित्रगत विशेषताओ का उद्‌घाटन करने के अतिरिक्त घटनावली को अनावश्यक विराम से बचाकर गति प्रदान करते है। कहने का यही आशय है कि कवि अपनी ओर से घटनाओ का कथन बहुत कम करता है और पात्रो द्वारा ही वह कार्य सम्पन्न होता है।

तेलुगु के महाकाव्यों मे विशेषकर 'कलापूर्णोदय. 'प्रभावती प्रद्युम्न' वसु-चरित्र' और 'पारिजातापहरण' मे यह गुण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। वसुचरित्र मे शुक्तिमती और कोलाहलपर्वत की कथा कवि स्वय नही सुनाता है, प्रत्युत गिरिका की सखी मजुवाणी के द्वारा नर्मसखा को सुनाया जाता है। कलापूर्णोदय के प्रथम आश्वास मे नारद, कलभाषिणी, रभा, नलकूबर और मणिकधर—इन पात्रो के माध्यम से कथासूत्रो मे परस्पर सबद्धता तथा क्षिप्रगति का सपादन किया गया है। वास्तव मे पूरा 'कलापूर्णोदय' इस कवि-कौशल के लिए उदाहरण है। श्री दुव्वरि वेंकटरमण शास्त्री ने सूरनार्य के वस्तुविन्यास की चातुरी को तीन रूपो मे विश्लेषित किया है, यथा—(1) वर्णनकृत्य का निर्वाह कथात्मक अशो के माध्यम से करना (2) वर्णनो मे भी कथा की सूचना देना (3) एक कथा मे अन्य कथाशो का सधान करना[1] इन तीन भेदों के साथ यह चतुर्थ भेद भी सम्मिलित किया जा सकता है, जो पात्रो के माध्यम से कथा को गतिशील बनाने का है।

डॉ. सी. आर. रेड्डी 'कलापूर्णोदय' में प्रदर्शित कवि की इस निपुणता पर मुग्ध हो गये है कि कथा के आरभ में ही बडी शीघ्रता से कई पात्रों का परिचय पाठक को मिल जाता है। रेड्डी जी की यह स्वीकारोक्ति है कि नाटक-रीति से सवादो के माध्यम से कथा के अशो को प्रकट करने के गुण मे यह काव्य असदृश है।[2] प्रथम आश्वास के समाप्त होते-होते पाठक कथा-प्रवाह के मंझधार मे पहुँच जाते है और उत्सुकतावश आगे की कथा जानने के लिए

1 सारस्वत व्याससुलु (प्रथम भाग), पृ 274

2 कलापूर्णोदय की भूमिका, पृ 24

लालायित हो जाते हैं। सूरनार्य के 'प्रभावतीप्रद्युम्न' महाकाव्य मे भी नाटकीयता का यह गुण लक्षित होता है।

हिन्दी के महाकाव्यों में सुन्दर सवादो की योजना का अभाव नही है। कविवर केशवदास का महत्त्व सवाद-चातुर्य के कारण भी है। आचार्य शुक्ल की स्पष्टोक्ति है कि केशव को सब से अधिक सफलता सवादों मे मिली।[1] मानस मे कैकेयी-मथरा-सवाद, परशुराम-लक्ष्मण सवाद, रावण-अगद-सवाद आदि का बडा सुन्दर विधान है। इन सुन्दर सवादो की अवतारणा के कारण कथावस्तु में नाटकीयता का समावेश हो गया है।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 186

पंचम अध्याय

चरित्रचित्रण

महाकाव्य वस्तुप्रधान काव्यों की कोटि में गणनीय है। वस्तु अथवा कथानक की योजना करनेवाली विविध घटनाएँ शृंखलित रूप मे जब काव्य मे विन्यस्त होती है तो उन घटनाओ के प्रवाह के लिए आलम्बन रूप में पात्र एव पात्रों के शील-स्वभाव का उद्घाटन करने मे सहायक परिस्थितियाँ अनिवार्य रूप से काव्य मे स्थान बना लेती है। इस प्रकार सभी महाकाव्यो मे पात्र-परिकल्पना अनिवार्य रूप से विद्यमान होती है। कवियो का वैयक्तिक दृष्टिकोण, काव्य-वस्तु का स्वरूप, काव्य-प्रणयन के युग की परिस्थितियाँ आदि से चरित्रचित्रण प्रभावित होता है।

भक्तिमय व्यक्तित्व से सम्पन्न कवि स्वान्त सुखाय नायक की परिकल्पना परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप मे करता है। अद्वितीय धीरता, वीरता, गभीरता, सज्जनता आदि गुणो के मूर्तिमान रूप मे नायक को चित्रित करता है। काव्य के अन्य पात्रो की सृष्टि नायक के इस दिव्यत्व में सहयक रूप मे की जाती है। शृगारप्रिय कवि अपनी अभीष्ट भावनाओ के अनुकूल पात्रो के प्रेमी रूप को विशेष रूप से उद्घाटित करने मे प्रवणचित्त रहता है। लोकमानस और कवि-परपरा मे जिन भव्य आदर्शों की प्रतिष्ठा वस्तु मे पहले ही की गयी है, उन मर्यादित सीमाओं का अतिक्रमण उसी वस्तु को लेकर काव्य रचनेवाला कवि नही कर सकता। कवि की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के बावजूद प्रख्यात इतिवृत्त पात्रचित्रण को प्रभावित करता है। प्रेमगाथा को आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लक्ष्य से वस्तु-रूप मे स्वीकार करनेवाला कवि उन सिद्धान्तों के अनुरूप चरित्रो की परिकल्पना प्रतीक रूप मे करता है। वीरगाथा एव वीर भावना पर जिस कवि की दृष्टि केन्द्रित होती है उस कवि के पात्र वीर भावना के प्रतिरूप बन जाते है। अलकार-प्रयोग एवं रीतिमार्ग के वशीभूत कवि चरित्रचित्रण मे मन नही लगाकर अलकारो के माध्यम से पात्रो के गुणो का उल्लेख मात्र करके सन्तुष्ट हो जाता है।

कवियो के वैयक्तिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त युग की परिस्थितियाँ भी काव्यगत चरित्रचित्रण को प्रभावित करती हैं। जिस यग में कवियों को नरेशो का सरक्षण प्राप्त होता है, काव्य-रचना को विलासी रसिक एवं वैभव-समृद्धि मे मस्त शृंगारप्रिय प्रभुओं की चित्तवृत्ति नियंत्रित करती है, उस युग मे स्वाभाविक है कि कवि-गण अपने आश्रयदाताओं की अभिलाषाओ के अनुरूप पात्रों की परिकल्पना करते। इस प्रकार महाकाव्यगत चरित्रचित्रण को प्रभावित करनेवाली परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार की होती है।

चरित्रचित्रण की मीमांसा के सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि, जिस काव्य मे व्यापक रूप से समग्र जीवन की अत्यधिक घटनाओ की योजना की जाती है, उसमे विविध परिस्थितियों मे पात्रो के क्रिया-कलाप, विचार आदि को प्रदर्शित करने का अवसर कवि को मिलता है। इसके विपरीत अल्प इतिवृत्त ग्रहण करके वर्णनो की बहुलता एव अलकरण पर ध्यान जिस काव्य मे दिया जाता है, उसमे विस्तृत रूप मे चरित्रगत विशेषताओं को प्रदर्शित करने का अवसर नही मिलता। स्वीकृत कथावस्तु की मीमाओ के भीतर निपुण कवि पात्रो को सजीव रूप में चित्रित कर सकता है।

भारतीय भाषाओ के महाकाव्यो मे गृहीत वस्तु साधारणतया पुराण, इतिहास आदि स्रोतो मे प्रसिद्धि-प्राप्त होती है। अत इन महाकाव्यो के पात्र भी उन आधारभूत स्रोतो से लिये गये होते है। इस तथ्य के बावजूद महाकाव्यों के पात्र प्राचीन वाङ्मय के पात्रो के प्रतिबिब नही है। कवियो ने अनौचित्य-परिहार की प्रवृत्ति मे मूलग्रन्थो मे वर्णित अनावश्यक और अनुचित अशो को हटाकर पात्रों के चरित्र को उज्ज्वल और स्वाभाविक बनाया है। इसके विपरीत ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते है जहाँ कवियो ने नवीन प्रयोग की त्वरा मे पात्रो के चरित्र को लगनेवाली ठेस पर ध्यान नही दिया। प्राचीन कथानक का अनुसरण नही करके स्वतन्त्र रूप से शुद्ध काल्पनिक महाकाव्य की रचना करनेवाले कवि के लिए निजी दृष्टिकोण के अनुरूप पात्र-चित्रण का यथेष्ट अवकाश मिलता है।

मध्यकालीन महाकाव्यों के चरित्रचित्रण के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया जाता है कि कवियों ने शास्त्रीय मान्यताओं से परिचालित होकर पात्रो को वैविध्यहीन, निर्जीव और काष्ठप्रतिमासदृश बनाया है। उदाहरणार्थ प्रत्येक काव्य की नायिका चन्द्रमा, कामदेव और मलयानिल को अपनी विरहावस्था मे उपालम्भ देती है, विरहाग्नि मे तप्त होकर अपनी सखियो से शीतल उपचारों की अपेक्षा करती है, इत्यादि।[1] परिणाम यह होता है कि चरित्र-चित्रण गतानुगतिक ढग का बन जाता है। परन्तु इस प्रसंग मे स्मरणीय है कि प्रतिभाशाली एवं लोकज्ञ कवियो ने सजीव पात्रो की सृष्टि की है।

मध्यकाल तक के साहित्य मे प्रतिफलित भारतीय दृष्टिकोण प्रायः आदर्शवादी है। इसके अनुसार काव्य की परिसमाप्ति नायक के अभ्युदय से की गई है। साथ ही धर्मानुमोदित अर्थ एव काम का प्रतिपादन किया गया

1. कवित्वतत्वविचारनु, पृ. 67

है। इस स्थिति मे काव्य-नायक उदात्त गुणों के साकार पुंज के रूप मे प्रस्तुत किया गया।

विद्यानाथ ने नायक मे निम्नोक्त गुण आवश्यक माने है—महाकुलीनता, औज्ज्वल्य, महाभाग्य, उदारता, तेजस्विता, विदग्धता और धार्मिकत्व।[1]

हिन्दी मे रामकथा को लेकर तुलसी और केशव ने महाकाव्य-रचना की है। अत साक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्य के आधार पर तुलसी का भक्तरूप हमें दिखाई पडता है। केशव के व्यक्तित्व मे शृगारप्रियता और दरबारी मनोवृत्ति के दर्शन होते है। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि केशव भक्ति-विमुख थे। जहाँ तुलसी ने रामकथा के विविध प्रसगो की योजना मनोयोगपूर्वक की है, केशव ने सक्षेप और क्षिप्रता की प्रवृत्ति से काम लिया है। अतः विस्तृत परिधि मे चरित्रचित्रण का जो अवसर तुलसी को प्राप्त था वह केशव को नही मिला था। चन्दबरदायी, सूदन, जोधराज आदि के वीरकाव्यो मे जीवन के एक विशिष्ट पक्ष को वीरभावना के अनुसार ग्रहण किये जाने के कारण वहाँ भी विशाल परिधि में पात्रकल्पना नही हो सकी। जायसी आदि के प्रेमगाथा-काव्यो मे नायक-नायिका के प्रणयभाव पर ही कवियों का ध्यान केन्द्रित था। अत सीमित क्षेत्र मे ही पात्रों की चरित्रगत विशेषताओ का उद्घाटन सभव हो सका। इस स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करनेवाली आचार्य शुक्ल की पक्तियाँ इस प्रकार है—"चारणकाल के चन्द आदि कवियों ने भी प्रबन्ध-रचना की है, परन्तु उसमें चरित्रचित्रण को वैसा स्थान नही दिया गया है, वीरोल्लास ही प्रधान है। जायसी आदि मुसलमान कवियों की प्रबन्धधारा केवल प्रेमपथ का निदर्शन करती गयी है। दोनो प्रकार के आख्यानो मे मनोविकारों के इतने भिन्न भिन्न प्रकृतिस्थ स्वरूप नही दिखायी पडते, जिन्हे हम किसी व्यक्ति या समुदाय-विशेष का लक्षण कह सके।"[2] शुक्ल जी की यह दृष्टि वहाँ भी व्यक्त हुई जहाँ उन्होंने पृथ्वीराजरासो को वीरगाथा, पद्मावत को प्रेमगाथा और मानस को जीवनगाथा कहा है।[3]

इस सदर्भ मे यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि केवल वस्तु-विस्तृति, अधिक से अधिक घटनाओ का सयोजन एव क्रमपूर्वक किसी के जीवन की घटनाओ का वर्णन जिस ग्रंथ मे होता है, क्या केवल वही ग्रंथ चरित्रचित्रण की कसौटी

---

1. प्रतापरुद्रीयम् , पृ. 11
2 गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 100
3 जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 201

पर खरा उतरता है। काव्य की अपेक्षा पुराण और धर्मग्रंथ में वस्तुविस्तृति अधिक है। जीवनचरित मे जीवन की घटनाओं का विस्तृत विवरण क्रमबद्ध रूप में प्राप्त होता है। काव्य के अन्तर्गत तो कवि का ध्यान वस्तुविस्तार की अपेक्षा चारुत्व सम्पादन पर लगा रहता है। सभी महाकाव्यो मे विस्तृत वस्तु की योजना हो भी नहीं सकती। सीमित कथानक के बावजूद निपुण कवि अच्छा चरित्रचित्रण कर सकता है। कवि की दृष्टि और काव्यवस्तु की प्रकृति के अनुसार चरित्रचित्रण की समीक्षा उपादेय है।

तुलसी ने रामचरितमानस मे अपने भक्तिमय व्यक्तित्व के अनुरूप राम को परमात्मा के प्रत्यक्ष रूप मे चित्रित किया है। वाल्मीकि के द्वारा चित्रित पुरुषोत्तम-रूप और तुलसी के इस परब्रह्म-रूप में अंतर है। काव्य के अनेक स्थानो पर तुलसी ने अपनी ओर से तथा पात्रो के माध्यम से पाठको को यह स्मरण दिलाया है कि राम ने ब्रह्म होकर भी मनुष्य-मात्र की भाति पृथ्वी पर अपनी लीला प्रदर्शित की। स्थालीपुलाकन्याय मे निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

"एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥"[1]

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।[2]

अयोध्याकाण्ड मे राम कैकेयी के प्रति चित्रकूट-प्रसग मे विनय, कोमलता आदि का जो व्यवहार करते है उससे राम की दिव्यता प्रकट होती है। इस प्राकट्य मे कैकेयी का पात्र साधनभूत है। इसी प्रकार रावण के चरित्र के माध्यम से भी राम के ब्रह्मत्व की व्यजना की गयी है। रावण और मारीच राम के ब्रह्मत्व से अभिज्ञ है। राम के हाथ से मरकर वैकुण्ठ प्राप्त करने की इच्छा से मारीच राम की पर्णशाला के पास मायामृग के रूप मे जाता है। रावण की ईश्वरोन्मुखता की झलक भी द्रष्टव्य है—

"सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मै जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥[3]"

इस प्रकार तुलसी के द्वारा चित्रित राम मे आध्यात्मिक ब्रह्मत्व की छवि परि-

1. मानस-बालकाण्ड, 13—2
2. वही—उत्तरकाण्ड, 72 (क)
3 मानस-अरण्यकाण्ड 22-2

लक्षित होती है। अन्य पात्रो को भी कवि ने अपनी भक्तिमय दृष्टि के अनुरूप ईश्वरोन्मुख रूप मे चित्रित किया है।

तुलसी के द्वारा मानस मे चित्रित प्रायः सभी पात्र सामाजिक-नैतिक मूल्यो का प्रतिनिधित्व करते है। राम के चरित्र मे गुरुजनो के प्रति श्रद्धा, छोटो के प्रति वात्सल्य आदि सद्गुणो को विविध प्रसंगो मे प्रदर्शित किया गया। नायिका सीता के चरित्र मे पतिपरायणता का भव्य आदर्श वाल्मीकि द्वारा निक्षिप्त है। तुलसी ने उस आदर्श का विकास किया है। पुष्पवाटिका-प्रसग मे राम के प्रति सीता का अनुरक्त होना, धनुर्भंग के अवसर पर सीता की उत्कठा और उनकी मानसिक दशाएँ, वनवास के कष्ट को पति के सान्निध्य मे सुखमय मानना, एक लम्बी अवधि तक दुष्ट राक्षसो के बीच पति के वियोग की दारुण व्यथा सहन करना आदि प्रसगो के माध्यम से सीता के पातिव्रत्य-गुण का चित्रण किया गया है।

मानसकार की सीता सहज लज्जा-स्वभाव से युक्त उत्तम कुलवधू के रूप मे दिखायी देती है। वनमार्ग मे ग्रामीण स्त्रियों ने जब सीता से पूछा—

"कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहुँ को आहि तुम्हारे।"[1]

तब सीताजी का सकोच करना, मन ही मन मुस्कुराना, अपने चन्द्रमुख को आचल मे ढककर राम की ओर निहारना, भौहे टेढी करके सकेत से राम को अपना पति बताना, सीता के उत्तम कुलवधू रूप को प्रत्यक्ष कर देते है।

केवल राम और सीता के चरित्रों मे ही नही प्रत्युत् अन्य पात्रो के द्वारा भी मालिक-सेवक, माता-पिता, मित्र, भ्राता आदि के आदर्शो की अभिव्यक्ति मानसकार ने की है। इस महाकाव्य मे समाज की सुस्थिति के लिये आवश्यक नैतिक आदर्शो की प्रतिष्ठा विविध पात्रो मे की गयी है। यही कारण है कि मानस के पठन-पाठन, श्रवण और मनन के प्रभाव से हिन्दी भाषी प्रदेश विदेशी अत्याचारी की भीषण परिस्थितियो मे नैतिक पतन से बच सका। मानस के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस प्रकार है—"चरित्रचित्रण मे तुलसीदास की तुलना संसार के गिने-चुने कवियो के साथ ही की जा सकती है। उनके सभी पात्र उसी प्रकार हाड-मास के जीव है, जिस प्रकार काव्य का पाठक, परन्तु फिर भी उनमें अलौकिकता है। सबसे अद्भुत बात यह है कि इन चरित्रो की अलौकिकता समझ मे आनेवाली चीज है। जीवन्त पात्र सिर्फ श्वास-प्रश्वास ही नही लेते, सिर्फ हमारी भाति नाना प्रकार की सवेदनाओ

---

1 मानस-अयोध्याकाण्ड 117-1

को ही नहीं अनुभव करते बल्कि वे आगे बढ़ते है, पीछे हटते हैं। अपनी उद्भस्त वाणी और स्फूर्तिप्रद क्रियाओ से हमारे अन्दर ऊपर उठने का उत्साह भरते है, हमे साथ ले लेते है। हम उनका सग पा जाने पर उल्लसित होते है। उमगते है और सन्मार्ग पर चलने मे जो विघ्न-बाधाएँ आती है, उन्हे जीतने का प्रयास करते है।[1]"

तुलसी लोकमगल के लिये मर्यादामार्ग का प्रतिपादन करनेवाले कवि है। कवि ने 'मानस' के आरम्भ मे स्पष्ट किया है कि इस काव्य में विषयरस के लिये कोई स्थान नहीं है। तुलसी के पात्र-चित्रण मे यह दृष्टि प्रतिफलित है। प्राकृत की 'लीलावती',अपभ्रश के चरितकाव्य, संस्कृत के 'नैषधीय-चरित' वगैरह मे नायक-नायिका के सुखोपभोगरूपी शृगार का अच्छा-खासा वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु तुलसी के काव्य मे अनावृत वर्णनो की योजना बिल्कुल नही है। पात्रो के वचन भी मर्यादित है। आधार-ग्रन्थो मे प्राप्त पात्रो के आवेगपूर्ण वचनो को तुलसी ने या तो छोड दिया है अथवा प्रसग को सक्षिप्त रूप देकर चरित्रो को परिष्कृत रूप मे उपस्थित किया है।

रामचन्द्रिका के मगलाचरण मे केशव ने गणेश और सरस्वती की वन्दना के साथ श्रीराम वन्दना भी की है, यथा—

"पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण,
....
नेति नेति कहै बेद छांडि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।[2]

इससे प्रकट है कि केशव राम को परब्रह्म मानते थे। ग्रन्थ-रचना के कारण के रूप मे स्वप्न-वृत्तान्त की योजना करते हुए केशव की यह स्पष्टोक्ति है—

"सोई परब्रह्म श्रीराम है अवतारी अवतारमणि।"[3]

इस प्रकार हम देखते है कि केशव के राम मे ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा है।

रामचन्द्रिका के प्राय. सभी पात्रो मे वाक्-पटुता, विदग्धता और प्रत्युत्पन्नमति के गुण दिखाई पड़ते है। वास्तव में दर्बारी कवि एवं राजनीति के दाँव-पेच के ज्ञाता केशव के व्यक्तित्व मे ये गुण हैं। उनकी समसामयिक परिस्थितियो ने केशव के व्यक्तित्व को ऐसा रूप प्रदान किया। कई स्थानों

---

1 हिन्दी साहित्य पृ. 154 2. रामचन्द्रिका 1—3
3 वही 1 17

पर पात्रो की यह वाग्विदग्धता रमणीय भी है, किन्तु केवल इसी गुण की प्रधानता के कारण पात्रो के स्वभाव का वैविध्य प्रकट नही हो सका। उदाहरण के तौर पर राम की वाक्पटुता और कूटनीतिज्ञता के लिये परशुराम-प्रसग को लिया जा सकता है। उपर्युक्त प्रसग मे पाठक यह अनुभव करते है कि राम वाक्कौशल के द्वारा परिस्थिति को अनुकूल बना लेते है। राम के तीनो भाई जब क्रोध करके धनुष पर बाण चढा लेते है, उस समय राम तुरन्त परशुराम के पौरुष की प्रशसा करके उनका क्रोध शीतल कर देते है। जब राम समझते है कि शान्त वचनो से परशुराम का क्रोध बढता ही जायगा तो वे अपने क्रोध का प्रदर्शन करते हुए कहते है—

"भृगुनन्द सभारु कुठार मैं कियौ सरासन युक्त सर।"[1]

कविवर केशव का ध्यान पात्रो की चरित्रगत विशेषताओ के विश्लेपण की अपेक्षा विविध छन्दो के प्रयोग एव अलकारो की राशि से अपने काव्य को सज्जित करने पर लगा हुआ प्रतीत होता है। घटनाओ का वर्णन संक्षेप मे करके क्षिप्र गति से आगे बढते रहने की प्रवृत्ति के कारण पात्रो का शील चित्रण पूर्ण रूप से हो नही सका। कही-कही अलकार-प्रयोग पात्रो के चरित्र को क्षति पहुँचानेवाला सिद्ध हुआ है। अपने भाई लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र के सामने जनकपुरी का वर्णन करते हुए राम कहते हैं—

"जलजहार शोभित तब जहँ प्रगट पयोधर पीन।"[2]

उपर्युक्त पक्ति मे 'पयोधर' शब्द के प्रयोग के कारण श्लेष अलकार की स्थिति है। पाठक कवि के अलकार-प्रयोग पर मुग्ध हो सकते है। जलाशयवाला अर्थ भी सुन्दर है, किन्तु स्त्रियो के पक्ष मे उत्तुग पयोधरो का वर्णन अविवाहित राम के मुँह से गुरु विश्वामित्र के सामने कराना उचित नही प्रतीत होता। इसी प्रकार वनवास करने जाते हुए राम माता कौशल्या को विधवा-धर्म का उपदेश देते है जो औचित्य की दृष्टि से ठीक नही है। किसी भी परिस्थिति मे पुत्र के द्वारा माता को विधवा धर्म का उपदेश अनुचित है और विशेषकर दशरथ के जीवित रहते हुए किये गये इस उपदेश से अनौचित्य स्पष्ट रूप मे दिखायी देता है।

दरबारी कवि होने के कारण केशव राजसी वातावरण से और राजन्य-वर्ग के क्रियाकलापो से पूर्ण परिचित थे। केशव ने अपने लक्षणग्रन्थो मे शृगार लीलाओ के जो चित्र उतारे है और बुढापे का जो वर्णन किया है, उसके

---

1. रामचन्द्रिका 7—42 2. वही 5—16

आधार पर कह सकते है कि केशव के व्यक्तित्व में विलासिता और भोग-परायणता के सस्कार वर्तमान थे। इसके अतिरिक्त संस्कृत के शृगाररस-प्रधान काव्यग्रन्थो से भी केशव पर्याप्त प्रभावित थे। परिणामतः केशव मे कथा-कथन की अपेक्षा वर्णनात्मकता पर अधिक आग्रह है। इस दृष्टि-विशेष का प्रभाव केशव के पात्रचित्रण पर भी लक्षित होता है। फिर भी केशव राम के एकपत्नीव्रत और सीता के पातिव्रत्य गुण मे कोई परिवर्तन नही कर सकते थे। वास्तव मे रामकथा पर लेखनी-विन्यास करनेवाला कोई भी कवि इस इतिवृत्त के मौलिक आदर्शों मे परिवर्तन करने का साहस नही कर सकता। केशव ने रामचन्द्रिका मे जलक्रीडा, सगीत, नृत्य आदि का जो वर्णन किया है, वह राजसी वातावरण के सर्वथा अनुकूल है।

'पद्मावत' मे जायसी का लक्ष्य लौकिक प्रेमकथा के माध्यम से अलौकिक ईश्वर-तत्व और साधना-मार्ग का प्रतिपादन था। अत: काव्यगत प्रसगो मे पात्र अलौकिक प्रेमतत्व की व्यंजना मे सहायक प्रतीकों का काम करते है। कई कष्ट सहकर राजा रत्नसेन का अन्ततोगत्वा पद्मावती को प्राप्त करना इस तथ्य का व्यंजक है कि साधक कई कष्टों का सामना करते हुए साधनारत रहेगा तो अन्त मे भगवान की प्राप्ति होगी। अन्यथा शुद्ध लौकिक दृष्टि से विचार किया जाय तो एक तोते के मुँह से किसी सुन्दरी की रूप-प्रशसा सुनकर अपना राज्य और विवाहित पत्नी को छोड़कर जोगी बननेवाला और बन-बन की धूल छाननेवाला राजा का पात्र हास्यास्पद प्रतीत होगा। फिर भी पात्रो के हर व्यवहार का प्रतीकार्थ निकाला नही जा सकता। उदाहरणार्थ पद्मावती और उसकी सखियो ने मानसरोवर मे जो जलक्रीडा की है, उसका आध्यात्मिक पक्ष मे कोई विशेष अर्थ प्रतीत नही होता। किन्तु इतना अवश्य है कि उक्त प्रसग के माध्यम से अपनी प्रतीकात्मक दृष्टि की अभिव्यक्ति करने का अवसर कवि को प्राप्त हुआ। कवि ने इस प्रसग मे प्रतिपादित किया है कि सारी सृष्टि पद्मावतीरूपी परमात्मा की प्रतिच्छाया से अनुप्राणित है और सारा जगत् उस परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। निम्नोक्त पक्तियों मे यही भाव द्रष्टव्य है—

"नैन जो देखे कंवल भए, निरमल नीर सरीर
हँसत जो देखे हस भए, दसन जोति नग हीर ॥"[1]

जायसी के द्वारा चित्रित मुख्य पात्र रत्नसेन और पद्मावती मे मुख्यतः आदर्श प्रेम की उदात्तता ही दृष्टिगत होती है। मानव जीवन मे प्रेम एक

1 पद्मावत मानसरोदक खण्ड 65

भाग मात्र है, वही सब कुछ नहीं है। किन्तु जायसी ने प्रणय-भाव का अंकन पूर्ण निष्ठा के साथ किया है। इस परिधि का अतिक्रमण करके जीवन की विविध परिस्थितियों में पात्रों की भावनाओं का विस्तृत विश्लेषण इस महाकाव्य में सम्भव नहीं था, यद्यपि इस काव्य के उत्तरार्द्ध में प्रणय-भाव के अतिरिक्त कुछ अन्य परिस्थितियों की योजना अवश्य की गई है।

चन्दबरदायी गोरेलाल, जोधराज आदि वीरकाव्य-प्रणेताओं की दृष्टि नायक के शौर्यप्रधान पक्ष के चित्रण में अधिक रमी है। वीरचरित्र की अवतारणा के कारण ही इन काव्यों का महत्त्व है। शौर्य से तात्पर्य नायक के द्वारा समरभूमि में प्रदर्शित बाहुविक्रम है। साथ ही नायकों की दानवीरता, धर्म-परायणता आदि गुणों के वर्णन के कारण चरित्रचित्रण उदात्त बन गया है। अपने में अनुरक्त नायिका से राक्षस विवाह करना उनके वीरचरित्र की ही विशेषता है। पृथ्वीराज ने संयोगिता से और महाराणा राजसिंह ने रूपकुमारी से अपने बाहुबल के आधार पर ही विवाह किया था। इसके अतिरिक्त शरणागत की रक्षा का गुण पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो और राजविलास के नायक पात्रों में दिखाया गया है। इस प्रकार वीरकाव्य-प्रणेताओं ने इतिहास प्रसिद्ध वीरपुरुषों को अपने महाकाव्यों में नायक रूप में ग्रहण करके उनके चरित्र में युद्धवीरता, दानवीरता, दयावीरता धर्मपरायणता, शरणागत-रक्षा आदि उज्जवल गुणों को प्रदर्शित किया है।

नायक के चरित की उदात्तता को चित्रित करने के लिए प्रतिनायक के रूप में शहाबुद्दीन, औरंगजेब और अलाउद्दीन की पात्रकल्पना हुई है। हम्मीररासो और हम्मीरहठ में चूहे के भय से अलाउद्दीन के भीत होने की घटना संयोजित हुई है, जो प्रतिनायक की तुच्छता का द्योतन करती है। किन्तु इतिहास में प्रसिद्ध सम्राट अलाउद्दीन इस कोटि का कायर नहीं हो सकता। ऐसे हीन शत्रु को पराजित करने में हम्मीर का कोई महत्त्व दिखाई नहीं पड़ता। वास्तव में महाकाव्य के अन्तर्गत प्रतिनायक पात्र को भी नायक के तुल्य बल, पराक्रम से युक्त दिखाने से ही नायक के शौर्य को दीप्ति मिल सकती है। बाल्मीकि ने रामायण में रावण के शौर्य और राम के महत्त्व की विवृति राम के द्वारा 'आदित्यहृदय के पाठ की घटना के माध्यम से की है। राम-रावण-युद्ध की भीषणता का वर्णन अनन्वय अलंकार के प्रयोग से बाल्मीकि ने किया है।

इन वीरोल्लास-प्रधान महाकाव्यों में कुछ स्त्री पात्र दिखाई पड़ते हैं, जिनका चरित्रांकन नगण्य रूप में उल्लेखात्मक रीति से किया गया है। इन

स्त्रियो का कोई व्यक्तित्व दिखाई नही पड़ता। वे पुरुष की भोग-लोलुपता के साधनमात्र है। पृथ्वीराजरासो मे सयोगिता, इंछिनी आदि नायिकाएँ इसी रूप मे दिखाई पडती है। हम्मीररासो मे रूपविचित्रा कामभावना-प्रधान नायिका है। प्रेमिका के रूप मे शशिव्रता, पद्मावती और सयोगिता दिखाई पडती है। किन्तु राजमहल मे पहुँच जाने के बाद उनका प्रयोजन नायक की भोगेच्छा की परितृप्ति तक सीमित है। इन चरित्रों मे विविधता और व्यक्तित्व का वैचित्र्य बिल्कुल नही है। इस को हम मध्यकालीन सामन्ती भावना ही कह सकते है। पुरुषों का बहुपत्नीक होना सामाजिक नैतिकता के विरुद्ध नही समझा गया। यह भी भावना प्रचलित रही कि पुरुष जितनी अधिक स्त्रियो से विवाह करे, उसका पुरुषत्व उतना ही श्रेष्ठ माना जाय।

वीरकाव्यो के चरित्रचित्रण के विषय मे यह स्मरणीय है कि कवियो का ध्यान सजीव पात्रों की निर्मिति पर विशेष रूप से लगा नही है। इतिहास की अधिकाधिक घटनाओं को पद्यबद्ध रूप दिये जाने के कारण इन काव्यो मे चरित्र-चित्रण को यथोचित स्थान प्राप्त नही हुआ। डॉ. टीकमसिंह तोमर के अनुसार—'पात्रो के चरित्रचित्रण की ओर इन कवियो का ध्यान विशेष रूप से नही गया था। ये ग्रन्थ ऐतिहासिक काव्य थे, इसीलिए अधिकाश कवियो ने इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण करके ऐतिहासिक घटनावली, पात्रो, स्थानो तथा अन्य सामग्री की विस्तृत सूची प्रस्तुत की। अलंकार-प्रयोग, चमत्कारवाद, रीति-परम्परा का अनुसरण आदि ऐसे कारण थे, जिनके फलस्वरूप चरित्र-चित्रण की ओर इन कवियो का ध्यान बहुत कम गया था।[1]'

तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यो मे भी राम को प्राय परमात्मा के अवतार रूप मे चित्रित किया गया। रगनाथ रामायण मे इस दृष्टि की परिचायक कुछ प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार है—

(1) जब विश्वमित्र राजा दशरथ से यज्ञरक्षार्थ राम लक्ष्मण को अपने साथ भेजने की याचना करते है, तब यह भी कहते है—"हे पापरहित दशरथ! राम को साधारण बालक मत समझो। यह लोभ भी त्याग करो कि यह मेरा पुत्र है। यह क्रतुकर्ता, क्रतुस्वरूप, यज्ञ-भाग के भोक्ता तथा लोकाराध्य है।"[2]
(2) रावण के नागपाश से जब राम-लक्षण बाधे जाते है तब महर्षि नारद स्मरण दिलाते हैं कि राम भगवान है। तब राम गरुड का स्मरण करते हैं।[3]

---

1. हिन्दी साहित्य—द्वितीय खण्ड, पृ. 147

2 ———— ायण पृ 23 3. वही पृ 415

'रामाभ्युदय' मे राम के ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति करनेवाले स्थल प्राप्त होते है, जैसे–

(1) देवताओ की स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीमन्नारायण उनको अभय प्रदान करते हुए आश्वस्त करते है कि दशरथ के यहाँ पुत्ररूप मे अवतीर्ण होकर लोकपीडक रावण का सहार करेगे।

(2) धनुर्भंग के प्रसग मे प्रयुक्त शब्दावली इस प्रकार है–"विधाता के विधाता और परब्रह्म दाशरथि ने जब धनुप तोडा तो सारे ब्रह्माण्डो मे प्रियकर नादब्रह्म व्याप्त हो गया।[1]"

रामाभ्युदयकार सक्षिप्त रूप मे घटनाओ की योजना करने एव क्षिप्र गति से कथा को आगे बढाने के विपय मे केशवदास से तुलनीय हैं। 'रामाभ्युदय' मे युगधर्म के अनुसार अलकार-प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न करने एव विविध वर्णनो का सयोजन करने की दृष्टि मुख्य रूप से दिखाई पड़ती है। मार्मिक प्रसगो मे रमकर पात्रों की मानसिक स्थितियों का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति इस काव्य मे परिलक्षित नही होती।

कतिपय आलोचको के द्वारा तिक्कनामात्य की नाटकीय काव्य-शैली और पात्रो के शीलचित्रण की कुशलता बहुधा प्रशसित है। 'निर्वचनोत्तर रामायण' की भूमिका मे कवि ने स्पप्ट रूप से कहा कि किसी भी परिस्थिति मे धीरोत्तम और नरोत्तम रामनरेश का सद्वृत्तान्त आदरणीय है, अत: मै उत्तररामकथा की रचना मे प्रवृत्त हुआ हूँ।[2] इस कथन से यह सूचना मिलती है कि इस काव्य मे कवि की दृप्टि राम के धीरत्व एव उत्तम नरत्व को चित्रित करने की रही है। तिक्कनामात्य ने औचित्य की सीमाओ का अतिक्रमण नही करते हुए सीता-राम के उद्यानविहार, जलक्रीडा आदि प्रसगो की योजना की है। इस योजना से स्पष्ट है कि उन दोनो का परस्पर अनुराग उत्तम कोटि का है। लोकनिन्दा के कारण जब राम ने सीता का परित्याग किया, तब उनके हृदय मे पत्नी के प्रति अनुराग एव लोकरजक नृपत्व के भाव विद्यमान थे। कवि ने इस प्रसग के माध्यम से राम की धीरोदात्तता और सीता की पति-भक्ति का भव्य चित्रण किया है। सीता-परित्याग के उपरान्त एकान्त मे बैठे राम की व्यथा इस काव्य मे वर्णित हुई है और यह अश वाल्मीकि रामायण मे नही है। इस प्रकार 'निर्वचनोत्तर रामायण' मे राम के धीरत्व एव धर्म-परायणत्व चित्रित करने की दृष्टि रही है।

---

1 रामाभ्युदय 4–94 2. निर्वचनोत्तर रामायण- 1–10

नन्निचोड कवि के 'कुमारसम्भव' मे प्राय सभी पात्र देवता है, क्योकि यह 'दिव्य-कथा' है। कवि कालामुख शैव-सम्प्रदाय मे दीक्षित भक्त था और इसी कारण महादेव जी के उत्कर्ष-प्रतिपादन की दृष्टि सम्पूर्ण काव्य मे परिलक्षित होती है। तुलसी के 'मानस' मे भी महादेव जी का पात्र है, किन्तु वहाँ शिव रामभक्त के रूप मे दिखाई पडते हैं। नन्निचोड ने महादेव को 'देवाधीश' 'अज' और 'आद्य' कहा है।

शिव की वदना करते हुए नन्नेचोड ने लिखा है—"विष्णु एक हजार धवल कमल लाकर शिव की पूजा कर रहे थे। शिव के सिर पर हिरण के चिह्न से युक्त चन्द्रमा को देखकर विष्णु को भ्रम हुआ कि यह कल की पूजा मे लगा हुआ मुरझाया फूल है। उस फूल को हटाने मे प्रवृत्त विष्णु का श्यामल हस्त देखकर चन्द्रमा ने समझा कि राहु उसे ग्रसित करने आ रहा है। इन दोनो के भ्रम पर हँसनेवाले परमेश्वर मेरी इच्छाओ को पूर्ण करे।"[1] इसमे दृष्टिगत रमणीय कल्पना के साथ साथ विष्णु को शिव के भक्त के रूप मे प्रदर्शित करने की कवि-दृष्टि ध्यान देने योग्य है। कहने का तात्पर्य है कि राम को कुछ महाकाव्यो मे परब्रह्म के रूप मे चित्रित करने की जो दृष्टि रही है, वैसे ही तेलुगु के 'कुमारसम्भव' महाकाव्य में महादेव जी को परमतत्व के रूप मे चित्रित करने की दृष्टि प्रधान है। अन्य पात्रो का चित्रण भी इसी दृष्टि से किया गया है।

विजयनगर युग मे सम्राट श्रीकृष्णदेवराय, तिरुमलदेवराय आदि के संरक्षण मे और दक्षिणान्ध्र युग मे रघुनाथ भूपाल, विजयराघव नायक आदि के सरक्षण में कई महाकाव्य विरचित हुए। इनमे मुख्य दृष्टि रीतिबद्ध शैली-शिल्प तथा अतिशय अलंकरण की अभिव्यक्ति-क्षेत्र मे है तो दूसरी ओर भाव-व्यजना के क्षेत्र मे शृगार अथवा प्रणयभावो को विशेष रूप से निबद्ध करने की है। इन काव्यों का चरित्रचित्रण इस प्रवृत्ति से परिचालित है। कहने का यही तात्पर्य है कि भाव की दृष्टि से इन काव्यो के नायक शृगारनायक है और नायिकाएँ प्रणयभाव की साकार मूर्तियाँ है। अन्य पात्रो का चित्रण भी इसी भाव के अनुसार किया गया है। समृद्धि एव वैभव के युग मे पात्रों का ऐसा चित्रण स्वाभाविक है। स्वर्गीय श्री कादूरि वेंकटेश्वरराव का अनुमान है कि उस समय के वास्तविक जीवन मे जो प्रेमी साहसी युवक थे वे ही काव्य-नायकों के रूप मे ढल गये हो तथा शृगारवती रमणियाँ नायिकाओ के रूप में

1 कु 1 3

कदाचित् प्रस्तुत कर दी गयी हो।[1] जीवन मे जो प्रेमभाव है, वह इन काव्यों मे चित्रित पात्रों के व्यवहारो तथा विचार-पद्धति की प्रेरक शक्ति रहा है। इसको हम युगधर्म कह सकते है।

मनुचरित्र के प्रवर, वरूधिनी, स्वरोचि आदि पात्रो के माध्यम से, तिम्मनार्य को सत्यभामा और श्रीकृष्ण पात्रो के द्वारा तथा सूरनार्य-निर्मित सरस्वती, चतुर्मुख, कलभाषिणी, सुगात्री आदि चरित्रो के आधार पर जीवन का स्वादिष्ट प्रणय पक्ष का ही मनोहर प्रतिपादन किया गया है। कुछ काव्यो मे गतानुगतिकता एव रीतिप्रियता ने चरित्रचित्रण को दबा दिया, किन्तु पेद्दना, तिम्मना, सूरना आदि प्रतिभाशाली कवियो ने सजीव पात्रों की सृष्टि की है। इन शृगारकाव्यो मे प्राय पुराणो मे प्राप्त अति स्वल्प वस्तु को ग्रहण करके कविकल्पनाजन्य नवीन अशो और वर्णनो से विभूषित करके विन्यस्त किया गया है। अत: चरित्रचित्रण रामायण की भाति व्यापक पट पर नही हुआ, बल्कि 'नैषधीयचरित' की पद्धति से सीमित घटनाओ के अन्दर किया गया है।

'आमुक्तमाल्यदा' मे पात्र-चित्रण पर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया। कवि की दृष्टि रम्य ढग मे अलंकार-योजना करने एव विस्तार से ऋतु-वर्णन करने मे विशेष रूप मे रमी है। वास्तव मे इस महाकाव्य से यही आशा की जा सकती है कि आदि से अन्त तक काव्य के शरीर मे अण्डाल के जीवन की विविध घटनाओं की योजना से उस भक्तिन का चरित्र चित्रित होता। किन्तु कवि ने वैष्णवधर्म के उत्कर्ष-प्रतिपादन की दृष्टि से प्रासगिक कथाओं को आवश्यकता से अधिक मात्रा मे स्थान दिया। परिणामतः गोदादेवी के चरित्र को क्रमपूर्वक विकसित करने मे बाधा पडी। स्थूल रूप मे यही वर्णित हुआ कि अण्डाल विष्णु मे अतीव अनुरक्त थी और अन्त मे भगवान से उनका विवाह सम्पन्न हुआ। किन्तु उनके गुणो का क्रमिक विकास दिखाया नही गया।

पिंगलि सूरनार्य ने अपने युग के अधिकाश कवियो के अपवाद-स्वरूप चरित्रचित्रण की कुशलता का परिचय दिया। डॉ. सी. आर रेड्डी, आचार्य लक्ष्मीकान्तम् आदि विद्वानो ने सूरनार्य की इस निपुणता की श्लाघा की है। डॉ जी. वी. कृष्णाराव के अनुसार—"सूरनार्य के द्वारा निर्मित पात्र अमूर्त विचारों के प्रतीक या मानवीकृत रूप नही हैं, बल्कि बोधगम्य तथा सजीव है। अपनी मन स्थिति के अनुरूप उनकी महत्त्वाकाक्षाएँ तथा लक्ष्य हैं। उनके

---

1 तेलुगु काव्यमाला—निवेदन पृ 7

जीवन की कुछ घटनाएँ यद्यपि अतिप्राकृत शक्तियो से प्रभावित है, तथापि उनके मन तथा हृदय अनिवार्य रूप मे मानवीय एव स्वाभाविक है। देवता और ऋषि भी अपने दैवीय अश के बावजूद मानवीय प्रवृत्तियो का परिचय देते हैं। एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि पात्रो के कारण कथानक अथवा कथानक के कारण पात्रों की स्थिति मे कोई हानि नही पहुँची।"[1] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि इस महाकवि ने चरित्र-चित्रण में सजगता का पर्याप्त ध्यान रखा है और इस दिशा मे अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है।

तेलुगु के ऐतिहासिक महाकाव्यो में कवियो का ध्यान पात्रों के शील-निरूपण पर बहुत कम गया है। इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि कवि ऐतिहासिक घटनावली को या लोकप्रसिद्ध जनश्रुतियों को काव्यो मे निबद्ध करने मे ही सन्तुष्ट थे। उदाहरणार्थ 'श्रीकृष्णराय विजय' मे कवि कुमार धूर्जटी ने विद्यानगर का निर्माण, श्रीकृष्णदेवराय की विजय-यात्राओ, उत्कल-नरेश की कन्या से विवाह आदि ऐतिहासिक घटनाओ को सयोजित किया। काव्य के अन्तिम भाग मे नैषधकाव्य के अनुकरण पर कीरसदेश की योजना की गयी है। किन्तु कृष्णदेवराय, मन्त्रिवर तिम्मरुसु और गजपति नरेश की पुत्री के गुणों का उल्लेखनीय चित्रण प्राप्त नही होता। अत· कह सकते है कि इन ऐतिहासिक महाकाव्यो मे कवियो का ध्यान चरित्र-चित्रण पर केन्द्रित नही था।

आलोच्य महाकाव्यों के पात्रो को कुछ निश्चित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। कथानक के मेरुदण्ड के रूप मे प्राप्त अत्यन्त मुख्य पात्र नायक तथा नायिका पात्र है, जिनसे काव्यगत प्रत्येक घटना निकटतम रूप से सम्बन्धित होती है। इनसे भिन्न पात्रो की योजना प्रधान पात्रो के चरित्र को उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से की जाती है। इस आधार पर पात्रों के तीन भेद हैं, यथा—नायक पात्र, नायिका पात्र और अन्य पात्र।

मानस, रामचन्द्रिका, रामाभ्युदय, रगनाथरामायण और उत्तररामायणो मे राम नायक है और सीता नायिका। वीरकाव्यो मे पृथ्वीराज, श्रीकृष्ण-देवराय, हम्मीर, छत्रसाल आदि नायक हैं। इन काव्यो मे नायिकाओ का चित्रण न्यूनतम रूप मे हुआ है। 'पद्मावत' नायिकाप्रधान काव्य है, जिसमें पद्मावती नायिका है और रत्नसेन नायक। नायक की पत्नी होने के कारण नागमती को भी नायिका कह सकते है। किन्तु पद्मावती की तुलना में नागमती

---

1 Stud·es in Kalapurnodayam Page 65

गौण पात्र है। नामकरण एवं मुख्य कथावस्तु की दृष्टि से कह सकते हैं कि 'आमुक्तमाल्यदा' नायिकाप्रधान महाकाव्य है, जिसमें गोदादेवी नायिका है। 'वसुचरित्र' आदि शृंगाररस-प्रधान काव्यों में नायक तथा नायिका की योजना अनिवार्य रूप से मिलती है।

आलोच्य महाकाव्यों में नायक पात्र के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं— (1) परब्रह्म रूप (2) राजन्य वर्ग की भावनाओं का मूर्तरूप (3) शृंगारी या प्रेमी रूप। यद्यपि प्राय सभी नायकों में ये तीन रूप मिलते हैं, तो भी प्राधान्य-विवक्षा से कोई एक रूप प्रमुख हो गया है। उदाहरणार्थ 'रामचरितमानस' में राम का परब्रह्म रूप अधिक मुखर है और तिक्कनामात्य के द्वारा चित्रित राम में धीरोदात्त नृपत्व का भाव प्रमुख है। 'पारिजातापहरण' के श्रीकृष्ण का प्रेमी रूप मुख्यतः चित्रित हुआ है। ऐतिहासिक काव्यों में नायक का राजत्व रूप प्रखर है।

शृंगाररस की दृष्टि से काव्यशास्त्र में नायकों के अनुकूल तथा दक्षिण नामक भेद माने गये हैं। श्रीकृष्ण दक्षिण नायक हैं। पृथ्वीराज तथा रत्नसेन भी दक्षिण नायक हैं। अर्जुन दक्षिण नायक है। श्रीराम, वसुराज और नल अनुकूल नायक हैं। विद्यानाथ के शब्दों में 'एकायत्तो अनुकूल स्यात्' और 'तुल्यो अनेकत्र दक्षिण।[1]'

नायिकाओं के भी विभिन्न रूप लक्षित होते हैं, जैसे परमतत्व का प्रतीक, परब्रह्म की छाया या माया, पतिपरायणा उत्तम गृहिणी, आदर्श प्रेमिका और माधुर्य भाव की उपासिका। जायसी की पद्मावती अध्यात्मपक्ष में परमतत्व है, और लौकिक पक्ष में शृंगारवती पद्मिनी नायिका। तुलसी द्वारा चित्रित सीता पारलौकिक पक्ष में परब्रह्म की छाया माया है। केशव ने भी सीता के माया होने का उल्लेख किया है। रामकाव्यों में सीता लौकिक पक्ष में पति-परायणा उत्तम गृहिणी के रूप में चित्रित है। सत्यभामा का चित्रण तिम्मनार्य ने मानिनी नायिका के रूप में किया है। 'पद्मावत' में नागमती रूपगर्विता नायिका के रूप में चित्रित हुई है। गोदादेवी दिव्य शृंगार या माधुर्य भाव की उपासिका है।

कुछ महाकाव्यों में प्रतिनायक पात्र का विधान है। रामकाव्यों में रावण प्रतिनायक है। उसके अशुभ कर्मों और अत्याचारों के वर्णन के द्वारा कुकर्मों के परिणामस्वरूप उसकी पराजय का प्रतिपादन किया गया है। इसके अलावा तुल्य बलपराक्रम से युक्त प्रतिनायक को परास्त करनेवाले नायक के महत्त्व को

---

1. प्रतापरुद्रीयम्—नायक प्रकरण पृ 16 17

प्रकट करने में प्रतिनायक पात्र सहायक हुआ है। पृथ्वीराजरासो मे शहबुद्दीन प्रतिनायक है। इसमे कृतघ्नता एव नृशसता का प्राधान्य है। वह पृथ्वीराज को पराजित करके उसको बन्दी ही नही बनाता, बल्कि आँखे निकलवाकर अपनी पैशाचिक प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करता है। 'पद्मावत' मे किसी की परिणीता को प्राप्त करने के लोभी अलाउद्दीन प्रतिनायक है। हम्मीररासो मे प्रतिनायक के रूप मे अलाउद्दीन चित्रित किया गया है। हम्मीर के उदात्त एव शरणागत-रक्षक रूप के चित्रण मे प्रतिनायक पात्र सहायक सिद्ध हुआ है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के सन्दर्भ में चरित्रों का विभाग सात्विक, राजस और तामस प्रकृतियों के अनुसार आदर्श और सामान्य नामक दो रूपो में किया। उनके अनुसार सीता, राम, भरत और हनुमान सात्विक आदर्श के पात्र है और रावण तामस आदर्श का पात्र है। सामान्य या राजस प्रकृति के पात्रो के अन्तर्गत दशरथ, लक्ष्मण, सुग्रीव और कैकेयी को माना गया है। शुक्ल जी का कथन है कि आदर्श चरित्रो में आदि से अन्त तक सात्विक या तामस वृत्ति का निर्वाह किया गया है। इन चरित्रो मे प्रकृतिभेद सूचक अनेकरूपता नही मिलती। हनुमान मे प्रदर्शित सेवकत्व, भरत मे निर्मल अन्त करण, राम मे धीरता, गम्भीरता, आर्तत्राणपरायणता आदि, सीता मे पतिपरायणता सात्विक आदर्श है। रावण मे धर्मविरोध, लोककटकत्व और अत्याचार तामस आदर्श है। सामान्य वर्ग के अन्तर्गत शुक्ल जी ने जिन पात्रो को स्थान दिया है, उनमे प्रकृतिभेदसूचक अनेकरूपता मिलती है।

मूलस्रोतो के आधार पर पात्रों के तीन भेद किये जा सकते हैं—(1) इतिहास-प्रसिद्ध (2) पुराण-प्रसिद्ध (3) विशुद्ध काल्पनिक। पृथ्वीराज, हम्मीर, अलाउद्दीन, सुजानसिह, संयोगिता, छत्रसाल, प्रतापरुद्र, श्रीकृष्णदेवराय आदि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र है। रामचरितमानस, रामाभ्युदय, वसुचरित्र, मनुचरित्र, कुमारसम्भव आदि के पात्र पौराणिक है। कलापूर्णोदय काल्पनिक महाकाव्य है, अत. उसके प्राय सभी पात्र काल्पनिक है। यद्यपि श्रीकृष्ण, नारद आदि नाम पुराण-प्रसिद्ध अवश्य है। पद्मावत मे राघवचेतन और देवपाल काल्पनिक पात्र है।

आचार्य लक्ष्मीकांतम् जी ने सूरनार्य के महाकाव्यो मे प्राप्त स्त्री पात्रों के दो भेद किये है—(1) प्रज्ञा-मूर्तियाँ एवं प्रणय-मूर्तियाँ। प्रज्ञा-मूर्तियाँ कार्य-निर्वहण-कुशल एवं बुद्धिवैभव से युक्त हैं। प्रणय-मूर्तियों का तात्पर्य प्रेमभाव की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित नायिकाओं से है। 'प्रभावती प्रद्युम्न' में

शुचिमुखी नामक हसी, शृगारनैषध का हस एव पद्मावत का तोता प्रज्ञाप्रधान रूप मे लक्षित होते है। कलापूर्णोदय की सुगात्री, मधुरलालसा, कलभाषिणी और हिन्दी की पद्मावती तथा नागमती प्रेमप्रधान पात्र हैं। यद्यपि लक्ष्मीकातम् जी ने यह विभाजन स्त्री-पात्रो के विषय मे किया है, फिर भी पुरुष-पात्रो को इस विभाजन के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है। सूरनार्य के चरित्र-चित्रण के विवेचन के सन्दर्भ में ही आचार्य लक्ष्मीकांतम् जी ने मुख्य पात्र तथा प्रतियोग पात्र के नाम से एक और विभाजन किया है। उनका मत इस प्रकार है—"इस कवि के दोनो काव्यो में प्रायः सभी प्रधान पात्रों के प्रतियोग पात्र मिलते है। कलभाषिणी के लिये रंभा, मणिकन्धर के लिये नलकूबर, नारद के लिये तुबुर, अभिनव-कौमुदी के लिये मधुरलालसा और शुचिमुखी के लिये रागवल्लरी प्रतियोग रूप मे सन्निविष्ट पात्र हैं। इन युग्मो के पात्र परस्पर स्पर्धा प्रकट करते हैं जिससे उनका अतर प्रस्फुटित होता रहता है और साथ ही कथावस्तु को गति मिलती है। इस शिल्पविधि का अनुसरण सूरनार्य ने केवल पात्रचित्रण मे ही नही प्रत्युत् रूपचित्रण मे भी किया था।"[1] कदाचित् सूरनार्य के पात्रो पर ही यह विभाजन घटित होता है।

आलोच्य महाकाव्यो मे चरित्रचित्रण सम्बन्धी कवियो के दृष्टिकोण की मीमासा तथा पात्रो का विविध दृष्टियों से वर्गीकरण के उपरान्त चरित्रचित्रण मे अपनायी गयी पद्धति अब विचारणीय है। महाकाव्यो मे चरित्रचित्रण की निम्नलिखित शैलियाँ लक्षित होती है—

(1) जीवन के व्यापक क्षेत्र मे पडनेवाली विविध घटनाओ के पट पर पात्रो के कायिक, मानसिक तथा वाचिक व्यवहारो को अकित करना।

(2) जीवन के सीमित एकांगी रूप मे चरित्रचित्रण।

(3) लौकिक या आध्यात्मिक सिद्धान्त की दृष्टि से प्रतीक रूप में पात्र परिकल्पना।

(4) उल्लेखात्मक रीति अर्थात् पात्रों की विशेषताओं के विश्लेषण के स्थान पर कवि द्वारा सक्षिप्त कथन।

(5) मनोवैज्ञानिक रीति जिसमे कवि पात्रो की मनोभावनाओं को प्रदर्शित करता है।

(6) आलंकारिक शैली अर्थात् अलंकारों के माध्यम से चरित्रगत विशेषताओं को ध्वनित करना।

---

1. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वमु—चतुर्थ भाग, पृ. 1217

जीवन के व्यापक पक्ष को लेकर चरित्रचित्रण रामचरितमानस मे किया गया है। तुलसी ने मार्मिक प्रसगो का निर्वाह चलते ढग से नही प्रत्युत् रुचिपूर्वक किया है। इसमे पात्रो की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से चित्रित हुई है। मानसकार ने कई सुन्दर सवादो की योजना करके पात्रो की विशेषताओ को दर्शाया है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार "राम-लक्ष्मण के चरित्रों का चित्रण आख्यान के भीतर सबसे अधिक व्यापक होने के कारण सबसे अधिक पूर्ण है। भरत का चरित्र जितना अंकित है, उतना सबसे उज्ज्वल सबसे निर्मल और सबसे निर्दोष है। पर साथ ही यह भी है कि वह उतना अधिक अंकित नही है। राम से भी अधिक जो उत्कर्ष उनमे दिखायी पडता है वह बहुत कुछ चित्रण की अपूर्णता के कारण, उतनी अधिक परिस्थितियों मे उसके न दिखाये जाने के कारण।"[1]

शुक्ल जी ने भरत के चरित्र के उत्कर्ष के लिए चित्रण की अपूर्णता को कारण ठहराया है। किन्तु नायक होने के कारण राम का चरित्र जितनी अधिक परिस्थितियो मे दिखाया जा सकता है, उतनी परिस्थितियो मे नायकेतर पात्र भरत को तुलसी ही नही रामकाव्य लिखनेवाला कोई भी कवि प्रदर्शित नही कर सकता। हाँ, यदि भरत नायक होते तो राम का चरित्र गौण रूप मे ही दिखाया जाता। कहने का यही तात्पर्य है कि किसी भी सफल कवि के द्वारा किसी आख्यान के अन्तर्गत अधिक प्रसगो की योजना कुछ पात्रो को ही व्यापक रूप मे दिखा सकती है, सभी को नही।

जिन काव्यो मे पात्रों को शृगारी भावनाओ के प्रतिरूप आदर्श प्रेमी, वीर पुरुष आदि के रूप मे चित्रित किया गया है, वहाँ जीवन का व्यापक रूप अकित नही होता। उदाहरणार्थ 'मनुचरित्र' मे चित्रित किया गया कि प्रवर धर्मनिष्ठ और सयमित स्वभाव का था। एकात प्रदेश मे अनिन्द्य सुन्दरी के द्वारा तरह-तरह के प्रलोभन दिये जाने पर भी प्रवर अपने आदर्श से विचलित नही होता। इस आदर्श के प्रतिपादन के लिये कवि ने 'प्रवर' की परिकल्पना की है। इस आदर्श की सिद्धि के उपरान्त काव्य मे इस पात्र के दर्शन नही होते। 'पद्मावत' मे रत्नसेन और पद्मावती का चित्रण भी जीवन के व्यापक क्षेत्र मे नही हुआ है।

पद्मावत मे पात्र-चित्रण की प्रतीक-शैली दृष्टिगत होती है। सस्कृत के प्रबोध-चन्द्रोदय मे प्रतीकशैली प्रयुक्त हुई है। आधुनिक महाकाव्य कामायनी

---

1 गोस्वामी तुलसीदास पृ 101

मे लज्जा, श्रद्धा, इडा आदि पात्र मानवीय मनोभावो के प्रतीक है। जायसी ने अपने कथानक के उत्तरार्द्ध में पात्रो की लौकिक प्रवृत्तियो को भी महत्व दिया है। फिर भी 'पद्मावत' के शीलचित्रण की शैली मुख्य रूप से प्रतीक-शैली है। 'कलापूर्णोदय' मे रूपानुभूति, मधुर लालसा, कलापूर्ण आदि पात्र प्रतीक ही है। इन प्रतीको के माध्यम से चतुर्मुख ब्रह्मा और वाणीदेवी की श्रृंगारलीला का आख्यान प्रस्तुत किया गया है। प्रतीक-शैली की कुछ सीमाएं होती हैं। कवि का ध्यान प्रतीक-निर्वाह पर लगे रहने के कारण स्वाभाविकता की मात्रा कम होती है।

उल्लेखात्मक रीति से किये गये चरित्रचित्रण को श्रेष्ठ नही मान सकते। उल्लेखमात्र से पाठकों के मन मे पात्रो का प्रत्यक्षीकरण नही होता। जब तक परिस्थिति के अन्दर रखकर पात्र की क्रिया-प्रतिक्रिया को दर्शाया नही जाता तब तक चरित्रचित्रण पूर्ण नही होता। कवि पात्र के गुण-दोषो का उल्लेख कर सकता है। पर साथ ही उस उल्लेख की पुष्टि नहीं होती तो चित्रण पूरा नही होता। तुलसी ने अपनी ओर से पात्रो के गुणो का उल्लेख किया है, साथ ही उन उल्लेखो के अनुरूप पात्रो के कार्य भी दिखाये है। 'कलापूर्णोदय' मे पात्रों के व्यवहार के माध्यम से चारित्रगत विशेषताओ को प्रकट किया गया है। इसके विपरीत 'रामाभ्युदय' मे बहुत सक्षेप मे राम के राजतिलक की तैयारी से लेकर वनगमन तक की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। राम की गुरुभक्ति, राम के प्रति दशरथ का वात्सल्य तथा कैकेयी के स्वार्थ को चित्रित करने मे कवि की तत्परता दिखाई नही पडती। 'रामचन्द्रिका' के कवि ने भी इस शैली का परिचय खूब दिया है।

पात्रो के शीलचित्रण मे मनोवैज्ञानिक पद्धति, जिसमें पात्रों की मनोभावनाओ को सवाद या घटना के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, बहुत ही उत्कृष्ट पद्धति है। गोस्वामी तुलसीदास ने मंथरा-कैकेयी संवाद मे तथा चित्रकूट प्रसग में इस पद्धति का प्रयोग किया है। केशव के अंगद-रावण-संवाद मे यह रीति दृष्टिगत होती है। तिक्कनामात्य ने 'निर्वचनोत्तर रामायण' मे तथा तिम्मनार्य ने 'पारिजातापहरण' मे इस पद्धति से चरित्रचित्रण किया है। राम के मन मे सीता के चरित्र पर पूर्ण विश्वास था। इसके बावजूद लोकनिदा का ख्याल करके श्रेष्ठ राजा के आदर्श के पालन के रूप में राम ने सीता का परित्याग किया। सीता को वन भेजते समय राम के मन में भयकर अग्नि-ज्वाला थी। इस परिस्थिति से गुजरते हुए उन्हे अपार दुःख मिला था। फिर भी उन्होंने धीर के कारण दुःख प्रकट होने नहीं दिया राम के

आचरण के माध्यम से मनोवैज्ञानिक रीति से तिक्कनामात्य ने चरित्रचित्रण किया है। इसी प्रकार मानवती नायिका सत्यभामा की विविध मनोदशाओं का अकन तिम्मनार्य ने 'पारिजातापहरण' मे किया है। अपनी सखी के प्रति सत्यभामा के वचनो, श्रीकृष्ण से उनके सवाद और सत्या के आचरण से उस नायिका के मन की व्यथा, नायक के प्रति अपार प्रेम, सपत्नी के प्रति ईर्ष्या आदि भावनाओं का अच्छा चित्रण किया गया है।

आलोच्य महाकाव्यो में परिलक्षित चरित्रचित्रण का विवेचन करने के उपरान्त कह सकते है कि प्राय: सभी रामकाव्यों मे राम को परब्रह्म रूप मे चित्रित करने की दृष्टि रही है। तुलसी, केशव, रामभद्र, पापराज और रगनाथ-रामायणकार इस दृष्टिकोण से युक्त कवि है, किन्तु तिक्कनामात्य ने राम के धीरोदात्त नृपत्व का चित्रण किया है। 'कुमारसम्भव' मे नन्नेचोड ने महादेवजी को सभी देवताओ के अधिपति अर्थात् परमतत्व के रूप मे चित्रित किया है। मर्यादामार्गी तुलसी के पात्र सामाजिक-नैतिक मूल्यो का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोस्वामी जी ने इसलिये स्रोत-ग्रथो मे प्राप्त अनुचित अशो का परिष्कार करके चरित्रचित्रण को आदर्शमय बना दिया है। जिन काव्यो मे कवियो की दृष्टि अलकार-प्रयोग एव वर्णनात्मकता पर विशेष रूप से लगी रही वहाँ चरित्रचित्रण पर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया। रीतिप्रियता और शृगारी मनोवृत्ति के बावजूद कुछ प्रतिभाशाली कवियो ने सजीव रूप मे पात्र परिकल्पना की है।

चरित्रचित्रण की मनोवैज्ञानिक, आलंकारिक, प्रतीकात्मक आदि विविध शैलियाँ होती हैं। एक ही महाकाव्य मे एकाधिक शैलियों का प्रयोग सभव है। गोस्वामी तुलसीदास, तिक्कनामात्य, तिम्मनार्य और सूरनार्य के महाकाव्यो मे मनोवैज्ञानिक रीति से किया गया चरित्रचित्रण मिलता है।

षष्ठ अध्याय

रसव्यंजना

हिन्दी के महाकाव्य स्रष्टाओ में तुलसी, केशव, जायसी, चन्द आदि ने तथा तेलुगु के नन्नेचोड, पेद्दना, रामराजभूषण आदि महाकवियो ने विविध घटनाओ और वर्णनो का निर्वाह रसात्मक रीति से करके अपनी भावुकता एवं सवेदनशीलता का परिचय दिया है। वास्तव में भारतीय काव्य-दृष्टि ने काव्य मे रस को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। आचार्य विश्वनाथ के मत में– "रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य। तेन विना तस्य काव्यत्वा-भावस्य प्रतिपादितत्वात्।"[1] ध्वनिकार के शब्दो मे भी–"नहि कवेरितिवृत्तमात्र निर्वहणेनात्मपद लाभ। इतिहासादेव तत्सिद्धे"[2] इस प्रकार भारतीय मत में कथा को निर्वहण-चातुरी की अपेक्षा रस का महत्त्व हजारों गुना है।

आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यो मे कवियो ने रससम्बन्धी अपनी दृष्टि का परिचय प्राय. दिया है। नन्नेचोड ने अपनी कृति को 'नवरसभावभरित' और 'रसबन्धुर' स्वीकार किया है।[3] काव्यरस के आस्वादन मे अक्षम अरसिको को लक्ष्य करके इस कवि ने लिखा–"अल्प व्यक्ति रसयुक्त काव्य की प्रशंसा नही करके नीरस काव्य को ही उत्कृष्ट मानते है जैसे मक्खियो का समुदाय गन्ने के रस को छोडकर खोई पर भिनभिनाता है।"[4] रामराजभूषण अपने महाकाव्य को 'रसोचित चमत्क्रियाकल्प भव्यरूप' मे रचने मे प्रवणचित्त थे।[5] तिक्कनामात्य ने कुकवि को बेमेल शब्दो की योजना से रसभग करनेवाला कहा।[6] प्रकारान्तर से कवि ने सूचित किया है कि काव्य मे रस का अतीव महत्त्व है और रस के अपकर्षक दोषो से बचने की नितान्त आवश्यकता है।

स्वर्गीय काटूरि वेकटेश्वरराव जी ने तेलुगु काव्यधारा को कालक्रम को दृष्टि से तीन भागों में विभक्त करते हुए ईस्वी 1500–1850 के कालखण्ड मे रचित काव्यो के सबध मे लिखा–"पूर्ववर्ती महाभारत आदि रचनाओ की भाति धर्मोपदेश या कथाकथन इस युग के काव्यो मे मुख्य नही है। विभाव, अनुभाव आदि से परिपुष्ट रस ही इन काव्यों मे प्रधान है।"[7] तेलुगु के अधिकांश महाकाव्य इस समयावधि में विरचित है। सोलहवी शती तो महाकाव्य-विधा का उत्कर्षकाल है। कहने का यही तात्पर्य है कि तेलुगु के महाकाव्यों मे रस की व्यजना के प्रति कविगण दत्तचित थे।

---

1. साहित्यदर्पण-प्रथम परिच्छेद, पृ 19 2. वही, पृ. 18
3. कुमारसम्भव, 1–45–47 4. वही, 1–30 5. वसुचरित्र, 1–12
6. निर्वचनोत्तर रामायण 1 16 7 तेलुगु काव्यमाला निवेदन पृ 7

हिन्दी के महाकवि काव्यजगत मे प्रतिष्ठा-प्राप्त रससिद्धान्त से और उस विषय मे सम्पन्न विचारमथन की चेतना से अवगत थे। तुलसी के महाकाव्य मे रसविषयक सकेत प्राप्त होते है, यथा—

'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि'[1]

'भावभेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा ॥[2]

'नवरस जप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तडागा ॥'[3]

मानस मे कथा-प्रसगो के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट उद्‌गारो के आधार पर श्री वैद्यनाथ सिह ने अनुमान किया है कि—"गोस्वामी जी भी रस को व्यंजना का व्यापार मानते है। जैसे मिट्टी के नये बरतन मे गन्ध पहले ही से रहती है, पर जल का सयोग होते ही वह तुरन्त व्यक्त हो जाती है और अनुभूत होने लगती है, वैसे ही सहृदय सामाजिक के अन्त करण मे रति आदि वासनाएँ पहले ही से अव्यक्त रूप से स्थित रहती है और नाटकादि के विभाव आदि व्यजकों के सयोग से व्यक्त हो जाती है। वासना का जागना ही रसास्वाद है। गोस्वामी जी का यही मत जान पडता है।"[4]

'पृथ्वीराजरासो' मे व्यजित रस के विषय मे कवि ने कहा है—

"रासउ असभु नवरस सरस छन्दु चदु किअ अविय सम

शृंगार वीर करुणा विभत्सय अद भुत्तहसंतसम।"[5]

अत स्पष्ट है कि हिन्दी के आदि महाकाव्य मे यथास्थान नवरसो की योजना की गयी है। सूफी कवि जायसी के महाकाव्य मे—

"कवि बियास कँवला रस पूरी। दूरि सो नियर, नियर सो दूरी ॥

नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरि जो नियरे, जस गुड़ चाँटा।"[6]

अर्थात् कवि और व्यास की कृति मे रस का कटोरा भरा हुआ है। दूरस्थ रसिक के लिये वह पास है, किन्तु निकटस्थ अरसिक के लिये वह दूर है। निकटवाले के लिये दूर ऐसे जैसे फूल के सग काँटे के लिये पुष्प का रस दूर रहता है। दूरवाले के लिये निकट ऐसे जैसे चीटे के लिये गुड। यहाँ पर कवि द्वारा प्रयुक्त रस शब्द का तात्पर्य अलौकिक सौन्दर्य भी है। केशवदास हिन्दी के प्रमुख आचार्यो में गणनीय हैं और उनकी 'कविप्रिया' में रस को अलकार के अन्तर्गत मानकर रसवद् अलकार का निरूपण किया गया है।

---

1. मानस—बालकाण्ड, श्लोक—1
2. वही, 9—5
3. वही, 37—5
4. मानस मे रीतितत्व, पृ. 127
5. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 327
6. पद्मावत—स्तुतिखण्ड- 24

'रसिकप्रिया' में कवि ने नवरसों को उदाहरण सहित निरूपित करके शृंगार को रसराज माना है।

"नवहू रस के भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सब को केशवदास हरि, नायक है सिंगार॥"[1]

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्य-प्रणेताओं ने काव्य में रस के महत्व को स्वीकार किया है और अपनी कृतियों में रस-व्यंजना की है।

अंगीरस तथा अंगरस

विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में शृंगार, वीर, शान्त में से कोई एक अंगीरस होता है और शेष अंगरस। तेलुगु के अधिकांश महाकाव्यों में अंगीरस शृंगार है, जैसे वसुचरित्र, कलापूर्णोदय, कुमारसंभव आदि में। 'श्रीकालहस्ति-माहात्म्य' का प्रधान रस शान्त है। 'आमुक्तमाल्यदा' में गोदादेवी नायिका है, अतः प्रधान रस शृंगार है। यह शृंगार देवता विषयक रति में परिणत होने के कारण शान्तरस के अन्तर्गत माना जा सकता है। किन्तु भक्ति की रसरूप में अलग सत्ता माननेवाले आचार्यों के मतानुसार यहाँ भक्तिरस है।

चन्दबरदाई, जोधराज, मान, सूदन, गोरेलाल आदि के महाकाव्यों में प्रधान रस वीर है, जो आदि से अन्त तक के समस्त वर्णनों एवं घटनाओं में ओतप्रोत है। रामचन्द्रिका में मुख्यतः संयोग शृंगार, विप्रलंभ शृंगार तथा रामकृत राज्यनिन्दा आदि प्रसंगों में शान्त रस दिखाई पड़ता है। तो भी "राम के चरित्र में वीरत्व की प्रधानता होने तथा अन्य पात्रों में भी वीर भावनाओं के बाहुल्य के कारण रामचन्द्रिका का अंगीरस वीर है। आधिकारिक कथा की दृष्टि से भी इसका प्रधान रस वीर ही है, क्योंकि नायक राम असीम साहस तथा वीरता का प्रदर्शन करने के अनन्तर राज्यफल को प्राप्त करते हैं।"[2] किन्तु स्मरणीय है कि वाल्मीकि रामायण में करुण को अंगीरस माना जाता है। विश्वनाथ के अनुसार—"मालतीमाधवे रतिः, लटकमेलके हासः, रामायणे शोकः, महाभारते शमः"[3]

रामचरितमानस के अंगीरस के विषय में मतभेद हो सकता है। यदि भक्ति को स्वतन्त्र रस माना जाय तो कह सकते हैं कि इस महाकाव्य का अंगीरस भक्ति है। क्योंकि मानस में दास्यभावरूपी भगवद्रति की व्यंजना

---

1. रसिकप्रिया, 1–19
2. रामकाव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ. 375
3. साहित्यदर्पण-तृतीय परिच्छेद, पृ. 105

बहुत हुई है। किन्तु स्थान-स्थान पर की गयी विषय-सुखो की निन्दा एव मुख्यत. उत्तरकाण्ड के आधार पर मानस को शान्तरस-प्रधान महाकाव्य मान सकते है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार भक्ति को शान्तरस के अन्तर्गत नही माननेवाले आलंकारिक पण्डितराज जगन्नाथ है। उनकी मान्यता का यही आधार है कि शान्त का स्थायी भाव विराग है और भक्ति तो परानुरक्ति होती है।[1]

इस प्रकार हिन्दी के अधिकाश महाकाव्यो मे वीररस अगीरूप मे प्रतिष्ठित है। शान्त और शृगार-प्रधान महाकाव्य भी है। तेलुगु साहित्य में बाहुल्य शृगारप्रधान महाकाव्यो का है।

अब क्रमश. शृगार, वीर, करुण आदि नवरसों की व्यजना से संबन्धित स्थलो पर विचार किया जायेगा।

शृंगाररस

पृथ्वीराजरासो मे नायक के द्वारा सयोगिता, इच्छिनी आदि नायिकाओं के प्रति किये गये प्रणय व्यवहारो के वर्णन के द्वारा शृगार की अच्छी व्यंजना हुई है। विवाह से पूर्व और उसके उपरान्त के नख शिख वर्णन, अनग-क्रीडा और विहार ऐसे स्थल है जिनमे सयोग शृगार की व्यजना को गयी है। जायसी ने पद्मावती और रत्नसेन के मिलन-प्रसग को लेकर सयोग शृगार का अच्छा परिपाक किया है और इस परिपाक मे षट्ऋतु-वर्णन उद्दीपन रूप में प्रयुक्त है। जायसी ने नख-शिख वर्णत की योजना करके नायिका के सौन्दर्य को प्रत्यक्ष किया है। 'पद्मावत' के काव्य-वैभव के विधायक अंशों मे विप्रलभ शृगार की मनोहर व्यंजना भी एक है। पद्मावती तथा नागमती को आश्रय बनाकर कवि ने विरह-वर्णन किया है। इस सिलसिले मे बारहमासा का विधान है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल के अनुसार नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।[2]

'मानस' मे शृगार के दोनो पक्षो की व्यजना राम और सीता को परस्पर आलबन और आश्रय बनाकर की गयी है। किन्तु कवि की मर्यादित दृष्टि के कारण शृगार को पवित्र तथा सक्षिप्त रूप मे वर्णित किया गया है। अपभ्रश के चरितकाव्यों एव चन्द, जायसी, केशव आदि की भाति का नग्न शृगार का मानस मे पूर्ण अभाव है। पुष्पवाटिका प्रसंग में तथा विवाह-प्रसग मे संयोग शृगार का रमणीय विधान है। इसके उपरान्त—

---

1 मानस में रीतितत्व, पृ 128 2 जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृ 39

"हे खग मृग हे मधुकरश्रेणी। तुम देखी सीता मृगनयनी।"[1]
आदि उक्तियो मे वियोग शृगार की सुन्दर व्यजना है।

केशव ने सीता-राम के वाटिका-विहार, विलास-क्रीडा आदि वर्णनो मे सयोग शृंगार को तथा सीता-हरण के उपरान्त के प्रसगो मे वियोग शृगार की व्यजना की है। मानस की भाति रामचन्द्रिका' मे भी प्रकृति को उद्दीपन विभाव के रूप मे उपस्थित किया गया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

"धाम को राम समीप महाबल सीतहि लागत है अति शीतल।[2]
"हिमांशु सूर सो लगै सो बात वज्र सी बहै।
दिशा लगैं कृसानु ज्यों, विलेप अंग को दहैं।"[3]
देखि राम वर्षाऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदायी॥[4]

नन्नेचोड ने सती-शिव की विलास क्रीडाओं में सयोग शृंगार, शिव-पार्वती के विरह-वर्णन मे विप्रलभ शृगार, शिव-पार्वती-विवाह और उनके आनन्द-भोग में संयोग शृगार का सुन्दर विधान किया है। उद्दीपन विभाव के रूप मे प्रकृति का चित्रण करके रसोचित वातावरण उपस्थित किया गया है। वसुचरित्र, पारिजातापहरण, मनुचरित्र, रामाभ्युदय आदि प्रमुख काव्यो मे शृगार की व्यजना पर कवियो ने विशेष ध्यान दिया है। नायिकाओ का रूपचित्रण नखशिख-वर्णन के माध्यम से इन काव्यों मे किया गया है। विरहिणी नायिकाओ ने मलयानिल, चन्द्रमा एव कामदेव को उपालंभ दिये है। वसुचरित्र आदि मे नायिकाओ के वीणावादन के सुन्दर चित्र प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यों मे शृगार रस का अच्छा परिपाक किया गया है। उभय क्षेत्रो के कवियो ने नख-शिख वर्णन, उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण आदि समान उपादानो का अवलम्ब ग्रहण किया है।

वीररस

हिन्दी के महाकाव्य-वाङ्मय मे वीररसात्मक स्थल यथेष्ट रूप में उपलब्ध होते हैं। चन्द, सूदन, लाल, मान आदि के द्वारा वीर रस को काव्यजगत् में समुन्नत स्थान प्राप्त हुआ है। पृथ्वीराज, छत्रसाल आदि नरेशों की युद्धवीरता, धर्मवीरता तथा दयावीरता का चित्रण किया गया है। उत्तम प्रकृतिवाले नरेशो का उत्साह इन काव्यो में भली भांति चित्रित है। पद्मावत मे युद्ध के प्रसंगों में वीररस की अवतारणा है। रामचरितमानस का लकाकाण्ड

---

1. मानस—अरण्यकाण्ड, 30—5
3 वही 12—42
3. रामचन्द्रिका, 9-37
4 वही 13—11

युद्ध वर्णनो से भरा हुआ है। राम-रावण-युद्ध, लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, धनर्भग के अवसर पर लक्ष्मण के वचन आदि मानस के वीररसात्मक स्थल हैं। राम की दानवीरता, धर्मवीरता एव दयावीरता के व्यंजक स्थल भी मानस मे प्राप्त होते है। रामचन्द्रिका मे स्थान-स्थान पर रस की व्यंजक उक्तियो का समावेश है।

तेलुगु के महाकाव्यो मे यद्यपि वीररसात्मक प्रसगो का अभाव नहीं है, तो भी हिन्दी की तुलना मे ऐसे स्थल कम है। 'कुमारसंभव' मे षडानन-तारक युद्धो मे वीररस की अच्छी योजना है। 'रामाभ्युदय', 'निर्वचनोत्तर रामायण' आदि रामकाव्यो मे भी युद्ध सबधी उत्साह का अच्छा चित्रण है। वास्तव मे नाचन सोमनाथ के 'उत्तर हरिवश' नामक काव्य मे वीरो के युद्धोत्साह सबधी बडे ही मार्मिक चित्र उपलब्ध होते है।

रौद्ररस

यह रस युद्ध के प्रसंगों मे अधिकतर दिखाया जा सकता है। युद्ध-वर्णनो में वीररस के सहायक के रूप मे रौद्ररस की व्यजना होती है। नन्नेचोड कृत 'कुमारसंभव' के दक्षयज्ञध्वस के प्रसग मे तथा तारकासुर-कार्तिकेय युद्ध के अवसर पर रौद्ररसात्मक स्थल सयोजित हैं। 'रगनाथ रामायण', 'भास्कर रामायण', 'रामाभ्युदय' आदि रामकथात्मक महाकाव्यों मे धनुर्भग के प्रसग मे परशुराम का क्रोध, समुद्र पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करनेवाले राम का क्रोध तथा रावण से लड़ते समय राम का क्रोध वर्णित करके रौद्ररस की योजना की गयी है। मानस मे भी इन प्रसगों मे रौद्ररस की अवतारणा है। इनके अतिरिक्त चित्रकूट मे सेनासहित आगत भरत को देखकर लक्ष्मण की प्रतिक्रिया तथा जनक की बातो पर लक्ष्मण का रोष रौद्ररसात्मक हैं। रासो में कैवासवध में पृथ्वीराज की क्रोधपूर्ण मुद्रा भी इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है।

करुणरस

रामकथा में कई शोकभावनायुक्त प्रसग हैं। आदिकाव्य को काव्य शास्त्रियों ने करुणरस-प्रधान माना ही है। हिन्दी एव तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यो में यद्यपि करुण अगीरस नहीं है तथापि रामवन-गमन, दशरथ की मृत्यु, सुमन्त का पश्चात्ताप, लक्ष्मण शक्तिवाला प्रसग, मन्दोदरी का विलाप आदि स्थलो में करुणरस का पोषण किया गया है। 'रामाभ्युदय' मे चित्रकूट-स्थित सीता-राम का, दशरथ मृत्यु की खबर पाकर शोक करना, राममुद्रिका को देखकर सीता जी का विलाप और राम के लिए दशरथ-विलाप ऐसे स्थल हैं जो करुणरस की व्यजना मे रामभद्र कवि की समर्थता को

प्रमाणित करते हैं। 'मानस' मे करुणरस की मंदाकिनी कतिपय स्थलों मे प्रवाहित है। निम्नोक्त पक्तियाँ उदाहरण के तौर पर द्रष्टव्य है—

"सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥
करि बिलाप सब रोवहि रानी। महाविपत्त किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दु खहू दुःख लागा। धीरज हू कर धीरज भागा॥[1]"

और

"गृह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषाद बरनि नहि जाई॥
अहह मदमनु अवसर चूका। अजहुंन हृदय होत दुइ टूका॥
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुं कृपन धनराशि गंवाई॥[2]॥

केशव ने सीता-परित्याग के सन्दर्भ में तथा लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति की है, जो करुण रस का श्रेष्ठ उदाहरण है। ककटि पापराज एव तिक्कनामात्य ने सीता विलाप के प्रसगों मे, करुणरस का अच्छा परिपाक किया है। 'कुमारसभव' मे शिव की नेत्राग्नि मे भस्मीभूत कामदेव के लिए रतीविलाप, समरभूमि से तिरोगमन करनेवाले तारकासुर का वर्णन ऐसे स्थल है, जिनमें करुणरस का सुन्दर विधान दृष्टिगत होता है।

भयानकरस

युद्ध वर्णन के अवसर पर भयानक रस की व्यजना के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है। रामचरितमानस मे परशुराम से भयभीत राजाओं के वर्णन में इस रस की व्यजना की गयी है—

"देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा॥[1]

इसी प्रसग मे रामचन्द्रिकाकार ने और सुन्दर ढग से भयानक रस की व्यजना की है। क्योकि परशुराम के आगमन पर मस्त हाथियों का मद उतर जाता है, दुन्दुभी-ध्वनि समाप्त की जाती है और क्षत्रिय लोग भीति के कारण कवच काटकर नारी-वेष धारण कर लेते है और हथियार डालकर पलायन करते है। केशव की पक्तियाँ इस प्रकार है—

"मत्त दति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेस केसव दुन्दुभी नहि बज्जहीं॥

---

1 मानस-अयोध्याकाण्ड, 152-4

2 वही, 144-4

3 मानस—बालकण्ड, 269—1

डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटिकै तन त्रान एकहि नारि भेषन सज्जहीं ॥[1]

तुलसी ने शिव विवाह, राम-धनुर्भंग, कैकेयी-क्रोध, राम का समुद्र पर क्रोध, राम के बनगमन के बाद अयोध्या की दशा आदि स्थलो पर भयानक रस की योजना की है। तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यों मे इन अवसरो पर इस रस का पोषण हुआ है। उदाहरणस्वरूप रंगनाथ रामायण मे युद्धकाण्ड के अन्तर्गत राम के क्रोध की प्रतिक्रिया के रूप मे समुद्र की भीति को प्रकट करनेवाली पक्तियाँ द्रष्टिव्य हैं। 'रामाभ्युदय' मे राम की समरसन्नद्धता का आतंक कपिवरो, दिग्गजो, ब्रह्मलोक-निवासियों तथा वैकुण्ठ पर दिखाया गया है। कुमारसभव मे नन्नेचोड ने कार्तिकेय के युद्ध के सन्दर्भ में नाचनेवाली प्रेतात्माओ, भ्रमण करनेवाले गिद्धो, लडने-झगडनेवाले पिशाचों, भूतो और शृगालो से युक्त रणभूमि का वर्णन किया है। इससे भयानक रस की निष्पत्ति होती है। पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो आदि वीर-काव्यो मे युद्धवर्णन के दौरान इस रस की व्यजना हुई है।

बीभत्सरस

कवियो ने युद्ध के प्रसगो के अन्तर्गत वीर, रौद्र और भयानक रसो के साथ बीभत्सरस के लिए अवकाश निकाल लिया है। नन्नेचोड ने रणभूमि की तुलना यमराज के रसोईघर से करते हुए मृतवीरों के शरीर-खण्डो का वर्णन किया है। कवि ने यह भी कल्पना की है कि मरे हुए सैनिकों के कटे हुए अग एक दूसरे से इस रीति से मिले हुए थे, मानो यमराज ने भोजन करके वमन कर दिया हो। 'मानस' में युद्ध संबंधी प्रसगों के अन्त में बीभत्स रस को स्थान मिला है। 'रगनाथ रामायण' में भी ऐसे वर्णन हैं, जिनमें जुगुप्सा भाव की योजना की गयी है। केशव ने लवकुश-युद्ध प्रसग मे रक्त की नदियो के प्रवाहित होने और अनेक मृत शरीरो का वर्णन करके बीभत्स रस की अवतारणा की है। पृथ्वीराजरासो मे युद्धो के अन्तर्गत योगिनियो का रुधिरपात, गिद्धो का चिल्लाना आदि दृश्यो की योजना करके बीभत्स रस को स्थान दिया है। जोधराजकृत हम्मीरदेव युद्ध-प्रसंग की निम्न पक्तियाँ इस दृष्टि से उदाहरणीय है—

'परे भीर एते दुहू खेत सूरं।
बहै नीर ज्यों रक्त वाहंत कूरं ॥

---

1. रामचन्द्रिका, 7—2

नची जुग्गनी और भैरव सु नच्चैं ।
भखै गिद्ध आमिष्ष जंबू सु रच्चैं ॥"[1]

अद्भुतरस

जहाँ पर अलौकिक वस्तु का आलबन रूप मे तथा उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन रूप मे किया जाता है, जहाँ विस्मय स्थायीभाव है, वहाँ अद्भुत रस की स्थिति मानी गयी है। तुलसी ने राम की शिशुलीला के वर्णन के अवसर पर इस रस की अवतारणा की है।

"एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलना पौढाए॥
....
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा॥[2]

इसके अतिरिक्त सती के द्वारा राम की परीक्षा लेना, राम का पराक्रम देखकर परशुराम का आश्चर्यचकित होना, हनुमान जी का रूप-विस्तार तथा सकोच आदि प्रसंगो मे अद्भुत रस की योजना है। केशव ने भरद्वाज ऋषि के आश्रम में बाघनियों का स्तन्यपान करनेवाले मृगों, हाथी के दाँतो पर बैठे सिंहो, सर्प के फनो पर नृत्य करनेवाले मयूरो आदि का वर्णन किया है। 'कलापूर्णोदय' में तपोवन-वर्णन के सन्दर्भ में बाघनियों को चाटनेवाली गायों और बाघनियों का स्तन्यपान करनेवाले मृगों का वर्णन किया गया है। कविवर धूर्जटी ने ब्रह्मा एवं वशिष्ठ की तपस्या-वर्णन के प्रसगो मे अद्भुत रस की सृष्टि की है। नन्नेचोड ने अपूर्व वस्तुओं का वर्णन करके इस रस का समावेश किया है। तारकासुर का मायायुद्ध और राक्षसो के कार्य नन्नेचोड के महाकाव्य मे अद्भुत रसात्मक स्थल है।

हास्यरस

विकृत आकार, वेष, भूषा तथा चेष्टाओ से हास्य उत्पन्न होता है और हास इस रस का स्थायी भाव है। 'कुमारसम्भव' में शिव जी का सकेत पाकर देवांगनाओ ने जब इन्द्र पर सुगन्धित जल की वृष्टि की, उस समय के देवराज के चित्रण मे सुकुमार हास्य की सृष्टि की गयी है। दक्षयज्ञ के सन्दर्भ में भयभीत होकर पलायन करनेवाले देवताओं के वर्णन मे हास्यरस का अच्छा परिपाक हुआ है। निर्वचनोत्तर रामायण मे तिक्कनामात्य ने सीता-राम के वनविहार के सन्दर्भ में मृदु हास्य का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है।

---

1. हम्मीररासो, पृ. 917
2 मानस—बालकाण्ड, 201—1—4

रामभद्र कवि ने ऋष्यशृंग और वेश्याओं के वार्तालाप के आधार पर हास्यरस की मनोहर योजना की है।

मानस मे शिवजी के बरात के वर्णन मे हास्यरस की अवतारणा है। नारदमोह-प्रसग मे भी हास्यरस है। आचार्य शुक्ल ने इसे शिष्ट हास्य कहा है। रामचन्द्रिका मे केशव ने एक प्रसग की योजना की है, जिसमे मन्दोदरी तथा उसकी सखियाँ अगद को मूर्ख बनाती हैं। अंगद मित्रो को यथार्थ स्त्रियाँ समझकर पकडता है तो हास्यरस का उदाहरण उपस्थित हो जाता है। जायसी ने पद्मावती के द्वारा रत्नसेन के परिहास की योजना करके इस रस की प्रतीति करायी है।

शान्तरस

शान्तरस को कुछ आलोचको ने अन्य रसो की तुलना में उत्कृष्ट माना है। इस मान्यता का कारण बताया जाता है कि यह मूलभूत रस और प्रकृतिरस है, जबकि अन्य रस विकृतिरस है। विकृतियाँ प्रकृति से उत्पन्न होती हैं और फिर प्रकृति मे ही विलीन हो जाती है। किसी निमित्त को लेकर रत्यादि स्थायीभाव प्रकट होते है और उस निमित्त के दूर होने से फिर शान्तरस ही प्रकाशित होता है। शान्तरस को प्रधान रस माननेवाले आचार्य है आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त तथा भट्टतौत।[1]

तुलसी ने शान्तरस की व्यजना मानस मे कई स्थानो पर की है। ससार की असारता का कथन और विषय-सुखों की भर्त्सना के कारण इस रस का समावेश हुआ है। इतना ही नही मानस के अगीरस के रूप मे भी शान्त ही सुप्रतिष्ठित है। शान्तरस का एक उदाहरण नीचे उद्धृत किया गया है।

"क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥[2]

केशव ने इस प्रकृतिरस की अवतारणा रामकृत राज्य-श्री निन्दा, बचपन के व्यवहार-जन्य दुःख, यौवन तथा बुढ़ापे के कष्टो का वर्णन आदि स्थलो मे की है। जायसी ने पद्मावत के समूचे काव्य-शरीर में शृंगार के साथ साथ शान्तरस की भी प्रतिष्ठा की है। इस काव्य के अन्तिम भाग में अलाउद्दीन जब एक मुट्ठी राख उठा लेता है और कहता है कि यह पृथ्वी झूठी है तो यहाँ पर निर्वेद-भाव ही प्रधान है।

तेलुगु महाकाव्यो में विशिष्ट 'कुमारसभव' में कवि ने अपने दार्शनिक

---

1. नन्नेचोड्डुनि वस्तुकविता, पृ. 55 2. मानस-किष्किधाकाण्ड 11-2 3

दृष्टिकोण तथा स्वीकृत इतिवृत्त के अनुरूप शान्तरस को समुचित स्थान प्रदान किया है। मनुचरित्र मे पेद्दनार्य ने वर्णित किया है कि स्वारोचिष मनु ने शाँति शान्ति, दया, सत्य तथा शुचित्व मे निरत तथा अकामी होकर चिरकाल तक तपस्या की। इस मनु ने अपने सम्मुख प्रत्यक्ष नारायण की स्तुति विविध प्रकार से की, अन्य सुखो मे अपनी विमुखता बताकर केवल दास्यसुख की याचना की।[1] उक्त प्रसग शान्तरस का अच्छा उदाहरण है। मनु के वैराग्य को काव्यान्त मे निबद्ध करने के कारण इस महाकाव्य को शान्तरस-पर्यवसायी मान सकते है।

रसाभास

अनौचित्य से प्रवृत्त रस को रसाभास माना जाता है। हिन्दी तथा तेलुगु के रामकथात्मक महाकाव्यो में राम-लक्ष्मण पर मोहित शूर्पणखा के प्रसग मे तथा सीता जी पर रावण के मोहित होने के प्रसग मे शृगार आभास है। क्योंकि वहाँ रति भाव उभयनिष्ठ नही है और धर्म-विरोधी भी है। रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा लेकर तेलुगु मे रचित महाकाव्यो मे रभा-रावण सवाद की योजना है। इस प्रसग मे रभा रावण मे अनुरक्त नहीं है, अत शृगाररस का आभास है। 'मनुचरित्र' के वरूधिनी-प्रवर प्रसग मे अनुराग केवल वरूधिनी की ओर से ही है, प्रवर की ओर से नही। अत यह रसाभास का उदाहरण है। पेद्दनार्य ने इस महाकाव्य में एक स्थान पर विरहिणी चक्रवाक पक्षी का वर्णन किया है और यह वर्णन बहुत सुन्दर भी है। किन्तु तिर्यक-निष्ठ प्रणयभाव की व्यजना के कारण इसको भी रसाभास माना जाता है। रामराजभूषण ने अपने महाकाव्य 'वसुचरित्र' में शुक्तिमती नदी तथा कोलाहल पर्वत के माध्यम से एकत्रनिष्ठ अनुराग का वर्णन किया है। अत यह भी रसाभास का उदाहरण है।

मिश्रित रस

रसमैत्री और रसविरोध का निरूपण काव्यशास्त्र में किया गया है। "वीर और शृगाररस एक आलम्बन में होने से विरुद्ध होते है।·······हास्य, रौद्र और बीभत्सरस के साथ विप्रलभ शृगार का विरोध होता है। वीर और भयानक रसो का एक आश्रय मे समावेश करना निषिद्ध है।··· · शात और शृगार रस नैरन्तर्य से एक के बाद ही दूसरे के आने से विरोधी है।"[2] काव्य-शास्त्र के इस अकुश को स्वतन्त्र प्रकृति की काव्य-प्रतिभा ने स्वीकार नही किया। परिणामत. विरोधी रसो के एक साथ सयोजन के कुछ स्थल चन्दबरदाई, जायसी, नन्नेचोड आदि के महाकाव्यो मे प्राप्त होते है।

कविवर नन्नेचोड ने 'कुमारसंभव' मे एक स्थान पर युद्ध की परिकल्पना

---

1. मनुचरित 6—101, 118

2. काव्यप्रदीप, पृ 91, 92

अगना के रूप मे की है। उस रणागना के हाथ, कटि, भ्रूलता, दृष्टि, मुख-मण्डल, उत्तुग स्तन, नखक्षत आदि के रूप में पाश, चक्र, बाण, धनुष, हाथियों के कुभस्थल आदि का वर्णन कवि ने किया है।[1] यहाँ पर युद्ध की विभीषिका के साथ अगना की शृगार-भगिमा का सयोजन बड़ा ही सुन्दर है। तेलुगु साहित्य मे नाचन सोमनाथ तथा पोतनामात्य ने सत्यभामा के आलबन मे श्रीकृष्ण के लिए शृगार के उपादानो तथा नरकासुर के लिए वीररस के उपादानो का समावेश किया है।

'पृथ्वीराजरासो' मे उत्साह और रति के मेल के कई स्थल है। कुछ प्रसगों मे कवि ने नायक-नायिका की मदनक्रीडा को युद्ध के रूप मे वर्णित किया है। एक स्थान पर नायिका की रोमावली, पीन कुच और उसकी कटि पर जगल, पर्वत, हाथी और सिंह का आरोप करके सिंह से विनती की गयी है कि वह नायिका को हाथी से बचाये।[2] जायसी ने पद्मावत मे रत्नसेन और पद्मावती की रतिक्रीडा पर युद्ध का आरोप करके शृगार और वीररस का अच्छा मिश्रण बनाया है। यह मिश्रण निम्नलिखित पक्तियो में द्रष्टव्य है।

"कहौं जूझि जस रावन रामा। सेज बिधंसि बिरह संग्रामा।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा ॥[3]"

इस प्रकार दोनो साहित्यो के महाकाव्यो मे रसात्मक स्थलो की योजना के कारण सरसता का समावेश हुआ है। इन प्रसंगों के द्वारा कवियो की भावकता तथा सवेदनशीलता का परिचय हमे मिलता है। तेलुगु के महाकाव्यो मे शृगाररस के प्रसग प्रचुर मात्रा मे मिलते है। अधिकांश महाकाव्यो में शृगार को अंगीरस का स्थान प्राप्त है। इसका मुख्य कारण सस्कृत महाकाव्यो का प्रभाव तथा तत्कालीन शासको के भोगवादी दृष्टिकोण को समझ सकते है। मर्यादावादी सन्त महात्मा तुलसी ने शृगार का अत्यन्त पवित्र रूप मे विधान किया है। इस दृष्टि से अपभ्रश के चरितकाव्यो, हिन्दी के रासो, पद्मावत और तेलुगु के अधिकाश महाकाव्यों के शृगारवर्णन से मानस मे व्यंजित शृगार भिन्न है। हिन्दी के महाकाव्यों में वीररसात्मक स्थल अपेक्षाकृत अधिक हैं, यद्यपि तेलुगु महाकाव्यों में वीररस का अभाव नही है। शृगाररस के परिपाक के अन्तर्गत हिन्दी तथा तेलुगु के कवियो ने नख-शिख वर्णन, प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण आदि समान उपादानो का अवलम्ब ग्रहण किया है। दोनों क्षेत्रो के महाकाव्य वाङ्मय में नवरसों के अतिरिक्त रसाभास तथा मिश्रित रसो के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

1. कुमारसभव, 11–180
2. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 250
3. पद्मावत–पद्मावती रत्नसेन भेट खण्ड, 318

सप्तम अध्याय

अलंकार-विधान

तेलुगु के महाकाव्यो मे प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष, इन दो रूपो मे कवियों की अलकार-विषयक दृष्टि प्रकट हुई है। प्रत्यक्ष उसको मान सकते है, जहाँ कवियो ने अलकार के सम्बन्ध मे भूमिका-भाग मे अपना मत प्रकट किया। काव्यगत पात्र या काव्यगत प्रसंगो के माध्यम से अभिव्यक्त विचार अप्रत्यक्ष की कोटि में आते हैं। कविवर नन्नेचोड के अनुसार उनका महाकाव्य 'षट्त्रिशत् अलंकारो से अलकृत है।'[1] एक अन्य स्थान पर इस कवि ने 'काव्यरूपी रत्नवीथी' की मृदुरीति से सयोजित सूक्तियो, रसव्यजना आदि विशेषताओं के साथ अलकारो से अलंकृत होना भी बताया है।[2] श्रीकृष्णदेवराय के स्वप्न मे दर्शन देकर आन्ध्रविष्णु ने इस राजा की गीर्वाण-कृतियों की प्रशसा करते हुए कहा—'तुमने उपमा, उत्प्रेक्षा और जाति (स्वभावोक्ति से) मनोहर तथा रसिको को सन्तुष्ट करनेवाला काव्य मदालसचरित की रचना की।"[3] अतुलित माधुरी महिमा से मण्डित वार्णा के लिए विख्यात धूर्जटी के काव्य मे, महेश-रचित छन्द मे नत्कीर कवि के दोष दिखाने पर यह मीमांसा की गयी कि वह दोष रस के विषय मे है, अलकार के विषय मे है अथवा शब्दयोजना के विषय मे।[4] इस प्रकार हम देखते है कि तेलुगु के प्रमुख महाकाव्यो मे कविगण अलकार-प्रयोग से अपने काव्य-शिल्प को पूर्ण बनाने मे दत्तचित्त थे।

नन्नेचोड के मत मे काव्यालकारो की सख्या छत्तीस है। तेलुगु के महा-काव्य-स्रष्टाओ मे नन्नेचोड को छोड़कर किसी ने अलकारो की सख्या की ओर निर्देश नही किया। वास्तव में अलकार "वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियाँ हैं, जिन्हें काव्यो से चुनकर प्राचीन आचार्यो ने नाम रखे और लक्षण बनाये। ये शैलियाँ न जाने कितनी हो सकती है। अतः यह नही कहा जा सकता कि जितने अलकारो के नाम ग्रन्थों मे मिलते है, उतने ही अलकार हो सकते है।"[5] नाट्यशास्त्रकार भरत से लेकर कुवलयानन्दकार अप्पय्य दीक्षित तक अलकारों की सख्या क्रमशः 3 से 121 तक बढ गई। प्राचीन आलंकारिकों में भामह ने छत्तीस अलकारों का निरूपण किया। चूंकि कविवर नन्नेचोड ने भी अलंकारों की इतनी ही संख्या मानी है, कहा जा सकता है कि इस कवि ने भामह के मत का अनुगमन किया।

---

1. कुमारसम्भव, 1–45
2. वही, 1–36
3. आमुक्तमाल्यदा, 1–13
4. श्रीकालहस्तिमाहात्म्यमु, 3–167
5. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृ 114 115

अलंकार-विधान की दृष्टि से तेलुगु महाकाव्यो के मुख्यत: दो वर्ग परिलक्षित होते हैं। 'निर्वचनोत्तर रामायण' 'रगनाथ रामायण' 'भास्कर रामायण' आदि को प्रथम वर्ग मे तथा 'मनुचरित्र' 'वसुचरित्र' 'कुमारसम्भव' आदि को द्वितीय वर्ग मे रख सकते है। प्रथम वर्ग के महाकाव्यो मे कवियो का ध्यान अलंकारो पर उतना नही गया है जितना इतिवृत्त-निर्वहण एवं चरित्र-चित्रण पर गया है। इन काव्यो मे अलकार सहज रूप से कथावस्तु के अनुकूल रूप मे अपने आप आ गये हैं, किन्तु कवियो के सजग प्रयास के फलस्वरूप नही। प्राचुर्य की दृष्टि से भी इन रचनाओ मे अलकारों का प्रयोग कम है। किन्तु दूसरे वर्ग के महाकाव्यो मे स्वल्प कथानक और वर्णन की अधिकता के कारण कवि अल्कारशिल्प के प्रति सचेष्ट रहे है। ये महाकाव्य रचनाविधान की दृष्टि से सस्कृत के परवर्ती महाकाव्य 'नैषधीयचरित' आदि से प्रभावित है, जिनमें प्रायः प्रत्येक छन्द मे कवि अपनी कलाचातुरी प्रदर्शित करने मे सजग है। चेमकूर वेंकटकवि की प्रशंसा मे उनके आश्रयदाता रघुनाथ-भूपाल ने कहा था—"आप प्रत्येक पद्य मे चमत्कार उत्पन्न करते हुए काव्य-रचना करने मे समर्थ हैं। हर प्रकार से सुन्दर काव्य आपसे हम सुन सके है। इस भूमण्डल मे आपका मार्ग अन्य कवि नही पा सकते।"[1] प्रत्येक पद्य मे चमत्कारोत्पादन की यह विशेषता इस दिशा मे कवियो के सचेष्ट प्रयास को द्योतित कर रही है। वास्तव मे विजयनगर नरेशो एव दक्षिण के नायक राजाओं का समय सामाजिक जीवन मे भी वैभवकाल रहा है। अल्करण की, कारीगरी की अथवा शिल्पकारिता की यह प्रवृत्ति तत्कालीन राजसी वातावरण मे है और साहित्यसृजन के प्रेरक तथा सरक्षक राजाओ के दृष्टिकोण मे है। तत्कालीन महाकाव्यों मे इसका प्रतिफलन हुआ है। तेलुगु के आलोचको ने इस द्वितीय वर्ग के महाकाव्यों या अनन्तर कालीन महाकाव्यो के लिये प्रबन्ध नामक काव्यविधा की परिकल्पना की है। आचार्य लक्ष्मीकातम् जी के अनुसार आलंकारिक शैली इस 'प्रबन्धकाव्य' का जीवन है अर्थात् प्राणभूत तत्व है।[2] इस प्रकार तेलुगु के पूर्वकालीन तथा अनन्तरकालीन महाकाव्यो मे अलकारविधान की दृष्टि से अन्तर है।

शाब्दिक चमत्कार और अर्थ की चारुता के आधार पर आचार्यों ने अलकारो के दो वर्ग माने है—शब्दालकार तथा अर्थालकार। आचार्य विद्यानाथ ने चक्रबन्ध, नागबन्ध आदि चित्रालंकारों का निरूपण भी शब्दा लकार-प्रकरण

1. विजयविलास 1–50
2. तेलुगु विज्ञानसर्वस्वम्—तृतीय भाग, पृ. 608

मे किया है। आचार्य केशव की कविप्रिया के अन्तर्गत सोलहवें प्रभाव में चित्रालंकारो के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। किन्तु काव्य की मनोहरता शब्दालंकारो तथा चित्रालकारो की अपेक्षा अर्थालकारों के समुचित प्रयोग पर आधारित होती है।

आचार्य रुय्यक ने अर्थालंकारो का विभाजन पाँच वर्गों के अन्तर्गत किया है, जैसे (1) सादृश्यगर्भ (2) विरोधगर्भ (3) शृंखलाबद्ध (4) न्यायमूलक और (5) गूढार्थ-प्रतीतिमूलक। इनके कई अवान्तर भेद किये गये है, जिनके भीतर अन्य अलकारो का समाहार होता है।[1] सादृश्यमूलक अलकारो मे सहजता एवं भावानुरूपता अधिक होती है। आचार्य शुक्ल का यह मत है कि श्लेष, परिसख्या आदि कृत्रिमता लानेवाले अलकार है और यमक, मुद्रा आदि खेलवाड़ अर्थात् उक्ति-चमत्कार के साधन है।[2] यहाँ पर स्मरणीय है कि काव्य मे रस या रसध्वनि प्रधान है और अन्य सब साधन उस चारुता के सहायक रूप मे प्रयुक्त होने चाहिये। अलंकार साधन मात्र है। उन्हे साध्य मान लेने पर काव्य के सौन्दर्य मे व्याघात उत्पन्न होगा। अतिशय मात्रा मे शब्दालकारों का प्रयोग रस के लिये बाधक हो सकता है। किन्तु, कुशल कवि रस और औचित्य की रक्षा करते हुए शब्दालकारो का भी प्रयोग करें तो उसको दोष मानना ठीक नही है। तेलुगु साहित्य मे रामराजभूषण तथा चेमकूर वेंकट कवि ने श्लेष तथा अनुप्रास आदि का प्रयोग रस के सहायक रूप मे ही किया है।

आचार्य विश्वनाथ ने 'अनुप्रास' शब्द का अक्षरार्थ बताते हुए कहा—"रसात् अनुगतत्वेन प्रकर्षेण न्यासो अनुप्रासः।[3] अर्थात् रस, भावादि के अनुगत प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं। यहाँ पर रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना को अनुप्रास मानने से सिद्ध हो जाता है कि रस के प्रतिकूल वर्णों की योजना को अलंकार नही माना जाता। आचार्य शुक्ल के शब्दों मे भी—"अलकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु-योजना के रूप मे हों (जैसे उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि मे) चाहे वाक्य-वक्रता के रूप मे (जैसे अप्रस्तुतप्रशसा, परिसख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में), चाहे वर्ण-विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में) लाये जाते हों, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष-साधन के लिए ही।"[4]

---

1. हिन्दी साहित्यकोश (पहला भाग), पृ. 63
2. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 143
3. साहित्यदर्पण-दशम परिच्छेद, पृ 275
4. चिन्तामणि-पहला भाग, पृ. 181

जैसे पहले कहा गया है, तेलुगु के पूर्वकालीन महाकाव्यो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलकारो का प्रयोग मुख्य रूप से हुआ है। प्राय: सभी परवर्ती महाकाव्यो मे अलकरण की प्रवृत्ति सामान्य विशेषता है। फिर भी कवियों के व्यक्तित्व एव रुचि के अनुरूप अलंकार-योजना मे अन्तर दिखाई पडता है। रामराजभूषण के व्यक्तित्व में 'सगीतकला-रहस्यनिधित्व' एवं विविध शास्त्र पाडित्य की विशेषताएँ है। इसलिए उनके महाकाव्य मे अनुप्रास, मुक्तपदग्रस्त आदि श्रुतिरंजक शब्दालकारो तथा कतिपय स्थानो पर श्लेष का सुन्दर विधान है। वास्तव में इनका 'वसुचरित्र' तथा श्लेष एव ध्वनि की मनोहरता के लिए विख्यात रहा है। यद्यपि कई पद्यो मे शब्दालकारों का बहुल प्रयोग हुआ है, तो भी इन अलकारो के कारण काव्य-सौन्दर्य में कोई बाधा नही पडी। क्योकि ये अलंकार रामराजभूषण की वाणी के अभिन्न अग हैं। श्रीकृष्णदेवराय के महाकाव्य मे साधारणतया शब्दालकारो का चमत्कार दृष्टिगत नही होता। इस कवि ने बहुत दूर की कल्पनाओ मे अपनी रुचि दिखाई है। अत' इनकी कविता मे उत्प्रेक्षाओ की बहुलता है। श्रीकृष्णदेवराय की एक अन्य कृति मदालसचरित के सबंध में कवि ने स्वयं कहा कि उसमे उत्प्रेक्षा, उपमा और स्वभावोक्ति की योजना के कारण रसिको ने उसकी बहुत प्रशंसा की। 'आमुक्तमाल्यदा' मे भी स्वभावोक्ति-प्रयोग के स्थल कम नहीं है।

'मनूचरित्र' तथा 'पारिजातापहरण' मे कवियों ने अलकार सबधी अपनी निपुणता का प्रदर्शन वर्णन के अवसर पर किया है। इन काव्यो मे शब्दालकारो पर कवियो का विशेष अनुराग दृष्टिगत नही होता, सरस प्रसगों मे अलकार-मोह के कारण बाधा उपस्थित नही होती। 'पारिजातापहरण' मे चित्रालकार हैं, किन्तु काव्य के अन्त मे उनकी स्थिति है। इस प्रकार कवियों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार महाकाव्यो के अलकार-विधान मे अन्तर उपस्थित हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि प्रथम वर्ग के महाकाव्यों मे सादृश्यमूलक अलकारो की प्रधानता है और दूसरे मे परिसख्या, विभावना आदि का बहुल प्रयोग भी दिखाई पड़ता है।

अब तेलुगु महाकाव्यो मे प्रयुक्त शब्दालंकारो के औचित्य की मीमासा की जायेगी। वसुचरित्र, विजयविलास, रामाभ्युदय आदि महाकाव्यो मे शब्दालंकारों का प्रयोग मिलता है। इस अलंकार-प्रयोग के कारण रस तथा भाव की पुष्टि की गयी है, हानि नही। मधुमास के वर्णन के सन्दर्भ में प्राप्त यह छन्द सगीत-सौन्दर्य के लिए उदाहरणीय है—

ललना जनापांग वलनावस दनंग
तुलनाभिकाभंग वो : प्रसंग
मलसानिज विलोलदलसास वरसाल
फलसादर शुकाल पन विशाल
....
कलित कलकंठ कुलकंठ काकलीवि
भासुरमु बोल्चु मधुमास वासरंबु"[1]

उपर्युक्त छन्द मे अभिव्यक्त मधुमास के वैभव में ललनाओ के कटाक्ष, मन्द पवन, रसाल-पल्लव, शुकों का आलाप, चक्रवाक रमणियाँ, कोयलो का अव्यक्त मधुर नाद आदि सभी उपादान हैं। 'अनुप्रास' अलंकार इस हर्षोल्लसित वातावरण के उत्कर्ष मे योगदान कर रहा है। इसी प्रकार कोलाहल पर्वत पर विभिन्न पक्षियो तथा अप्सराओ के मधुर गान के वर्णन मे प्रयुक्त अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

"ओकचाय ननपाय पिकगेय समुदाय
मोकसीम नाना मयूरनिनद
मोकवक नकलक मकरांक हयहेष·· ··।"[2]

सीता-राम-विवाह के अवसर पर 'रामाभ्युदय' मे अनुप्रास का सरस प्रयोग किया गया है–

"मुत्तियबुलु दोयिल्ल मुंचि मुंचि
कांचुवारल हर्षाब्धि मुंचि मुंचि
मिंचि तनचेयि मीदुगाविंचि मिंचि
विभुडु तलबालुवोसे नव्वेलदि मीद।"[3]

अनुस्वारयुक्त मकार एव चकार की बार बार आवृत्ति के कारण सीता के सिर पर 'तलब्रालु' डालनेवाले राम की त्वरा एव हर्ष का द्योतन हो रहा है। चेमकूर वेंकटकवि ने 'विजयविलास' में कई स्थानों पर वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक आदि के सुन्दर प्रयोग किये हैं। श्लेष को शब्दालंकार माना जाय अथवा अर्थालंकार—इस विषय मे काव्यशास्त्र के आचार्यों मे मतभेद है। तेलुगु साहित्य मे रचित 'राघव पाण्डवीय' एव 'हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान' आदि बहु-अर्थक महाकाव्यो मे प्राय. प्रत्येक छन्द मे श्लेष का निर्वाह किया गया है।

---

1. वसुचरित्र, 1–126
2. वही, 2–7
3. रामाभ्युदय, 4–120

'वसुचरित्र' महाकाव्य में कई स्थानों पर अन्य अलकारों के मूल में श्लेष का ही विधान है, यानी श्लेष के अभाव मे दूसरे अलकारो का अस्तित्व असम्भव है।

इस महाकाव्य के मगलाचरणवाले छन्दो मे से एक मे पूर्व-कवि-स्तुति की गयी है। इसमे कवि की श्लिष्ट शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी चातुरी को देखा जा सकता है। वह छन्द इस प्रकार है–

"महिमन् वागनुशासनुंडु सृजियिपं कुंडलीन्द्रुंडु त
न्महनीयस्थिति मूलमैनिलुव श्रीनाथुंडु प्रोवन्महा
महुलै सोमुडु भास्करुंडु वेलयिपन् सोपु वाटिचुनी
बहुलांध्रोक्तिमयप्रपंचमुन तत्प्रागल्भ्यमूहिंचेदन्।"[1]

इसमे वागनुशासन, कुडलीन्द्र, श्रीनाथ, सोम और भास्कर शब्दो से तेलुगु के महाकवि नन्नया, तिक्कना, श्रीनाथ, सोमनाथ और भास्कर का बोध होता है। विश्व के पक्ष मे इन्ही शब्दों से ब्रह्मा, शेषनाग, विष्णु, चन्द्रमा एव सूर्य का बोध होता है। वास्तव मे इस पद्य के द्वारा कवि ने तेलुगु वाङ्मयरूपी विश्व के स्रष्टा, स्थितिकर्ता, सरक्षक तथा उज्जवल प्रकाश देनेवाले महाकवियों की वन्दना की है। अत इन शब्दो के द्वारा तेलुगु के महाकवियो और देवताओ की एक साथ प्रतीति रमणीय है।

तेलुगु के अधिकाश महाकाव्यो मे शृगाररस की प्रतिष्ठा अगीरूप मे हुई है। प्राकृतिक सुषमा का वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप मे तथा उस रस के अनुकूल वातावरण उपस्थित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। उन अवसरो पर प्रयुक्त अलकार कवि के कल्पना-वैभव को प्रमाणित करते हैं और साथ ही बाह्यप्रकृति पर मानवीय क्रिया-कलापो के आरोप के कारण बिबविधान सुन्दर बन पड़ा है। इन स्थलों पर यद्यपि उपमान परम्पराभुक्त ही हैं, उन उपमानो को संजोने मे कवि की प्रौढ प्रतिभा झलकती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

"कामदेव नामक भगवान ने चैत्रमास मे मीनध्वज के वैभव से युक्त होकर मलयपवन के रथ पर आगमन किया। तब लतारूपी रमणियो ने वृक्ष शिखररूपी सौधो के ऊपर चढकर पल्लवरूपी अजलि भरकर उल्लासपूर्वक नवविकसित पुष्पो की वृष्टि की।"[2]

दक्षिण भारत मे मन्दिर के देवताओ को रथ पर बिठाकर बडे धूमधाम से नगरभ्रमण कराया जाता है। इस सास्कृतिक परम्परा के आलोक में उपर्युक्त अलकार का सौन्दर्य अनुभव किया जा सकता है।

---

1. वसुचरित्र 1—10
2. वसुचरित्र, 1—132

"दक्षिण समीर नामक नायक ने नूतन लतारूपी लतांगियो के हिमरूपी अवगुठनो को दूर किया। कस्तूरिका पत्ररचनाओं के हटने से लज्जावश अतिशय कपित होकर वे रमणियाँ अपने कलीरूपी स्तनों को पल्लव-हस्तों से ढक रही थी। इस दक्षिण नायक ने उन नवोढाओ को मोतियो के हार प्रदान कर परिमल्रूपी कला स्थानो को छूते हुए आलिगन में प्रवृत्त किया।"[1]

रूपक अलकार की सुन्दर योजना के उदाहरण-स्वरूप एक और छन्द का भाव प्रस्तुत है—

"रसालशाखारूपी नायिका ने अपने पल्लव-हस्तों से वसुराज का स्पर्श किया। तिलकलतिका ने भ्रमररूपी वीक्षणो से अवलोकन किया। प्रियालुलता ने कोयल-कूजन का गीत गाया। कर्णिकार शाखा ने पिक-वचनो से प्रिय भाषण किया। चम्पकलता ने राग (लाल रग, अनुराग) प्रकट किया। कदम्ब वृक्ष ने पुष्प-सुषमा रूपी मदहास किया। सिंधुकवल्ली ने परिमलयुक्त निश्वास निकाला। कुरवक शाखा ने सौरभरूपी कलास्थानो से आलिगन किया। इस प्रकार विभिन्न वृक्षागनाओ ने वसुराजरूपी कल्पवृक्ष के लिये करस्पर्श, वीक्षण, गान, सलाप, मुखराग, हास, निश्वास और आलिगन की दोहद-क्रियाएँ की।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण मे वृक्षसमूह पर मानवीय चेष्टाओ का आरोप है तथा वसुराज पर कल्पवृक्ष का आरोप है। एक ही छन्द मे वृक्षजगत और मानव-जगत दोनो का प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनो रूपो मे विधान अत्यत रमणीय है। वृक्षो के लिये दोहद-क्रियाओ की पद्धति कविसमय है।

कुशल कवि के हाथ मे पडकर भ्राति और उत्प्रेक्षालंकार कोरे उक्ति-चमत्कार नही रह जाते, प्रत्युत् चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत करते हुए सरस बन जाते है। श्रीकृष्णदेवराय, नन्नेचोड, रामराजभूषण आदि इस कोटि के प्रतिभा-सम्पन्न कवि है। उनके महाकाव्यो मे से नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है—"श्री विल्लिपुत्तूर के धानवाले खेतो के समीप प्रवाहित नहरो के पास जलपक्षी अपने सिर पखों मे लगाकर सुन्दर मुद्रा मे सोते है। उन्हे देखकर नगररक्षा करनेवाले सिपाही समझते है कि उष काल मे स्नानार्थ आगत ब्रह्मण अपने वस्त्रो को धोकर भूल से यहाँ रखकर चले गये। वस्त्रों को फिर ब्राह्मणों के पास ले जाने की इच्छा से घाट मे उतरनेवाले सिपाहियो से डरकर बतख जल्दी दौडने लगते हैं। इस दृश्य को देखकर खेतो मे धान की रखवाली करने-वाली अगनाएँ सिपाहियो के भ्रम पर खिलखिलाकर हँस पडती हैं।[3] उपर्युक्त

1 वसुचरित्र. 1—142 2 वसुचरित्र. 1—158 3 आमुक्तमाल्यदा 1—65

अवतरण मे बड़े ही स्वाभाविक ढग से नहरो, बतखों, खेतों आदि का चित्रांकन किया गया है। उस नगर की जलसमृद्धि, धान्यसमृद्धि, ब्राह्मणो की नियम-निष्ठा तथा सिपाहियों की कर्तव्य-बुद्धि की एक साथ व्यजना भी है। इसमे भ्रातिमान तथा स्वभावोक्ति अलंकारो की योजना है।

मुद्रा अलंकार को आचार्य शुक्ल ने खेलवाड मात्र समझा है, जो हम पहले देख आये है। कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित ने इस अलंकार का उल्लेख प्रथम बार किया है और परिभाषा इस प्रकार की है—"मुख्यार्थ समन्वित, शब्दों के द्वारा जब सूच्य कथावस्तु की सूचना हो तो मुद्रालकार होता है।"[1] नन्नेचोड के 'कुमारसभव' मे प्रसगोचित रूप मे इस अलकार का सार्थक प्रयोग कई स्थलो मे मिलता है। श्री निडदवोलु वेकटराव के अनुसार छन्दों के नाम कथा के बीच मे यथास्थान उन्ही छन्दो मे सयोजित करने की परपरा का श्रीगणेश तेलुगु मे नन्नेचोड ने किया और इस पद्धति को जयदेव आदि नवीन आलकारिको ने एक अलकार के रूप मे परिगणित किया।[2]

नन्नेचोड ने हाथियो के वर्णन के सन्दर्भ में मत्तेभविक्रीडित छन्द का प्रयोग करते हुए उस पद्य में मत्तेभविक्रीड़ित शब्द भी प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार वसन्तवर्णन के अवसर पर प्रयुक्त 'मत्तकोकिल' छन्द से 'मत्तकोकिल' शब्द का प्रयोग, वटुरूपी शिव के स्वागत में 'स्वागत' छन्द के साथ स्वागत शब्द का प्रयोग, पार्वती-वर्णन मे 'मानिनी' छन्द में मानिनी शब्द का प्रयोग, पुत्रोदय के उत्साह की व्यजना के साथ उत्साह छन्द मे उत्साह शब्द का प्रयोग नन्नेचोड ने किया। ये सब स्थल मुद्रा अलकार के प्रसगोचित विधान के लिए उदाहरण हैं।

तेलुगु साहित्य के महाकाव्यो मे कतिपय स्थलों पर अलकार-योजना के माध्यम से भावी कथा की सूचना दी गयी है। प्राय: प्रकृति-वर्णन के अवसर पर सूर्य, चन्द्रमा, मलयानिल आदि प्रस्तुत हैं और इन प्रस्तुत वस्तुओं को स्पष्ट बनाने के लिए कथा के अंशों को अप्रस्तुत बनाया जाता है। इस प्रकार की योजना मे वर्णन के अश तथा कथा के अश दोनों को परस्पर जोडने मे अलकार साधन बनते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है। "प्राची दिशा मे चन्द्रोदय से पहले धवल प्रकाश दिखाई पड़ा, मानों देवेन्द्र की राज्यलक्ष्मी के मुखमण्डल पर इस

1 हिन्दी साहित्य कोश (पहला भाग), पृ. 602

2. कुमारसभव, भूमिका, पृ. 29

बात के दुख से कि श्रीकृष्ण सत्यभामा के लिए पारिजात वृक्ष का अपहरण करेगा, विवर्णता फैल गयी हो।"[1]

"सायंकालीन सूर्य का रक्तिम वर्ण इस प्रकार दिखाई दे रहा था मानो सूरज उस अहंकारी अधम ब्राह्मण प्रवर के प्रति आग-बबूला हो गया हो, क्योंकि प्रवर अनन्य भाव से प्रेम करनेवाली उस तरुणी वरूधिनी को अति भयंकर पुष्प-बाण की व्यथा में छोड़कर निर्दयता से चला गया।"[2]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के अलंकार-विधान की समीक्षा करते हुए अलंकारों को चार वर्गों के अन्तर्गत विभक्त किया है—(1) भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक (2) वस्तुओं के रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक (3) गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक (4) क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक। तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त अलंकारों का विवेचन इस वर्गीकरण की दृष्टि से प्रस्तुत है।

भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक अलंकार

कोलाहल पर्वत पर गिरिका के विरह में वसुराज अतीव संतप्त होकर हंसों, शुकों, भ्रमरों तथा मयूरों की धन्यता और अपनी भाग्यहीनता का कथन करके लंबे निश्वास लेता है—

"यहाँ के हंस-समूह ने शुचि-वृत्ति से न जाने कितने दिन का तीर्थ-संवास किया है, तभी तो इस सुन्दरी का अनुगमन कर रहे हैं। यहाँ के शुक-समुदाय ने कल्पवृक्षों से कितने श्रेष्ठ फल प्राप्त किये हैं, तभी तो इस कमलनयनी के प्यार-भरे अधरों की रुचि पा रहे हैं। इस रमणी के मुख-सौरभ को प्राप्त करने के लिए मदमत्त भ्रमरों ने सुमनों पर अनुरक्ति से किस तरह के महासुख प्राप्त किये। इस कन्या के कंकण-निनाद-गर्जन से रीझने के लिए कैसी तपस्या मयूरों ने की होगी।"[3]

प्रस्तुत अवतरण में 'व्याज-स्तुति' अलंकार के माध्यम से वसुराज की विरह-वेदना की तीव्रता प्रतीयमान हो रही है। साथ ही गिरिका की चाल में सजातीय गमन का भ्रम हंसों को होने, शुकों के द्वारा गिरिका के ओठों को अरुण फल समझे जाने, भ्रमरों का गिरिका मुख-सौरभ को कमल-गंध समझने और कंकण-ध्वनि को मेघ-गर्जन समझनेवाले मयूरों की भ्रांति की व्यंजना हुई। अतः भ्रांतिमान अलंकार व्यंग्य रूप में है। वसुकार की वाणी से अभिन्न

1. पारिजातापहरण, 2—38
2. मनुचरित्र, 3—10
3. वसुचरित्र, 3—85

श्लेष अलंकार यहाँ हंसो का कासार-जल-निवास, शुकों का रसाल-फल-भक्षण, भ्रमरो की पुष्पानुरक्ति आदि मे क्रमश पुण्य क्षेत्र-निवास, कल्प-वृक्षो के वरदान, देवताओं मे प्रीति आदि का अभेद-अध्यवसाय करने में सहायक हो रहा है।

निम्नोक्त उदाहरण मे कविवर धूर्जटी ने प्रतिवस्तूपमा अलकार-प्रयोग के चातुर्य से ऐहिक सुख-भोग की क्षुद्रता दिखाकर निर्वेद भाव को परिपुष्ट बनाया है।

"अमृतपान करनेवाली जिह्वा को शहद में स्वाद मिलता है? अपने घर मे कल्पवृक्ष हो तो कोई मनुष्य राजा से याचना करता है? सयमियो के भाग्यरूप आदिम तत्त्व कालहस्तीश्वर को भजनेवाला मानस वेश्याओ के ससर्ग मे सुख पाता है?"[1]

रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

"रूप का अनुभव प्रधानतः चार प्रकार का होता है—अनुरजक, भयावह, आश्चर्यकारक या घृणोत्पादक। इस प्रकार के अनुभव मे सहायक होने के लिए आवश्यक है कि प्रस्तुत वस्तु और आलकारिक वस्तु मे बिम्ब-प्रतिबिंब भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत वस्तु से रूप-रंग आदि मे मिलती-जुलती हो और उसमे उसी भाव के उत्पन्न होने की संभावना हो, जो प्रस्तुत से उत्पन्न हो रहा हो।"[2] इस दृष्टि से तेलुगु के महाकाव्यो मे प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध अलंकारो मे से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है।

"रसाल वृक्ष की कलियाँ वज्रो की भाति, पुष्प मोतियों के समान, लाल लाल पल्लव पद्मरागो के सदृश, कीरसमुदाय मरकतो की तरह और भौंरे इन्द्रनील मणियो के जैसे शोभित हो रहे है। इस प्रकार चूत-वृक्ष बड़े ही अभिराम लग रहे हैं मानो वसत के अधिपति कामदेव के लिए पाँच प्रकार की मणियो से निर्मित सुन्दर प्रासाद हो।"[3]

वनवास के उपरान्त सीता की अग्नि-परीक्षा का वर्णन करते हुए रगनाथ रामायणकार ने अग्नि पर सरोवर का आरोप करके रूपक की योजना की है। यह अलंकार सीता जी के रूप-सौन्दर्य के चित्रण के साथ अग्नि के शीतल होने की व्यंजना भी करता है। "पावक-सरोवर में सीता बड़ी ही निरुपाय स्थिति मे खड़ी होकर कमलिनी की भाति सोह रही थी। उनके कर, चरण एव वदन

1. श्रीकालहस्ति माहात्म्यमु, 4-43
2. गोस्वामी तुलसीदास पृ. 133
3. कुमारसंभव, 4—99

भी कमल थे। कुच चक्रवाक पक्षी थे। कोमल बाहुलताएँ कमल की डण्डियाँ थीं। विमल त्रिवलिया तरगे बनीं। सुन्दर नेत्ररूपी मछलियाँ थीं। नीली अलकें शैवाल (काई) बनी।"[1]

गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

तेनालि रामकृष्ण कवि रत्नहार को उठा ले जानेवाले एक तोते के चातुर्य की व्यजना इस प्रकार करते है—

"धाई स्नान करने के लिए जरा-सा बाहर चली गयी तो सुग्गा मौका पाकर डिबिया के ढक्कन पर रखे रत्नहार को चोच मे उठा ले भागा, जैसे कोई प्रगल्भ विट किसी मुग्धा बाला के मन को अपने साथ ले जाता है।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण मे विट की चतुराई यही है कि वह नायिका का मन कई सामाजिक बन्धनो के बावजूद अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस अप्रस्तुत-योजना के कारण प्रस्तुत वस्तु मे रमणीयता का सचार होता है और उस पक्षी की चतुरता का अनुभव होता है।

पिगलि सूरनार्य उत्तम कोटि के सज्जनो के स्वभाव के विषय मे कहते हैं—

"विद्वान लोग अपनी विद्या को उसी मात्रा मे प्रकट करते हैं, जो उस विद्या का अनुभव करनेवालो की योग्यता की होती है। उत्तमो की महिमा जल के अनुसार कमल है।"[3]

उपर्युक्त अवतरण मे लोक-विख्यात कहावत के अनुकरण मे लोकोक्ति अलकार है। वस्तुओ के समान धर्म का कथन, बिम्ब प्रतिबिंब भाव के रूप मे होने के कारण दृष्टान्त अलंकार भी है। इस क्रम में चेमकूर वेंकट कवि के एक पद्य का भावार्थ द्रष्टव्य है।

"पृथ्वी पर, सूखे वृक्षो को पल्लवित करके वसन्त ने उनमे सरस सुगन्ध भर दी तो इस नैपुण्य से सन्तुष्ट न होकर आकाश मे चन्द्रमा ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए पत्थरो को पिघला दिया। चाहे जितनी कुशलता से कोई रचना करे, समकालीन लोग उससे असन्तुष्ट रहते हैं।"[4]

उपर्युक्त अवतरण में वसन्तवर्णन सामान्य कथन है और उसका समर्थन समकालीन लोगो की ईर्ष्यारूपी विशेष कथन से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। वसन्त की रचना की प्रशसा न करनेवाले चन्द्रमा

1. रंगनाथ रामायण, पृ. 127
2. पाडुरंग माहात्म्य, 4-23
3 कलापूर्णोदय, 2—95
4. विजयविलास, 1—145

की ईर्ष्या और समकालीन समाज की ईर्ष्या समान गुण हैं। चन्द्रमा की किरणों से चन्द्रकान्त शिलाओं का पिघलना कवि-समय है।

क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

लक्ष्मण के मुँह से राम के द्वारा अपने परित्याग का दुखद समाचार सुनकर "सीता कील निकाले गये यन्त्र की भांति जमीन पर तुरन्त गिर पड़ी।"[1] यहाँ पर केवल क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने के लिए उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है। इस अलकार-प्रयोग मे प्रस्तुत सीता जी और अप्रस्तुत यन्त्र मे रूप आदि का कोई सादृश्य नही है।

यामुनाचार्य का उपदेश सुनकर पाण्ड्य नरेश की रानी उसी प्रकार प्रसन्न हो गई जैसे—"ग्रीष्म-समय-निरुत्साहित केकिरमणी नवघन-ध्वनि से आनंदित होती है।"[2] श्रीकृष्णदेवराय की इस उपमा मे प्रसन्न होने की क्रिया को लेकर ही प्रस्तुत-अप्रस्तुत मे सादृश्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "क्रिया और गुण का अनुभव कराने के लिए अलंकार के लिए लाई हुई वस्तु और पसंग प्राप्त वस्तु का धर्म या तो एक ही होता है या अलग-अलग कहे जाने पर भी दोनो के धर्म समान होते हैं अथवा एक के धर्म का उपचार दूसरे पर किया जाता है।"[3]

अप्रस्तुत-विधान

प्रस्तुत वस्तु का स्वरूप-साक्षात्कार, भावों की पुष्टि आदि प्रयोजनों की सिद्धि के हेतु कविगण काव्यों में अप्रस्तुत लाते हैं। कवि का अनुभव, ज्ञान का वैविध्य, लोकनिरीक्षण की क्षमता, शास्त्र संबधी वैदुष्य आदि को अप्रस्तुत-विधान की पृष्ठभूमि कह सकते हैं। इसलिए काव्य मे संयोजित अप्रस्तुतों के आधार पर कवि के व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। साधारणतया कवियो के द्वारा प्रयुक्त अधिकांश अप्रस्तुत परम्परा-प्राप्त तथा कविसमय-सिद्ध होते हैं। इस संबध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मन्तव्य इस प्रकार है—"अप्रसिद्धि मात्र उपमा का कोई दोष नही है, पर नई उपमाओं की सारी जिम्मेदारी कवि पर होती है। ······किसी पात्र के लिए जो उपमान लाया जाय वह उस भाव के अनुरूप हो जो कवि ने उस पात्र के संबंध मे अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया है और पाठक के हृदय में भी प्रतिष्ठित करना चाहता है।"[4]

---

1. निर्वचनोत्तर रामायण, 9—17
2. आमुक्तमाल्यदा, 3—54
3. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 137
4. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 102

तेलुगु के महाकाव्यो में कवियों ने अप्रस्तुतों का संचयन जीवन के विविध क्षेत्रो से किया है। मूलस्रोत की दृष्टि से अप्रस्तुतो का विभाजन इस प्रकार हो सकता है—

(1) लोकजीवन (2) प्रकृति (3) पौराणिक विश्वास (4) संगीत, दर्शन आदि साहित्येतर विद्याएँ (5) काव्य तथा काव्यशास्त्र। प्रत्येक के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत है।

लोकजीवन

"विष्णुचित्त को अन्तरिक्ष से देखने के लिए आगत राक्षसों एवं पिशाचों के झुण्ड गरुड के पखों की हवा लगते ही इस प्रकार भाग गये, जैसे खलिहान मे सूप की हवा के कारण धान से अलग होकर भूसा निकल जाता है।"[1]

"वलयाकार मे ऊपर निकलकर कोंपलों से युक्त होकर, पुष्पित होने के कारण सर्वत्र पराग से सुगन्धित, सब से ऊपर की शाखा पर कोयल को धारण करनेवाला यह छोटा-सा आम्रवृक्ष मुक्ताहारो से चन्दन के अगराग से तथा काले चूचुक से शोभित वनलक्ष्मी के स्तन की तरह दिखाई पड़ता है।"[2]

प्रकृति

"कोलाहल ने शुक्तिमती के कमल-समूह रूपी रेशमी वस्त्र को प्रबल तथा दीर्घ भुजशाखा से पकडा।"[3]

"सरोवर के जल मे शीतकाल के समय बैठकर तपस्या करनेवाली शैलजा का मुख इस तरह शोभित हो रहा था मानो हेमन्त मे सभी पद्मो के नष्ट हो जाने पर तालाब ने बीज के लिए एक कमल सुरक्षित रखा हो।"[4]

पौराणिक विश्वास

"शालि-मंजरियाँ (धान की बालियाँ) इस तरह शोभित हैं, मानों भगवान विष्णु ने शरत्काल में नीद से जागकर अपने चरण पृथ्वी पर रखे हों और इस कारण पृथ्वी के शरीर में पुलकाकुर उत्पन्न हुए हो।"[5]

"शरत्कालीन कमलों की छवि इस प्रकार शोभित है, मानों जल निवासी विष्णु और लक्ष्मी वर्षाकाल के बाद निद्रा से उठकर आँखें खोलकर देख रहे हों।"[6]

साहित्येतर अन्य विद्याएँ

"चन्द्रिका से पूर्ण ब्रह्माण्ड में चन्द्र इस तरह शोभित हो रहा था, मानो

---

1. आमुक्तमाल्यदा, 4–13 2. मनुचरित्र, 3*75 3. वसुचरित्र, 2–137
4. कुमारसंभव, 6–126 5. आमुक्तमाल्यदा, 4–144 6. कुमारसंभव, 6–113

कालरूपी वैद्य ने कामी जनों मे कामोद्रेक को बढाने के लिए रस को वृक्ष-मूलिकाओ से मिश्रित करके दुग्ध-भाजन मे औषध-घुटिका बनाकर रखा हो ।"[1] (वैद्यक)

"हंस समुदाय की अभीष्ट विहार-भूमि, जल समृद्धि से सुन्दर अप्रतर्क्य और अद्वन्द्व वह सरोवर ब्रह्म की भाति परिपूर्ण था ।" [2] (दर्शन)

काव्य तथा काव्यशास्त्र

"हे बाला ! तुम्हारी वेणी को कालसर्प समझकर मलयानिल तुम्हारी तरफ नही आता । हे कमलमुखी ! तुम्हारी आँखो को चकोर समझकर चान्दनी तुम्हारे पास प्रवेश नहीं करती । हे अबला ! तुम्हारा स्वर पिकध्वनि समझकर रसाल-वृक्ष अपनी शाखाएँ नही दिखाता । हे चपलाक्षी ! तुम्हारी नाक को चम्पक समझकर भौंरे तुमको देखते ही भाग जाते है ।[3]

"मन्द मलयानिल कमल-सरोवर की तरगो पर राजहस की भाति विचरण करता है । सहकार-वृक्ष के पल्लव-समुदाय को उन्मत्त कोयल कुमार की तरह विचलित करता है । पुष्पित नवलतापुज मे मस्त भ्रमरसम्राट की तरह विहार करता है । उद्यान को नवागत वसन्त के समान सौन्दर्यमण्डित करता है ।"[4]

अब तक तेलुगु महाकाव्यो मे परिलक्षित अलकार विषयक दृष्टि, अलकार प्रयोग में पूर्वकालीन महाकाव्यो तथा अनन्तरकालीन महाकाव्यो का अन्तर, कवियों की व्यक्तित्व-भिन्नता के अनुरूप वैविध्य, शब्दालंकार-विधान का औचित्य, भाव, रूप, गुण और क्रिया के उत्कर्ष मे सहायक अलकार-विधान तथा अप्रस्तुत-सचयन के स्रोतो का विवेचन किया गया है । अब हिन्दी क्षेत्र के महाकाव्यों का परिशीलन इन्ही आधारो पर किया जायेगा और दोनों की तुलना उपस्थित की जायगी ।

हिन्दी के महाकाव्यो में अलकार-सम्बन्धी दो प्रकार की दृष्टि परिलक्षित होती है । एक मे साधारण जनता के स्तर के अनुरूप स्वाभाविक रूप मे अलकार-प्रयोग की विशेषता प्रमुख है तो दूसरे मे अपनी वाग्विदग्धता, चमत्कार और पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हुए नरेशों, विशेषज्ञों और उसी राजसी वातावरण तक सीमित पडितो को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति प्रधान है । प्रथम को लोकदृष्टि और द्वितीय को शास्त्रीय दृष्टि कह सकते हैं । प्रथम का

---

1. मनुचरित्र, 3–25
2. श्रीकालहस्तिमाहात्म्य, 3–195
3. 5–166
4. रामायण 1–63

प्रतिनिधित्व चन्द और जायसी करते हैं तो दूसरे का केशव। यद्यपि तुलसी में 'प्राकृत जन गुणगान' की प्रवृत्ति का नितान्त अभाव है, सर्वजनहित मे उनकी काव्य-कला प्रवृत्त है, तथापि परम्परागत तत्वो के सम्यक् उपयोग के कारण अलंकार-विधान की दृष्टि से तुलसी इस दूसरे वर्ग में गणनीय हैं।

डॉ ओमप्रकाश के अनुसार "हिन्दी साहित्य मे सब से सजीव तथा स्वाभाविकतापूर्ण काव्य वीरकाव्य ही है। उसमे चमत्कार भी मिलेगा, परन्तु केवल उसी स्तर तक जिसको सामान्य जनता भी समझ सके। वीरकाव्य ने सस्कृतकाव्य-परम्परा को न अपनाकर असस्कृत काव्यशैली को अपनाया। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमे मुख्य यह था कि वीरकाव्य लोककाव्य था, परन्तु सस्कृत काव्य केवल विशेषज्ञो का ही विषय बन चुका था।"[1]

चन्दबरदायी का काव्य कालक्रम की दृष्टि से अपभ्रश काव्य के अत्यन्त सन्निकट है। अत' अपभ्रश काव्य की लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का, चन्द के अलकार-विधान में प्रतिफलित होना स्वाभाविक है।

कवियो की व्यक्तिगत रुचि एवं प्रेरक परिस्थितियों के अनुसार उनके अलकार-विधान मे अन्तर है। केशवदास जी केवल कवि ही नही थे, बल्कि काव्यशास्त्र के आचार्य भी थे। अतः उनके काव्य मे शास्त्रपक्ष भी काफी मुखर रहा है। उनकी तो यह स्पष्टोक्ति है—

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥"[2]

आचार्य शुक्ल के अनुसार "ये काव्य मे अलंकार का स्थान प्रधान समझनेवाले चमत्कारवादी कवि थे।"[3] केशव के महाकाव्य मे उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलकारो के साथ विरोधाभास, विभावना, परिसंख्या आदि विरोधमूलक और उक्तिचमत्कार-प्रधान अलकारो का विशेष प्रयोग दिखाई पडता है। उनकी दृष्टि चरित्र-चित्रण, भाव, वस्तु आदि के सहायक रूप में अलकार-प्रयोग करने की अपेक्षा अलंकार को ही साध्य मानने की है। डॉ. ओमप्रकाश के अनुसार "रामचन्द्रिका मे शब्दसादृश्य के स्वस्थ उदाहरण अनेक हैं······केशव को परिसख्या तथा विरोधाभास का विशेष मोह था और इसमे मतभेद को स्थान नही कि इनका सौन्दर्य केशव के हाथ से जितना खिला है, उतना किसी अन्य हिन्दी कवि के प्रयत्न से नही।········ अपना बनाकर

1. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ 18
2 कविप्रिया 5 1
3 हिन्दी साहित्य का इतिहास प 192

इस कवि ने श्लेष को खिला दिया ।······परिसंख्या केशव से अलग पनप ही नही सकी और विरोधाभास अन्यत्र हरा-भरा न रह सका ।"[1] इस प्रकार रामचन्द्रिका मे अलकार-विधान अन्य महाकाव्यो की तुलना में विलक्षण है ।

केशव की इस प्रवृत्ति के ठीक विपरीत तुलसी दिखाई पड़ते है । तुलसी मे भाव, चरित्र, वस्तु आदि का समुचित निर्वाह भी है और साथ-साथ अलंकारो का सजग प्रयोग भी । दोनों के सम्यक् निर्वाह मे तुलसी सिद्धहस्त थे । वे काव्य मे अलकार के महत्त्व से पूर्ण अवगत दिखाई पड़ते है । मानस मे मुख्यत सादृश्यमूलक अलकारो का प्रयोग है और रूपक अलकारों की बहुलता से इस अलकार के प्रति कवि की विशेष प्रीति प्रकट होती है । डॉ शभूनाथ सिंह के अनुसार—"मानस मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, रूपकातिशयोक्ति आदि अलकारों की ही अधिकता है, किन्तु उनमे भी रूपक की जैसी स्वाभाविकता, अधिकता और पूर्णता मानस में मिलती है, वैसी हिन्दी के किसी अन्य महाकाव्य मे नही मिलती । उपमाओ तथा साग और परम्परित रूपक के कारण मानस मे चित्रात्मकता भी बहुत अधिक दिखाई पडती है । नीति और उपदेश संबधी वर्णन तथा प्रकृतिचित्रण मे अधिकतर दृष्टन्त और उदाहरण का सहारा लिया गया है और रूपचित्रण मे उत्प्रेक्षा का । इस तरह स्वाभाविक और सौन्दर्यवर्धक अलकारो के प्रचुर प्रयोग के कारण रामचरितमानस की शैली मे वह उदात्तता आई है, जो महाकाव्य के लिए अपेक्षित है ।"[2]

पद्मावत में प्रायः सभी प्रसिद्ध अलकारों के उदाहरण मिलते हैं, फिर भी जायसी ने सादृश्यमूलक अलकारो का ही आश्रय अधिक लिया है । हेतूत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति पद्मावत में अत्यन्त सुन्दर है । 'पृथ्वीराजरासो' मे उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है और हम्मीररासो की भी यही विशेषता है । इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों मे अलकार-विधान वैविध्यपूर्ण है ।

हिन्दी महाकाव्यो में बहुधा शब्दालकारो का संयमित प्रयोग दिखाई पडता है । तुलसी, जायसी, गोरेलाल, चन्द आदि ने भाव-सौन्दर्य की वृद्धि हेतु इन अलकारो का प्रयोग किया है । तुलसी के विषय मे शुक्ल जी का कथन है—"ओज, माधुर्य आदि का विधान करनेवाले वर्ण-विन्यास का आश्रय उन्होने लिया है । उनकी रचना शब्दसौन्दर्यपूर्ण है । अनुप्रास के तो वे बादशाह थे ।"[3] कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

---

1. हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ. 214
2. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ. 548
3. गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 143

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं ।।[1]

"कहुं किन्नरी किन्नरी लै बजावै"[2]

"बहु भांति चमेलिय फूलि रही ।
लखि मार सुमार सुदेह दही ।।
बन राम बिलास सुबास भरे"[3]

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण मे अनुप्रास अलकार की छटा वाटिका मे सीता जी के ककणो की ध्वनि तथा राम के मन पर उसके प्रभाव की व्यजना के कारण बहुत रमणीय है। मान, सूदन आदि के वीरकाव्यो में वीररस की व्यजना के लिए निरर्थक शब्दो की बार-बार आवृत्ति का कृत्रिम विधान किया गया है, जिसको शब्दनाद कहा जाता है। यह विधान काव्य-सौन्दर्य मे कोई योगदान नही देता।

तेलुगु महाकाव्यो के अलकार-प्रयोग का विवेचन करते हुए यह बताया जा चुका है कि कुछ कुशल कवियों ने अलकार के द्वारा भावी कथा की सूचना पहले ही दे दी है। हिन्दी के महाकाव्यो मे भी यह विधान दृष्टिगत होता है। केशव ने अगद-रावण सवाद के अवसर पर लिखा है—

अगद रावण को मुकुट, लै करि उडो सुजान।
मनो चल्यो यमलोक को, दस सिर को प्रस्थान।।[4]

यहाँ पर रावण-वध की सूचना पहले ही मिल जाती है।

तुलसी कैकेयी के सबंध मे लिखते हैं—

"कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अन अहि वातु सूच जनु भावी।।"[5]

इन पक्तियो के द्वारा कैकेयी के वर माँगने से पूर्व ही पाठकों को दशरथ-मरण की सूचना मिल जाती है। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के समय भी कवियो ने यह विधान अपनाया है, जैसे—

"अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बलहीन।।"[6]

हिन्दी महाकाव्यों के अलकार-विधान मे कवियो के रुचि-भेद के कारण जो विभिन्नता आ गई है, उसकी चर्चा के सन्दर्भ मे तुलसी के चित्रात्मक

---

1. मानस-बालकाण्ड, 230—1
2. रामचन्द्रिका, 13—50
3. हम्मीररासो, पृ. 118
4. रामचन्द्रिका, 16—34
5. मानस—अयोध्याकाण्ड 25—3
6. वही—बालकाण्ड 238

साग एवं परम्परित रूपको, जायसी की हेतूत्प्रेक्षाओ, केशव की परिसंख्या श्लेष और विरोधाभासो तथा चन्दबरदाई की स्वरूपोत्प्रेक्षा का उल्लेख हो चुका है। अब इन अलकारो के प्रयोग मे उक्त कवियो के चातुर्य को उदाहरणो के द्वारा स्पष्ट किया जायेगा। पहले तुलसी को ही लिया जाय।

"कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन।।
राम रूप राकेसु निहारी। बढ़ती बीचि पुलकावलि भारी।।"[1]

इस उदाहरण मे पयोनिधि, वारि, राकेसु, बीचि—इन उपमाओ का आरोप क्रमशः कौशिक, प्रेम, राम और पुलकावली पर किया गया है। धनुष भग के कारण राम के प्रति विश्वामित्र के मन में उद्वेलित प्रेमभाव का द्योतन यह सागरूपक कर रहा है। निम्नाकित उदाहरण मे मच पर अवतरित राम को बालसूर्य के रूप मे वर्णित करके सागरूपक की योजना की गयी है।

"उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।।"[2]

इस प्रकार मानस मे रूपक अलकार का प्रयोग चित्रात्मक तथा विशिष्ट रुचिपूर्ण है। मानस में समूचे काव्य पर मानसरोवर का आरोप करके विस्तृत और पूर्ण सांगरूपक बाँधा गया है। इस पर स्वयभूकृत 'पउमचरिउ' का प्रभाव माना जाता है।

पद्मावत में अन्य प्रमुख अलकारो के प्रयोग के बावजूद उत्प्रेक्षा की योजना विशेष रूप से आकर्षक है। रूप-सौन्दर्य और भाव के उत्कर्ष के लिये अप्रस्तुत वस्तुओं के विषय में काल्पनिक हेतु को भी वास्तविक हेतु कहा गया है। यही हेतूत्प्रेक्षा अलकार है। जायसी के महाकाव्य मे से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूडि उठे परभाते।।
राते बिंब भये तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ।।"[3]

इस उदाहरण मे पलाश के पत्तो के झडने, पुष्पित होने, कुदुरू के लाल होने, परवल के पकने और गेहूँ के हृदय के फटने के हेतुरूप में नागमती की विरहवेदना की सभावना की गयी है। इसी प्रकार निम्नाकित पक्तियों मे नागमती-वियोग के लोकव्यापी प्रभाव को वर्णित किया गया है।

"पियसो कहेहु संदेसरा, ए भंवरा ए काग।
सो धनि बिरहें जरि गई। तेहिक धुआँ हम्ह लाग।"[4]

---

1 मानस-बालकाण्ड, 262—1
2. मानस-बालकाण्ड, 254
3 पद्मावत—नागमतीसन्देश खण्ड, 359
4. वही

चन्द के महाकाव्य में उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है। परन्तु वहाँ हेतूत्प्रेक्षा के नहीं, बल्कि स्वरूपोत्प्रेक्षाओ के दर्शन होते है, जैसे—

"एहि अपुब्ब कविचन्द पेक्खउ।
तरणी समतेज दुजराज देक्खउ॥"[1]
चोर सम्मीर उड्डुति तुट्टइ
मनहु रितुराज द्रुमपत्त छुट्टइ॥"[2]

जायसी की मनोहर रूपकातिशयोक्तियों के लिये भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

केहि कहं कंवल विगासा को मधुकर रस लेइ।[3]
पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ बईठ॥[4]
आजु मिली अनिरुध को ऊखा।[5]

उपर्युक्त पक्तियों मे कमल पद्मावती के लिये, मधुकर उसके पति के लिये पन्नग वेणी के लिये, पंकज मुख के लिये, खजन नेत्रो के लिये, अनिरुद्ध रत्नसेन के लिये तथा ऊखा पद्मावती के लिये प्रयुक्त उपमान है।

केशव के प्रिय अलकारो जैसे परिसख्या और विरोधाभास के लिये उदाहरण प्रस्तुत है। ये दोनो अलंकार प्राय. श्लेष से अनुप्राणित होते है। पहले परिसख्या के उदाहरण द्रष्टव्य है।

"मूलनहीं को जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गनिहि जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कविकुल के जी मे॥"[6]
"कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुख अदेय।
द्विस्वभाव है श्लेष में. ब्राह्मण जाति अजेय॥"[7]

केशव के विरोधाभास के प्रयोग के दो उदाहरण इस प्रकार है—

विषमय यह गोदावरी, अमृत के फल देति।
केशव जीवन हार को, दुःख अशेष हरि लेति॥[8]

---

1. पृथ्वीराजरासउ, पृ 145
2. वही, पृ. 26
3. पद्मावत—नखशिख खण्ड, 106
4. वही, 115
5. वही—रत्नसेनसूली खण्ड, 274
6. रामचन्द्रिका, 1—48
7. वही, 28—16
8. वही. 11—26

पुनि गर्भ सयोगी रतिरस भोगी जग जन लीन कहावै ।
गुणि जग जन लीना नगर प्रवीना अति पति के मन भावै ।।[1]

इस प्रकार रामचन्द्रिका का अलकार-विधान विशेषत. शब्द-सादृश्य पर आधारित है और कवि की शास्त्रीय दृष्टि को व्यक्त करता है ।

हिन्दी महाकाव्यो के अलकारों को भी शुक्ल जी की वर्गीकरण-पद्धति के अनुसार--(1) भावो की उत्कर्ष-व्यजना में सहायक अलकार । (2) रूप का अनुभव तीव्र करने मे महायक अलकार । (3) गुण का अनुभव तीव्र करने मे सहायक अलकार । (4) क्रिया का अनुभव तीव्र करने मे सहायक अलकार--इन चार भागों मे विभाजित करके समझा जा सकता है । प्रत्येक वर्ग के लिये उदाहरण भी दिये जा रहे है ।

भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक अलंकार :

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी । तुम देखी सीता मृगनयनी ।।
खजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
कुंद कली दाडिम दामिनी । कमल सरद ससि अहि भामिनी ।।
वरुण पाश मनोज धनु हसा । गज केहरि निज सुनत प्रशंसा ।।"[2]

उपर्युक्त पक्तियो में सीताहरण के बाद राम के विरहजन्य उन्माद भाव की व्यजना है । इसमे रूपकातिशयोक्ति अलकार सहायक हुआ है ।

नागमती की वियोग-वेदना के सृष्टि-व्यापी प्रभाव को व्यंजित करने वाले जायसी की पक्तियाँ इस प्रकार है—

कुहुकि कुहुकि जसि कोयल रोई । रक्त आँसु घुंघची बन बोई ।
पै करमुखी नैन तन राती । कौ सिरात बिरहा दुख ताती ।।
जंह जंह ठाढि होइ बनवासी । तंह तंह होइ घुंघचिन्ह के रासी ।।
बुंद बुंद मंह जानहुं जीऊ । कुंजा गुंजि करहि पिउ पीऊ ।।[3]

इसमे जासी की प्रिय हेतूत्प्रेक्षा का सौन्दर्य द्रष्टव्य है ।

रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलकार

पुष्पवाटिका-प्रसग मे राम-लक्ष्मण को गोस्वामी जी उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग से प्रत्यक्ष दर्शाते हैं—

"लता भवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाई ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल बिलगाई ।।"[4]

---

1. रामचन्द्रिका, 1—35
2. मानस—अरण्यकाण्ड, 30—5
3. पद्मावत - नागमती वियोग खण्ड, 359
4. मानस—बालकाण्ड, 232

चन्द कवि रूपक अलंकार के प्रयोग से पृथ्वीराज-सयोगिता-विवाह के रीति-रस्मों का चित्रण इन प्रकार करते है—

"करिस्स काम कंकनं सु पानि बंध बंधये।
जु भवरी सषी सलज्ज रूझि तुरय बज्जये।
आचारु चारु देव सब्ब दोइ पप्प जंपहिं।
गंठि दिट्ठ इक्क चित्त लोक लोक चपहीं॥"[1]

गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

"गंगा त्रिपथ गामिनी जैसी। छत्रसाल की कीरति तैसी।
सब सुर नर नागन की बानी। गावत बिमल पवित्र बखानी॥"[2]

प्रस्तुत छत्रसाल के यश एव अप्रस्तुत त्रिपथगामिनी गगा मे सर्वव्यापकता, पवित्रता नथा स्वच्छता के गुण समान है। तुलमी सन्तों एव हसों मे अभेद की स्थापना सारग्राहिणी प्रवृत्ति को समान धर्म बताते हुए करते है।

"जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥"[3]

संयोगिता दूती से कहती है कि यौवन धन तो अस्थिर रहता है। क्या अजलि मे पानी स्थिर रहता है? सयोगिता के इस कथन मे यौवन-धन की तुलना अजलिगत जल से की गयी है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत मे सादृश्य 'अस्थिरता' गुण को लेकर है। चद के शब्द इस प्रकार है—

"जुव्वन धन अस्थिर रहै अम्बु कि अंजुरिया है"[4]

इन सब उदाहरणो मे कवियो ने गुण का अनुभव तीव्र करने मे सहायक रूप मे अलकार-प्रयोग किया है।

क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

उपमा और रूपक से परिपुष्ट संदेह अलंकार का प्रयोग करते हुए केशवदास जी हनुमान के समुद्र-लघन का वर्णन करते है—

"हरि कैसौ वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधों,
लच्छन को बाण छूट्यो रावण निशंक को।

1 पृथ्वीराजरासउ, पृ. 154
2. छत्रप्रकाश, 3—44
3. मानस—बालकाण्ड, 6
4. पृथ्वीरारासउ, पृ. 40

गिरिराज गंड ते उडान्यो सुबरन अलि,
सोता पद-पंकज सदा कलक रंक को।
हवाई से छुटी केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को।"[1]

उपर्युक्त छन्द मे शीघ्रता से छलाग मारनेवाले हनुमान जी की उड्डयन-क्रिया का अनुभव हवाई, कमान का गोला, गरुड और हंस आदि अप्रस्तुतो के कारण उत्कर्ष को प्राप्त करता है। 'गिरिराज गड' और 'सुवरन अलि' कहने से क्रिया के साथ रूप के अनुभव में भी सहायता पहुँचती है।

छत्रसाल के पराक्रम के विषय मे गोरेलाल का कथन है—

"बैरी भगे मनि भय भारी। परै बिडर ज्यों बाघ बिडारी"[2]

यहाँ प्रस्तुत शत्रुओ एवं अप्रस्तुत बिल्ली में भयभीत होकर भागने के सिवा रूप, रग आदि का कोई साधर्म्य नही है।

इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों मे विविध रूपों मे कवियो ने अलकार-प्रयोग किया है। इसमें यह विशेषता भी दिखाई पडती है कि कवियो ने विविध क्षेत्रों से अप्रस्तुत ग्रहण किये हैं। स्रोत की दृष्टि से इन अप्रस्तुतो को पाँच भागों मे विभक्त कर सकते हैं, यथा—(1) लोक जीवन (2) प्रकृति (3) पौराणिक मान्यताएँ (4) साहित्येतर विद्याएँ (5) काव्य तथा काव्यशास्त्र। इन सबके लिए उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है।

लोकजीवन

"भरै जुग्गनी खप्परे सूर लोही
मनो ग्राम बामा पनीहार सोही।"[3]
"मुककइ न लीह लज्जा सु रत्त
निद्धनिथ धनुह्ह जानु गहइ हत्थ"[4]
"बंदउ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ॥"[5]
"लागिउं जरे जरे जस भारु। बहुरि जो भूंजसि तजौन बारु।"[6]

प्रकृति

"दिन दिन बढ़े बढ़ाइ अनंदा। जैसे सुकुल पक्ष को चंदा।"[7]

---

1 रामचन्द्रिका, 23-24 2. छत्रप्रकाश, 10—6 3. वही, पृ. 21
4 पृथ्वीराजरासउ, पृ. 909 5. मानस-बालकाण्ड, 3 (क)
6 पद्मावत-नागमती वियोग खण्ड 354 7 छत्रप्रकास 4—3

"इक्कदंत छविधाम अरुण सिंदुरमय सोहै ।
मनो प्रात रवि उदित कहत उपमा कवि को है ॥"[1]

"चले सहस पथ मतंग सु गज्जं
मनो पावसं मेघमाला सुरज्जं"[2]

"मुख सरोज मकरद छवि करइ मधुप इव पान ।"[3]

पौराणिक मान्यताएँ

"पुनर जन्मेजय ते जानि जग्गे
रहे संकि ते सेस ते पूठि लग्गे"[4]

"कटारी बहै वार पारं निहारै ।
मनो स्याम उर मांझ कौस्तुभ सम्हारै ॥"[5]

"षोडस बरष स मुच्चि ग्रह ले सब दासि सुजान
मनहु सभा सुरलोक भइ चली अच्छरी समान ।"[6]

साहित्येतर अन्य विद्याएँ

"कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोई आवा ॥"[7]

"राम आगे चले मध्य सीता चली ।
बंधु पाछे भये सोभ सोभै भली ।
देखि देही सबै कोटिधा कै मनो ।
जीव जीवेश के बीच माया मनो ।"[8]

"जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैलबन, भूतल भूरि निधान ॥"[9]

"परा प्रीति कंचन महं सीसा । बिथरि न मिलै स्यामहिं पै दीसा ॥
कहाँ सोनार पास जेहि जाऊँ । देइ सोहाग करै एक ठाऊँ ॥"[10]

काव्य तथा काव्यशास्त्र

"नैन लागु तेहि मारग पदुमावति जेहि दीप ।
जैस सेवाती सेवहि बन चातक जल सीप ॥"[11]

---

1. हम्मीररासो, 2
2. वही, 379
3. मानस-बालकाण्ड, 231
4. पृथ्वीराजरासउ, पृ. 91
5. हम्मीररासो, 773
6. पृथ्वीराजरासउ, 121
7. मानस-बालकाण्ड, 216-1
8. रामचन्द्रिका, 11-7
9. मानस-बालकाण्ड, 1
10. पद्मावत-नागमती सुआखण्ड, 89
11. वही-जोगीखण्ड, 139

निष्कर्ष

दोनो क्षेत्रों के महाकाव्यों मे परिलक्षित अलंकार-विधान का विविध दृष्टियो से परिशीलन करने के उपरान्त निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इन साहित्यो के महाकाव्य-निर्माताओं की कल्पना-शक्ति वैविध्यपूर्ण और उच्च कोटि की है। जीवन के विविध क्षेत्रो से गृहीत अप्रस्तुत कवियों के व्यापक अनुभव और पारदर्शी काव्य-प्रतिभा को प्रकट करते है। कवियो की व्यक्तित्व-भिन्नता के कारण स्तर-भेद और रुचि-भेद स्वाभाविक हैं। किन्तु समूह-रूप मे विचार किया जाय तो यह कहना पडेगा कि हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्य अलकार-प्रयोग के आयाम मे भी समृद्ध तथा सौन्दर्यपूर्ण है। सास्कृतिक पृष्ठभूमि की समानता के कारण कविसमय-सिद्ध उपमान भी दोनो क्षेत्रो में समान है। मुख के लिए कमल और चन्द्रमा, केशो के लिए भ्रमर और काले सर्प, वीक्षणो के लिए कमल-श्रेणी, सारग्राहिणी प्रवृत्ति के लिए हंस इत्यादि कविसमय-प्रसिद्ध उपमान हैं। सजग प्रयास से और अनायास आगत शब्दालकार इस परिणति के लिए उत्तरदायी कवियो की शब्दसाधना को प्रकट करते हैं। दोनो क्षेत्रो मे प्रयुक्त अलकार भाव, रूप, गुण, क्रिया तथा उक्ति के उत्कर्ष मे सहायक होकर काव्य-सौन्दर्य का सवर्धन करते हैं। अलकार के द्वारा भावी कथा को सूचित करने की योजना भी दोनों मे समान है।

इन समानताओ के अतिरिक्त अन्तर भी दृष्टिगत होता है। हिन्दी की अपेक्षा तेलुगु क्षेत्र मे शास्त्रीय दृष्टि की अधिकता दिखाई पडती है। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि हिन्दी महाकाव्य पर प्राकृत-अपभ्रश की लोकोन्मुखी प्रवृत्तियो का प्रभाव है तो तेलुगु महाकाव्य पर सस्कृत की शास्त्रीय मान्यताओ का प्रभाव है। चन्दबरदाई, जायसी आदि हिन्दी कवियो के सामने श्रोता के रूप मे जन-साधारण था तो तेलुगु के प्राय. सभी महाकाव्य प्रबुद्ध एव विशेषज्ञ पडितों को दृष्टि में रखकर रचे गये। अप्रस्तुत-सामग्री हिन्दी महाकाव्य मे सस्कृत साहित्यरूपी उद्गम-स्थान से गृहीत है, क्योकि सस्कृत मे पडित-परपरा से सौन्दर्यसबधी ऐसे नियम बने हुए थे, जिनका पालन कवियो का कर्तव्य हो जाता था। उदाहरण के लिए, किसी अग के वर्णन के लिए किस अप्रस्तुत का उपयोग होना चाहिए, यह निश्चित था। किन्तु उन्ही अप्रस्तुतो को लेकर जिस सजगता और कला-कुशलता से अलंकारों का निर्वाह किया गया है, उनमें तेलुगु महाकाव्य अपेक्षाकृत अधिक शास्त्रीय दृष्टि-सपन्न हैं।

अष्टम अध्याय

छन्दयोजना

आदिकाल एव मध्यकाल का हिन्दी साहित्य मुख्य रूप से पद्यसाहित्य है और इस साहित्य के सौन्दर्य मे विविध प्रकार के छन्दो ने योगदान दिया है। हिन्दी महाकाव्यों मे प्रयुक्त छन्द सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के स्रोतो से आगत तथा हिन्दी कवियो की प्रतिभा से सवर्धित है। इनको वर्णिक छन्द तथा मात्रिक छंद, इन दो वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्णिक का 'वृत्त' एव मात्रिक का 'जाति' अभिधान भी प्रचलित है।

"छन्द अहहिं द्विविध जग माहीं। मात्रिक वर्णिक सुनत सुहाही।
मात्रिक छंदहि जाती कहिये। वर्णिक वृत्त कहत मुद लहिये॥"[1]

मात्रिक छन्द का यह लक्षण है कि उसके प्रत्येक चरण में मात्रिक सख्या एक समान होती है, परन्तु वर्णो का क्रम एक-सा नही होता। वर्णिक छन्दो मे वर्णगणना प्रधान होती है, अर्थात् वर्णो का क्रम समान होता है और वर्णो की सख्या भी समान होती है।

"पद्यं चतुष्पदं तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षर संख्यात्र जातिर्मात्राकृता भवेत्॥[2]

इन्ही दो भेदों को सस्कृत छन्द एव प्राकृत छन्द कहा गया है।[3] हिन्दी के महाकाव्यो मे व्यवहृत मात्रिक छन्दो में प्रमुख हैं—दोहा, चौपाई, सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभगी, चौपैया, तोमर, अरिल्ल, कवित्त, सवैया, झूलना, छप्पय, कुण्डलिया, पद्धरी, दोहरा, गाथा, रोला आदि। वर्णिक छन्दो मे अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, नगस्वरूपिणी, मोतीदाम, नाराच, चचला, सुन्दरी आदि प्रयुक्त हुए है। केशव के महाकाव्य मे सर्वाधिक वैविध्य दिखाई पडता है, क्योकि वे प्रतिज्ञाबद्ध होकर इस दिशा में सचेष्ट रूप से प्रवृत्त हुए। परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त केशव ने कुछ मौलिक छन्दो की भी योजना की है, क्योकि वे कवित्व के साथ आचार्यत्व को भी प्रदर्शित करना चाहते थे।

छन्दविधान की दृष्टि से मानस, पद्मावत और छत्रप्रकाश को एक वर्ग में तथा पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, राजविलास और रामचन्द्रिका को दूसरे वर्ग मे रख सकते हैं। प्रथम वर्ग मे मुख्यत· दोहा-चौपाई शैली का विधान है तो दूसरे मे छन्द-वैविध्य की परम्परा का निर्वाह हुआ है। कवियों के व्यक्तिगत

---

1. छन्दप्रभाकर, पृ. 5
2. वही
3. चन्दबरदाई और उनका काव्य, पृ. 213

वशिष्टय के अनरूप इन दो भदों के और भी अवान्तर भद बन सकते हैं
पद्मावत मे अर्धालियों के उपरान्त एक दोहा रखने की प्रवृत्ति सामान्य रूप से मिलती है। मानस में इसका भी वैविध्य दृष्टिगत होता है। मानस मे चौपाइयो के बाद दो दो दोहो की योजना भी मिलती है। अभिज्ञों का यह निष्कर्ष है कि हिन्दी काव्यों मे प्रयुक्त दोहा-चौपाई शैली का मूलस्रोत अपभ्रश साहित्य मे है।[1] डॉ रामसिंह तोमर के शब्दो मे पद्धडिया-घत्ता शैली का ही परिवर्तित रूप दोहा-चौपाई शैली को कहा जा सकता है।[2] अपभ्रश की यह छन्दशैली कडवक नाम से विख्यात है। डॉ. हरिवंश कोछड के अनुसार कडवको मे पद्धरी, पज्झटिका, पद्धडिया, पादाकुलक, अलिल्लह आदि सोलह मात्रावाले छन्दो का प्रयोग किया गया और कही कहीं चौपाई भी मिल जाती है। इस शैली की दृष्टि से अपभ्रश और हिन्दी मे "अन्तर केवल यह है कि हिन्दी काव्य मे व्यवधान दोहा अथवा सोरठा द्वारा होता है और अपभ्रंश काव्य मे सोलह मात्राओं के छन्दों में व्यवधान घत्ता का है।[3] तुलसी ने मानस में प्रधानत. चौपाई-दोहा शैली का प्रयोग करते हुए काण्डो के आरम्भ मे तथा उत्तरकाण्ड के अन्त में सस्कृत श्लोको की योजना की है। बीच बीच मे प्रसंगोचित रूप मे सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभगी, तोमर आदि की भी योजना की गयी है। किन्तु पद्मावत में दोहा और चौपाई के अतिरिक्त अन्य किसी छन्द के दर्शन नही होते। डॉ. सरला शुक्ल ने सूफी काव्यो में छन्दवैविध्य नहीं होने का कारण मसनबी काव्य-शैली बताया है।[4] इसके अलावा "जायसी का भारतीय छन्द-शास्त्र से सीमित परिचय है और ऐसा जान पड़ता है कि इन्होने अपने दोहे को सन्तो की साखियो के माध्यम से ग्रहण किया है, अत: उनके इस छन्द के प्रयोग मे भी अस्थिरता है।"[5] इस प्रकार तुलसी और जायसी के महाकाव्यो मे छन्दयोजना का अन्तर है। छत्रप्रकाशकार गोरेलाल ने जायसी की भाति दोहो और चौपाइयों के अतिरिक्त अन्य किसी छन्द का प्रयोग नही किया।

पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, सुजानसिंहचरित आदि वीरकाव्यो मे विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। डॉ. रामसिंह तोमर के अनुसार केशवदास और

1. हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड), पृ. 427
2. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ 234
3. अपभ्रंश साहित्य, पृ. 397
4. हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ. 204
5. हिन्दी साहित्यकोश (पहला भाग), पृ. 343

सूदन की कृतियो को छन्दशास्त्र की अपूर्व कृतियाँ कहा जा सकता है।[1] विविध प्रकार के छन्दो की यह परम्परा भी हिन्दी कवियो को अपभ्रश साहित्य से प्राप्त है। अपभ्रश को छन्दो की दृष्टि से एक समृद्ध भाषा माना गया है। पृथ्वीराजरासो के छन्दो के विषय मे डॉ. विपिनविहारी त्रिवेदी का मत है— "इस काव्य के अधिकांश छन्द प्राकृत और अपभ्रश के है, जिनमें से कुछ का प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में जोधराजकृत हम्मीररासो और सूदनकृत सुजानचरित प्रभृति वीर प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम देखा जाता है।"[2] डॉ रामसिंह तोमर ने रामचन्द्रिका-जैसे छन्दविधान के दो अपभ्रश काव्य, जिनदत्तचरिउ एव सुदर्शनचरिउ का उल्लेख किया और यह अनुमान लगाया कि केशव के सामने विविध तुकान्त अपभ्रश छन्दो के प्रयोग से युक्त कुछ इस प्रकार की कृतियाँ रही होगी।[3] इस प्रकार इन काव्यों मे व्यवहृत बहुत से छन्द तथा उनके सयोजन की वैविध्यपूर्ण परम्परा दोनो अपभ्रश की ही देन है। इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि सस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रश तक आते-आते महाकाव्य के भिन्न सर्गो मे भिन्न-भिन्न छन्दो की प्रथा धीरे-धीरे लुप्त होती गयी और छन्दोवैविध्यपरक काव्यो का सृजन होने लगा।[4] हिन्दी मे इस प्रवृत्ति का प्रतिफलन हुआ।

हिन्दी के महाकाव्यो मे प्राचुर्य की दृष्टि से वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दो का प्रयोग अधिक है। केवल केशव ही इस प्रवृत्ति के अपवाद है, क्योकि 'रामचन्द्रिका' मे 24 मात्रिक छन्दों तथा 58 वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया गया है।[5] मानस के वर्णिक छन्दों मे, अधिकाश, काण्डो के आदि मे सयोजित सस्कृत श्लोको के लिए प्रयुक्त हैं। वास्तव मे वर्णिक छन्दो की अपेक्षा मात्रिक छन्दो में गेयत्वगुण और प्रवाह की मात्रा अधिक होती है, क्योंकि वर्णवृत्तो मे वर्णो का क्रम पहले ही से बधा रहता है, जिसमे कवि अपनी ओर से परिवर्तन नही कर सकता। किन्तु मात्रिक छन्दो मे मात्राओ की सख्या ही मुख्य रूप से नियत है, गणों का क्रम नही और इसलिए कवि स्वेच्छापूर्वक अपने भावो को पद्यमय रूप दे सकता है। साथ ही मात्रिक छन्द सगीत के लिए भी उपयुक्त होते है। सगीत मे ताल का विधान प्रधान है और ताल का विचार

1. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ 266
2. चन्दबरदाई और उनका काव्य, पृ. 286
3. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पृ 235
4. अपभ्रश साहित्य पृ 286   5. वै   पृ 203

मात्राओं पर अवलंबित है, न कि वर्णो पर।[1] इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों मे प्राकृत-अपभ्रंश की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को ग्रहण किया गया। अपभ्रंश छन्दो की संगीतमयता का यह कारण है कि उनका सृजन सर्वसाधारण के लिए हुआ था। अपभ्रंश छन्दो की संगीतमयता एव नृत्य मे उनकी उपयोगिता के विषय मे डॉ. विपिन बिहारी त्रिवेदी ने लिखा—"ये संगीतमय है और इन्हे एक डफली पर गा सकने योग्य बना दिया गया है। पज्झटिका छन्द मे आठ मात्राओ के बाद ताल लगने लगती है।···· ····कुछ ऐसे छन्द भी है, जिनका प्रयोग नृत्य मे किया जाता है। घत्ता और मदनगृह ऐसे ही छन्द है, जिनके गाये जाने पर नर्तको के एक विशेष क्षण पर गति-परिवर्तन का रहस्य भली भाति समझ में आ जाता है।"[2]

जायसी और तुलसी की दोहा-चौपाई शैली कथा-कथन के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुई है। चौपाइयों का लगातार क्रम आख्यान की निरन्तरता के लिए समर्थ रहा है तो दोहे कथाभाग को आरम्भ और अग्रसर करने मे सहायक सिद्ध हुए हैं। तुलसी का हरिगीतिका छन्द कथाशो के बीच भावातिरेक से पूर्ण निदर्शन के लिए पुष्टि या सारांश-कथन के रूप मे व्यवहृत है। उदाहरणार्थ बाटिका-प्रसग मे सयोजित निम्नोक्त छन्द द्रष्टव्य है।

"मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो।
करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो॥
एहि भाति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥"[3]

तुलसी ने त्रिभंगी और चौपय्या छन्दों को स्तोत्र के वातावरण मे तथा तोमर को युद्ध की विभीषिका प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किया है। मानस का भुजंगप्रयात शिवस्तुति के प्रसग में औचित्यपूर्ण है। पृथ्वीराजरासो मे 'साटिका' छन्द विशेषत कोमल प्रसगों मे दृष्टिगत होता है, जैसे पृथ्वीराज-सयोगिता का केलिविलास और षड्ऋतु वर्णन। यह साटिका छन्द सस्कृत का 'शार्दूलविक्रीडित' है। सस्कृत साहित्य मे भी इस छन्द का प्रयोग अकसर कोमल प्रसंगो मे हुआ है।

केशव ने भी वर्ण्यविषय के अनुसार प्रसगोचित रूप मे छन्दो का विधान

---

1. चन्द्रबरदाई और उनका काव्य, पृ. 213
2. वही, पृ. 214
3. मानस—बालकाण्ड, 236

किया है, जैसे प्रात.काल मे राम को जगाते समय चारण 'हरिप्रिया' छन्द मे उनकी स्तुति करते है—

"जागिये त्रिलोकदेव, देव देव रामदेव।
भोर भयो, भूमिदेव भक्त दरस पावै ॥"[1]

केशव ने चचला छन्द का प्रयोग वाटिका-विहार के समय राम की सवारी के वर्णन मे किया है। अश्वगति का प्रत्यक्षीकरण कवि की छन्दगति कर रही है। इस छन्द मे 'चचला' शब्द के प्रयोग के कारण यहाँ पर मुद्रा अलकार की स्थिति मानी जा सकती है। तेलुगु के नन्नेचोड ने भी मुद्रालकार के ऐसे सुन्दर प्रयोग किये है। केशव का चचला छन्द इस प्रकार है—

'भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाण।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
शुभ्र शुभ्र वारिहून अंश रेणु के उदार।
सीखि सीखि लेत है ते चित्त चंचला प्रकार।"[2]

केशव के छन्दप्रयोग की एक और विशेषता है कि उन्होंने जहाँ कथा द्रुतगति से आगे बढनी है वहाँ छोटे आकार के छन्दो तथा कथा की मथरगति के अवसरो पर लबे-लबे छन्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यो म वर्ण्य-विषय के अनुरूप प्रसंगोचित रूप मे छन्दयोजना दिखाई पडती है।

सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन का विधान सस्कृत महाकाव्यों मे है, जिसका निरूपण आचार्य विश्वनाथ ने किया है। मानस के काण्डों के अन्त मे दोहा-चौपाई से भिन्न छन्दो की योजना मिलती है। पृथ्वीराजरासो जैसे छन्दो-वैविध्यपरक महाकाव्यों तथा छत्रप्रकाश और पद्मावत मे सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन की प्रवृत्ति के लिए कोई अवकाश नही है। अत: सस्कृत की शास्त्रीय परम्परा का पालन केवल मानस मे ही मिलता है।

हिन्दी महाकाव्यों के छन्दो मे तुक या अन्त्यानुप्रास सामान्य विशेषता है। हिन्दी मे अतुकान्त छन्दो का प्रयोग अपवाद रूप में हुआ है। रामचन्द्रिका मे अतुकान्त छन्दो के कुछ उदाहरण मिलते है। सस्कृत साहित्य मे तुकान्त छन्दो का प्राय अभाव समझ सकते है। प्राकृत मे भी छन्दों मे तुक मिलना आवश्यक नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अनुमान किया कि छन्दो में तुक मिलाने की नवीन प्रथा भारतवर्ष के साथ उत्तर-पश्चिम सीमान्त से आगत

---

1 रामचन्द्रिक' 30 18 2 वही 31 1

विदेशी जातियों के सम्पर्क का फल है ।[1] केवल अपभ्रंश साहित्य मे ही पहली बार छन्दो की तुकान्तता नियत लक्षण बन गयी। अपभ्रंश की इस प्रवृत्ति का अबाध प्रवेश हिन्दी साहित्य में उत्तराधिकार के रूप मे हुआ। वास्तव मे हिन्दी छन्दो के इस अन्त्यानुप्राम के कारण काव्यो मे श्रवण-सुभगता एव गेयता का समावेश हो गया है।

इस प्रकार छन्दविधान की मीमासा के उपरान्त निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि हिन्दी महाकाव्यो मे वर्णिक तथा मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु प्राचुर्य की दृष्टि से मात्रिक छन्द ही अधिक है। दोहा-चौपाई शैली एवं विविध छन्दो के प्रयोग की शैली, इन दोनो को हिन्दी मे देख सकते हैं और इनके पूर्वरूप अपभ्रश साहित्य में उपलब्ध होते है। मात्रिक छन्दो की अधिकता के कारण काव्यो मे सहज प्रवाह एव गेयत्वगुण का समावेश हो गया है। वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों के अतिशय प्रयोग की प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रश की है। इसके अलावा हिन्दी महाकाव्यों के अधिकाश छन्द प्राकृत-अपभ्रश के छन्दो के आधार पर विकसित किये गये है। वर्ण्यविषय के अनुरूप प्रसंगोचित रूप में कवियो ने छन्दप्रयोग किया है। सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन का पालन केवल तुलसी ने किया है। और कवियो की कृतियो मे इसका अभाव है। हिन्दी की यह प्रवृत्ति सस्कृत परपरा की नहीं, बल्कि प्राकृत परम्परा की है। छन्दो मे तुक का विधान अपभ्रश-काल मे ही आरंभ हुआ था, जिसे हिन्दी महाकाव्यो ने परंपरागत रूप मे प्राप्त किया। अतुकान्त छन्दो का अभाव नही है, किन्तु उनका बहुत ही विरल प्रयोग हुआ है। अत· कह सकते हैं कि छन्दविधान की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्य अपभ्रश महाकाव्यों के अत्यन्त निकट हैं।

तेलुगु महाकाव्यो में प्रयुक्त छन्द तीन प्रकार के हैं—वर्णवृत्त, जाति और उपजाति। असल में उपजाति जाति का ही भेद है। तेलुगु के छन्दशास्त्रों के अनुसार वृत्त गणबद्ध होते है और जाति मात्रायत्त होते हैं।[2] अर्थात् वृत्त वर्णिक छन्द हैं और जाति मात्रिक छन्द। जाति और उपजाति का अन्तर यही है कि जाति के प्रथम चरण मे प्रयुक्त प्रथमाक्षर यदि गुरु हो तो, अन्य चरणों के प्रथमाक्षर भी गुरु होंगे। यदि प्रथम चरण का प्रथम वर्ण लघु हो तो अन्य चरणों के प्रथमाक्षर भी लघु ही होंगे। इस विषय मे साकर्य नही हो सकता।

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ. 100
2 छन्दोदर्पण-सञ्ज्ञा प्रकरण, 7

किन्तु उपजाति मे चरणों के प्रथम वर्ण कवि की इच्छा के अनुसार गुरु लघु मे कोई हो सकते है, अर्थात् बन्धन नही है। जाति मे यति के स्थान पर प्रासयति का प्रयोग निषिद्ध है, पर उपजाति मे यह नियम नही है। जाति मे प्रास नियम अनिवार्य है, किन्तु उपजाति मे प्रास का कोई प्रतिबन्ध नही है।[1]

सामान्यत. उत्पलमाला, चम्पकमाला, शार्दूलविक्रीडित, मत्तेभविक्रीडित— इन वर्णिक छन्दो, कद नामक जाति तथा सीसमु, तेटगीति, आटवेलदि नामक उपजातियो का प्रयोग तेलुगु महाकाव्यो मे किया गया है। समूचे काव्य को केवल द्विपद छन्द में ही रचने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। यह द्विपद छन्द मात्रिक छन्द है जिसमे प्रास-नियम एव यति-नियम दोनो का पालन किया जाता है। प्रास-नियम से रहित द्विपद को मजरी द्विपद कहा गया। 'पलनाटि वीरचरित' नामक वीरकाव्य मजरी द्विपद मे ही रचा गया है। इन छन्दो के अलावा भुजंगप्रयात, मानिनी, मालिनी, महास्रग्धरा, स्रग्विणी, स्रग्धरा, मत्त-कोकिल, तोटक, उत्साह, कविराजविराजित, पचचामर, पृथ्वी, लयविभाति, लयग्राही, वनमयूर, वसन्ततिलक, स्वागत, मंगलमहाश्री आदि विशेष छन्दो का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। इन छन्दो का बहुत ही विरल प्रयाग महाकाव्य-गत कुछ विशेष स्थितियो मे ही किया गया है। इनमे से कुछ का लक्षण जगन्नाथ प्रसाद भानु ने निरूपित किया है। भानुकवि के द्वारा निरूपित छन्द है चम्पकमाला, शार्दूलविक्रीडित, मत्तेभविक्रीडित, स्वागत, वसन्ततिलक, पृथ्वी, पचचामर, तोटक, स्रग्धरा, महास्रग्धरा, स्रग्विणी, मालिनी एव भुजगप्रयात। चम्पकमाला के लिए भानु जी का लक्षण है, भम स ग।[2] तेलुगु में व्यवहृत चम्पकमाला इस से भिन्न है। भानु जी ने वर्णवृत्तो के अन्तर्गत एक 'कन्द' का लक्षण बताया है। किन्तु तेलुगु का 'कन्द' मात्रावृत्त है। तेलुगु छन्दों का वर्गीकरण मूलस्रोत की दृष्टि से दो रूपो मे हो सकता है, यथा (1) सस्कृत छन्द (2) देशीय छन्द। प्राय सभी वर्णिक छन्द सस्कृत साहित्य से तेलुगु मे आये हैं। देशीय छन्द तेलुगु के अपने हैं जो कन्नड, तमिल आदि भाषाओं के छन्दों से मेल खाते है। द्विपद, रगड, तेटगीति, आटवेलदि, सीसमु देशीय छन्द है।

तेलुगु मे व्यवहृत वर्णिक छन्दो मे चार प्रमुख है और इन चारो मे से एक 'शार्दूलविक्रीडित' का संस्कृत साहित्य में विपुल प्रचार है। विशेषकर प्राच्य प्रदेश के निवासी गौडीयों का यह अत्यन्त प्रिय छन्द है, जिसका पता नाट्य शास्त्र के 'शार्दूललीला प्राच्येषु' वाले कथन से लग जाता है। औचित्य

---

1. अप्पकवीयमु, 4—261, 262 2. छन्दप्रभाकर, पृ. 132

विचार के लिए प्रसिद्ध क्षेमेन्द्र के अनुसार यह शौर्यवर्णन के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। "शौर्यस्तवे नृपादीना शार्दूलविक्रीडितम् मतम्"[1] हिन्दी मे चन्द, तुलसी और केशव ने इसका प्रयोग किया है। पृथ्वीराजरासो मे इसको 'माटिका' नाम दिया गया है, किन्तु लक्षण मे भिन्नता नही है । इस छन्द के अतिरिक्त मत्तेभविक्रीडित, चम्पकमाला और उत्पलमाला छन्दो का विस्तृत रूप मे प्रयोग तेलुगु के महाकाव्यों मे दृष्टिगत होता है । सस्कृत साहित्य में इन तीनो छन्दो का प्रयाग कदाचित् ही किसी कवि ने किया हो । हिन्दी में लक्षणकारो ने केवल मत्तेभविक्रीडित का निरूपण किया है और महाकाव्यो मे इसका अभाव है । वर्णिक छन्दो को संस्कृत से ग्रहण करने के बावजूद उनको विशेष रूप से विकसित करके तेलुगु महाकाव्यों मे प्रयुक्त किया गया है ।

तेलुगु महाकाव्यों के सृजन मे बहुत पहले, आदि कवि नन्नय भट्ट से भी पूर्व का साहित्य इस समय उपलब्ध नही है । अतः यह कहना कठिन है कि ईसा का ग्यारहवी शताब्दी से पहले के तेलुगु काव्यों मे छन्दयोजना की कौन-सी प्रवृत्ति वर्तमान थी । नन्नय ने जिन छन्दो का व्यवहार अपनी कृति मे किया था, अविकल रूप से उनकी परपरा परवर्ती काव्यो मे गृहीत हुई । नन्नय से पूर्व के शिलालेख प्राप्त हुए है, जिनमे देशीय छन्दो का व्यवहार हुआ है, सस्कृत छन्द एक भी नही है । उदाहरणार्थ युद्धमल्ल के बेजवाडा शिलालेख मे मध्याक्कर छन्द तथा पडरग के अद्दंकि शिलालेख मे तरुवोज छन्द का प्रयोग किया गया है ।[2] देशीय छन्दो के विषय मे श्री कोराड रामकृष्णय्या जी का मत है कि सस्कृत और प्राकृत के लक्षणकारो ने दक्षिण में परपरा रूप से प्रचलित अनेक प्राचीन गीतरचनाओ को मात्रिक छन्दो के रूप मे ग्रहण किया और तेलुगु के देशीय छन्द भी नन्नय के समय मे या उन से दो-तीन शताब्दी पूर्व के शिलालेखो मे आकस्मिक रूप से उत्पन्न नही, बल्कि ईस्वी सन् के आरंभ के प्राचीन तमिल साहित्य एव नाट्यशास्त्रकार भरत के युग के है ।[3] नन्नय भट्ट ने परपरा से प्राप्त देशीय छन्दो का सस्कार करके, सस्कृत के वर्णवृत्तों को तेलुगु छन्दो के अनुरूप यति एवं प्रास से विभूषित करके मार्ग प्रशस्त किया । तेलुगु कवियो ने अपूर्व रीति से इन छन्दो का विकास किया है । कहने का यही आशय है कि तेलुगु के छन्दसौन्दर्य के मूल में कम से कम एक हजार वर्ष की काव्यसाधना

---

1. आन्ध्रमहाभारतमु—छन्दशिल्पमु, पृ. 387
2. शासनपद्यमजरी, पृ 1–3
3 दक्षिणदेश भाषा-सारस्वतमुलु: देशि, पृ. 207

का रहस्य छिपा हुआ है। श्री गुटूरि शेषेन्द्रशर्मा के अनुसार तेलुगु कवियों ने विशिष्ट रूप से पद्यशिल्प या छन्दशिल्प की अपूर्व सृष्टि की है और इस शिल्प-संपदा के आधार पर एक अलग शास्त्र रचने की आवश्यकता है।[1]

तेलुगु महाकाव्यो मे प्रयुक्त मात्रिक छन्दों में एक 'कन्द' हिन्दी मे प्रयुक्त गाहा छन्द से साम्य रखता है। इसका कारण यही है कि ये दोनो छन्द एक ही स्रोत से ग्रहण किये गये है और वह स्रोत प्राकृत साहित्य है। प्राकृत की गाथा या गाहा को ही सस्कृत मे आर्या कहा जाता है। गाथा का यह लक्षण है—

"पादे द्वादश विषमे मात्राश्चाष्टा दश द्वितीयेहि ।
पंचदश चुत्तरीये कथिता गाथा तथैवार्या ॥"[2]

प्राकृतपैंगल्म के अनुसार—

सत्त गणा दीहंता
जो णलहु चट्ठ णेह जो विसमे
तह गाहे बिह अद्धे
छट्ठं लहुअं बिआणेहु[3]

अर्थात्—"जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह बारह, दूसरे में अट्ठारह और चौथे मे पन्द्रह मात्राएँ हो, उसे आर्या कहते है। इसके विषम गणो मे जगण का निषेध है और अन्त मे गुरुवर्ण होता है।"[4] इस आर्या-परिवार का एक छन्द 'आर्यागीति' है जिसको स्कंधक, खधा या साहिनी भी कहा गया है। प्राकृत का यह स्कंधक ही तेलुगु का बहुप्रचलित 'कन्दपद्य' है। इस छन्द मे चतुष्कलात्मक (चार मात्रावाले) गणों का ही विधान है। उसके विषम चरणो मे बारह तथा सम चरणों मे बीस मात्राएँ होती हैं। विषम गणों में जगण नही होता और अन्त मे गुरु होता है।[5] अत. स्पष्ट है कि गाथा और कन्द मे प्रथम एव तृतीय चरण समान मात्रासख्यक है। उदाहरण के तौर पर हिन्दी का एक गाथा तथा तेलुगु का एक कन्द पद्य प्रस्तुत हैं।

"अबुधा अलीह बाला, वयउं उच्चरिय भिन्न रस एतम्
लाहु आ लुहार पुत्ता, तुं पुत्तीय राह संधीय।"[6]

---

1. साहित्य-कौमुदी, पृ. 33
2 हिन्दी साहित्यकोश (पहला भाग), पृ॰ 259
3 आन्ध्रमहाभारतमु : छन्दशिल्पमु, पृ. 437
4. छन्दप्रभाकर, पृ. 99
5. वही पृ. 100
6. पृथ्वीराजरासउ प 35

"आन्ध्रीस्तनापहासुलु
सधृत मधुपाब्ज मुकुल सदृशलतिनी
रंध्रमुलु कुचमुलखिलपु
रंध्री जनतिलक मचलराजात्मजकुन्"[1]

तेलुगु के मात्रिक छन्दो की रचना मात्रागणों के आधार पर होती है और हिन्दी में यह पद्धति नहीं है। भानु जी ने ट, ठ, ड, ढ, ण—इन मात्रिक गणो का लक्षण उपभेद सहित बताया है। किन्तु न तो मात्रिक गणों का उतना प्रचलन ही हुआ और न वे उतने परिचित हो सके। तेलुगु क्षेत्र मे स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। तेलुगु के लक्षणकारो ने इन्द्रगण, सूर्यगण तथा चन्द्रगण की परिकल्पना की है। हगण तथा नगण सूर्यगण है। नल, नग, सल, भ, र एव त इन्द्रगण है। चन्द्रगणो मे नगग, नह, सल, भल, भगुरु, मलघु, सव, सह, तल, रल, नव, नलल, रगुरु एव तग की परिगणना होती है।[2] श्री कोराड राम-कृष्णय्या के अनुसार दक्षिणदेशीय छन्दो का समन्वय सस्कृत और प्राकृत के मात्रा-छन्दो से करके तेलुगु के लक्षणकारो ने इन मात्रागणो की परिकल्पना की है।[3] हिन्दी में मात्रिक-छन्दों का रूप गठन मात्रागणो के आधार पर नही है, केवल मात्राओ की सख्या के आधार पर है, जैसे चौपाई छन्द मे 16 मात्राएँ होती है।

तेलुगु महाकाव्यो मे मात्रिक एव वर्णिक छन्दो की आनुपातिक स्थिति को दो प्रतिनिधि महाकाव्यो के आधार पर समझा जा सकता है। श्री निडुद-वोलु वेंकटराव की गणना के अनुसार कुमारसभव मे 895 मात्रिक छन्दों एव 454 वर्णिक छन्दो की योजना की गयी है[4] 'रामाभ्युदय' मे 1011 मात्रिक छन्दों एवं 465 वर्णिक छन्दो की योजना हुई है। इस प्रकार हम समझ सकते है कि तेलुगु महाकाव्यो मे वर्णिक छन्दों के साथ मात्रिक छन्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया गया है। फिर भी हिन्दी महाकाव्यो की तुलना मे तेलुगु क्षेत्र मे वर्णिक छन्दों की अधिकता असदिग्ध है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी महाकाव्य पर अपभ्रंश की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रभाव है और तेलुगु महाकाव्य संस्कृत की परम्परा से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित है।

---

1. कुमारसम्भव 3—54
2 छन्दोदर्पण, 1—19
3 दक्षिदेश भाषा सारस्वतमुलु-देशि, पृ 155
4 कुमारसंभव, भूमिका, पृ. 17

छन्दविधान तेलुगु महाकाव्यो मे दो प्रकार का दृष्टिगत होता है—(1) केवल 'द्विपद' छन्द मे समूचे काव्य की रचना (2) संस्कृत छन्दों एव देशी छन्दो के प्रयोग से छन्दोवैविध्ययुक्त रचना। तेलुगु के द्विपद-काव्य दोहा-चौपाई शैली में लिखित हिन्दी काव्यों से तुलनीय हैं। दोनो में यह साम्य है कि छन्दो की विविधता के अभाव में प्रवाह रूप से कथा-कथन इन काव्यों में भली भाति सम्पन्न हुआ है। दोनो मात्रिक छन्द होने के कारण गेयता और लोकतत्व का समावेश इन काव्यो मे हो सका है। रामचरितमानस की लोक-प्रियता का एक कारण दोहो और चौपाइयों की गेयता भी है। उभय क्षेत्रों के काव्यो मे यह अन्तर है कि हिन्दी में दो छन्दों का साथ-साथ प्रयोग हुआ है और तेलुगु मे एक ही छन्द का प्रयोग। इस अन्तर का यह कारण है कि हिन्दी कवियों के सामने अपभ्रंश की कडवक शैली थी और तेलुगु कवियों के सम्मुख जनसाधारण मे प्रचलित गीतों का परिष्कृत रूप द्विपद छन्द था। इसी प्रकार तेलुगु के छन्दोवैविध्यपरक महाकाव्य हिन्दी के पृथ्वीराजरासो, रामचन्द्रिका आदि से तुलनीय हैं। तेलुगु में आठ से अधिक प्रकार के छन्दो का प्रयोग बहुत ही कम है। किन्तु पृथ्वीराजरासो, रामचन्द्रिका, राजबिलास, सुजानचरित आदि में कई प्रकार के छन्द दृष्टिगत होते है। अत कह सकते है कि तेलुगु की अपेक्षा छन्दो की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यो मे वैविध्य की मात्रा अधिक है।

सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन की प्रवृत्ति तेलुगु के महाकाव्यों मे दृष्टिगत होती है। इस क्षेत्र मे सर्ग को आश्वास कहा गया है। आश्वासो मे प्राय: बहु-प्रचलित सामान्य छन्दों और आश्वासो के अन्त मे विशेष छन्दो का प्रयोग तेलुगु महाकाव्यों की विशेषता है। उदाहरणार्थ 'मनुचरित्र' के प्रथम आश्वास के अन्त मे उत्साह, चतुर्थान्त मे 'पृथ्वी', पचमात में मालिनी एव छठे के अन्त मे 'वनमयूर' का प्रयोग मिलता है। 'आमुक्तमाल्यदा' के आश्वासो के अन्त मे 'भुजगप्रयात' 'मालिनी', 'स्रग्विणी' 'मत्तकोकिल' एव 'तोटक' की योजना की गयी है। हिन्दी क्षेत्र मे केवल 'मानस' में ही यह प्रवृत्ति दिखाई पडती है। जायसी और लाल की कृतियो मे दोहा, चौपाई को छोडकर अन्य छन्द का प्रयोग हुआ ही नहीं। रासो, रामचन्द्रिका आदि में विविध प्रकार के छन्दों का सर्वत्र प्रयोग है। अत: इन काव्यो मे सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन का प्रश्न ही नही उठता।

वर्ण्यविषय एव छन्द का सम्बन्ध एक जटिल विषय है, जिसके बारे मे निश्चित रूप से कहना कठिन कार्य है। अमुक विषय के लिए अमुक छन्द उपयुक्त है इस तरह का सिद्धान्त बनाया नहीं जा सकता है। क्योकि कोमल

परुष, उल्लासमय, विषादमय इत्यादि विविध प्रसंगों में एक ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग कवियों ने किया है। कविसम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण के अनुसार रसानुकूल रूप मे छन्द-प्रयोग करने मे कविकुल शिल्प अनन्त प्रकार का होता है। डॉ माधवशर्मा के शब्दों मे "रसप्रधान काव्य का छन्द नामक अग विभाव, अनुभाव तथा सात्विक भाव के वर्णन और स्थायी एव संचारी की व्यजना के अनुकूल होना चाहिए, इसको सभी काव्य-रसिको ने स्वीकार किया है। विशिष्ट विभाव एव रस के लिए उचित छन्दो का उल्लेख अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार किया गया है। अत. छन्दों के नाम के आधार पर की जानेवाली औचित्य-चर्चाओ को परमार्थ नही मान सकते है।"[1] फिर भी महाकाव्यो मे दृष्टिगत कुछ छन्दो की विषयानुरूपता का कथन असगत नही है। कविवर नन्नेचोड ने दक्ष के द्वारा परमेश्वर की स्तुति के सन्दर्भ मे 'लयग्राही' एव 'लयहारिणी' छन्दों का प्रयोग किया है जिनमे शिव की नृत्य-भगिमा का वर्णन है।[2] रामभद्र कवि ने जलक्रीडा-वर्णन मे लयग्राही छन्द का प्रयोग किया है।[3] अल्लसानि पेद्दनार्य ने देवागनाओं के फूल तोडते हुए परस्पर वार्तालाप करने के प्रसग मे 'रगड' छन्द को प्रयुक्त किया है।[4] ये सब, छन्दो के प्रसगोचित विधान के लिए उदाहरण है। हिन्दी क्षेत्र के महाकाव्यो की चर्चा के अवसर पर तुलसी और केशव की इस प्रवृत्ति को हम देख चुके हैं।

तेलुगु छन्दों की यति विलक्षण है जो किसी अन्य भाषा के काव्यो मे दिखाई नही पडती। यति की परिकल्पना के विषय मे तेलुगु काव्य अन्य भाषा-काव्यों से भिन्न है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव हिन्दी मे यति का अर्थ विराम है। "बहुत से छन्दो मे बहुधा चरण के किसी स्थल पर रुकावट, विराम या विश्राम की भी आवश्यकता होती है। इसके लिए नियमित वर्णों या मात्राओ पर बहुत थोडी देर के लिए रुकना पडता है। इस रुकने की क्रिया को यति कहते है।"[5] तेलुगु के यति वर्णमैत्री रूप मे है तो सस्कृत, हिन्दी आदि मे पदच्छेद रूप मे है। यति को तेलुगु के लक्षणकारो ने 'वलि' के नाम से व्यवहृत किया। नन्नयभट्ट के अनुसार—

> **"आद्यो वलिर्द्वितीयो वर्णः प्रासोत्र पादपादेषु**
> **स्वस्वचरणेषु पूर्वः प्रासस्सर्वेषुचैक एव स्यात्"**[6]

---

1. आन्ध्रमहाभारतमु . छन्दशिल्पमु, पृ. 104
2. कुमारसभव, 2—97 से 100
3. रामाभ्युदय, 1—82
4. मनुचरित्र, 3—84
5. काव्यप्रदीप पृ. 277
6. अप्पकवीयमु, 3 3

अर्थात्–आन्ध्र भाषा में पद्यों के प्रत्येक चरण का प्रथम वर्ण वलि (यति) है और द्वितीय वर्ण प्रास है। प्रथम चरण के दूसरे अक्षर को ही अन्य तीनों चरणों में द्वितीयाक्षर के रूप में दोहराना चाहिए। तेलुगु के छन्दों में चरण के प्रथम अक्षर को अथवा उससे मैत्री रखनेवाले अक्षर को यतिस्थान में संयोजित करना अनिवार्य है। यह नियम केवल देशीय छन्दों में ही नहीं, बल्कि संस्कृत से गृहीत वर्णवृत्तों में भी लागू होता है। वर्णमैत्री के आधार पर तेलुगु के काव्यग्रन्थों में यति की योजना विविध रूपों में की गयी है। इन विविध रूपों को सामने रखकर छन्द-शास्त्र के लक्षणकारों ने यति-भेदों का निरूपण किया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में जिस प्रकार अलंकारों की संख्या में वृद्धि होती गयी, उसी प्रकार तेलुगु के छन्दोग्रन्थों में यति-भेदों की संख्या बढ़ती गयी। भीमन ने शुरू में 10 यति-भेदों का लक्षण बताया, बाद में अनन्तामात्य के छन्दोदर्पण में यतियों की संख्या 24 हो गयी। चित्रकवि पेद्दना ने 27 यतियों का तथा अप्पकवि ने 41 यति-भेदों का लक्षण बताया।

वर्णमैत्री के रूप में संयोजित यति के कारण तेलुगु महाकाव्यगत छन्दों में श्रुतिरंजकता का समावेश हुआ। प्रास नियम के कारण छन्दों में वर्णों की आवृत्ति हुई जो उनकी संगीतात्मकता में सहायक सिद्ध हुई। इस प्रकार यति एवं प्रास के विशिष्ट आभूषणों से विभूषित छन्दों के कारण तेलुगु काव्य नाद-सौन्दर्य में संस्कृत काव्यों से आगे बढ़ गये हैं। तेलुगु महाकाव्यगत छन्दों के यति एवं प्रास हिन्दी छन्दों की तुकान्तता से तुलनीय है।

तेलुगु के महाकाव्यों में छन्दों के अतिरिक्त अलंकृत गद्यखण्डों का भी विधान दिखाई पड़ता है। ये गद्यखण्ड काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'कादम्बरी', 'दशकुमारचरित' आदि संस्कृत गद्यकाव्यों के टक्कर के हैं। विद्यापति के द्वारा अपभ्रंश में रचित 'कीर्तिलता' में अलंकृत गद्यखण्ड मिलते हैं। हिन्दी में रासोग्रन्थों में कुछ वचनिकाएँ मिल जाती हैं। ये वचनिकाएँ छन्द नहीं, बल्कि गद्य ही है। तेलुगु महाकाव्यों में प्रयुक्त अलंकृत गद्यखण्ड प्राय: वर्णनात्मक है। विजयविलास में अर्जुन के द्वारा देखे गये पुण्य-क्षेत्रों के वर्णन के लिए एक गद्यखण्ड प्रयुक्त है। लज्जा भाव के कारण रमणीय सुभद्रा के गमन-वर्णन में भी गद्य है। पारिजातापहरण में चन्द्रिका-विहार के वर्णन में तथा मनुचरित्र में आखेट-प्रसंग में गद्य का प्रयोग मिलता है।

आधुनिक युग से पूर्व के साहित्य में प्राय: सभी कवियों की यह मान्यता दिखाई पड़ती है कि कुछ गण और कुछ छन्द शुभदायक हैं। काव्य के आदि में उन शुभ गणों की योजना से युक्त छन्द के प्रयोग से काव्य की निर्विघ्न

परिसमाप्ति होगी, काव्यकर्ता और संरक्षक दोनो सुखी होगे, इत्यादि । छन्द शास्त्र के ग्रन्थो मे गणो के देवता तथा शुभाशुभ फल बताये गये है । कुमारसभवकार नन्नेचोड को लक्ष्य करके अथर्वण नामक छन्दशास्त्री ने लिखा था—"मगण के साथ रगण का प्रयोग काव्य के आरभ मे करनेवाले कवि का मरण निश्चित है । पहले टेकणादित्य ने इस प्रकार की योजना की थी । इसके फल स्वरूप युद्ध मे उसकी मृत्यु हुई थी ।"[1] ऐसी मान्यताओ से परिचालित होने के कारण तेलुगु के महाकाव्यो मे प्रथम छन्द के रूप मे शार्दूलविक्रीडित या उत्पलमाला की योजना की गयी है । एक मे मगण सर्वप्रथम गण है और दूसरे मे भगण । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ।

"श्रीकांतामणि कन्नोरगि मदि धात्रिन्मंचिननर्न् तत् क्षिति"[2] (मगण)

"श्रीमदि किं प्रियं बेसग जेच्चिन उय्येल लील बंजयं"[3] (भगण)

"श्रीभूपुत्रि विवाह वेल निजमंजीराग्र रत्नस्थली"[4] (मगण)

"श्रीकमनीय हारमणि चेन्नुग दानुनु कौस्तुभंबुनं"[5] (भगण)

हिन्दी क्षेत्र मे तुलसी, चन्द और केशव के महाकाव्यो में शुभगण से काव्यारभ की प्रवृत्ति दिखाई पडती है, यथा—

"वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि"[6] (मगण)

"छत्रं यामद गंध घ्राण लुब्धा अलि भूरि आच्छादिता"[7] (मगण)

"यहि पहिले परकाश में मंगल चरण विशेष"[8] (नगण)

छन्दयोजना की दृष्टि से उभय क्षेत्रो के महाकाव्यों के तुलनात्मक अनुशीलन के उपरान्त निष्कर्ष रूप मे कह सकते है कि हिन्दी महाकाव्यों मे प्राचुर्य की दृष्टि से मात्रिक छन्द वर्णिक छन्दो की अपेक्षा अधिक है । केवल केशव इस प्रवृत्ति के अपवाद है । तेलुगु के महाकाव्यो मे मात्रिक छन्दो के साथ-साथ वर्णिक छन्दो का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है । फिर भी हिन्दी की तुलना मे तेलुगु मे वर्णिक छन्दो का प्रयोग अधिक है । हिन्दी महाकाव्यों में मात्रिक छन्दो की अधिकता प्राकृत-अपभ्रश की परपरा का फल है । अपभ्रश काव्यो मे प्रयुक्त छन्दो में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति उनके गेय गुण सें तथा नृत्य की उपयुक्तता से प्रमाणित है । अपभ्रश की परपरा में लिखित होने के कारण हिन्दी महाकाव्यों में भी उपर्युक्त गुणों का समावेश हो गया है । आलोच्य भाषाओं के

---

1. नन्नेचोडुनि कवित्वमु, पृ. 87
2. पांडुरंगमाहात्म्य
3. पारिजातापहरण
4. वसुचरित्र
5. आमुक्तमाल्यदा
6. रामचरितमानस
7. पृथ्वीराजरासउ
8. रामचन्द्रिका

महाकाव्यो मे सामान्यतः प्रयुक्त छन्दों में, आर्यागीति का तेलुगु संस्करण 'कदमु' हिन्दी की 'गाथा' से साम्य रखता है। शार्दूलविक्रीडित छन्द दोनो क्षेत्रों में समान है किन्तु पृथ्वीराजरासो मे उसका नाम साटिका है। हिन्दी महाकाव्यगत छन्दों मे तुकान्तता के कारण श्रुतिरंजकता है। छन्दों की तुकान्तता संस्कृत और प्राकृत में नही थी, यह अपभ्रंश की प्रवृत्ति है। हिन्दी महाकाव्यो ने कतिपय अन्य प्रवृत्तियों के समान इसको भी अपभ्रंश से ग्रहण किया है। तेलुगु छन्दो मे श्रवण-सुभगता यति एवं प्रास के कारण है। तेलुगु की यति वर्णमैत्री रूप मे होने के कारण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी से विलक्षण प्रकार की है। हिन्दी में दोहा-चौपाई शैली के समान तेलुगु का द्विपद छन्द आख्यान-कथन के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है। विविध छन्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दोनों साहित्यो मे दृष्टिगत होती है, पर वैविध्य की मात्रा हिन्दी मे अधिक है। प्रसंगोचित रूप मे छन्दों का विधान एवं काव्यारंभ मे मंगलदायक गणो का प्रयोग—ये दोनों प्रवृत्तियाँ उभय क्षेत्रों में समान हैं। हिन्दी में रासोकाव्यो को छोडकर अन्य महाकाव्यो में गद्य का प्रयोग नही हुआ। किन्तु तेलुगु मे अलंकृत गद्यखण्ड प्रायः सभी महाकाव्यों मे स्वल्प संख्या मे ही सही दिखाई पडते हैं। ये गद्यखण्ड काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से दशकुमारचरित एवं कादम्बरी के टक्कर के है।

नवम अध्याय

भाषाप्रयोग

तेलुगु साहित्य मे भाषा-प्रयोग सबधी दृष्टि दो प्रकार की लक्षित होती हैं। सस्कृत गर्भित भाषा-शैली में कतिपय कवियो ने अपनी अनुरक्ति दिखाई तो कुछ कवि प्रसन्न एव सर्वजन-सवेद्य तद्भव-देशज शब्दप्रधान शैली के प्रेमी रहे है। नन्नय एव तिक्कना को क्रमश: इस प्रथम एव द्वितीय पद्धति के आचार्य माना जाता है। पालकुरिकि सोमन एव नन्नेचोड ने अपनी कृतियों मे 'जानु तेनुगु' शब्द का प्रयोग करके यह आभास दिया कि तेलुगु भाषा की इस विशिष्ट शैली मे प्रसन्नता नामक गुण है तथा सरल और सर्वसामान्य रूप मे भावो की अभिव्यक्ति इसमे होती है।[1] इस 'जानु तेनुगु' शब्द के ठीक अभिप्राय के सबध मे आलोचको मे मतैक्य नही है। फिर भी स्थूल दृष्टि से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह तेलुगु की अपेक्षाकृत सुलभ तथा प्रौढ सस्कृत समासो से रहित शैली है। तेलुगु कवियो से पहले 'जाण्' एव 'जाण्णुडि' शब्दो का प्रयोग कन्नड भाषा के कवियो ने किया। श्री वेदम् वेंकटराय शास्त्री का मत है—"कन्नड कविता की रीतियो मे से एक लता नन्नय के एक शताब्दी बाद आन्ध्र प्रान्त मे फैलकर देशी रचना एव जानु तेनुगु के मार्ग पर आरूढ होकर तिक्कन आदि मे पुष्पित, पालकुरिकि सोमनाथ मे विकसित और नन्नेचोड मे फलवती हुई है।"[2] परिणाम यह हुआ है कि तेलुगु के महाकाव्यो मे दोनो प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। रगनाथ रामायण आदि द्विपद काव्यो मे देशीयता केवल छन्द मे ही नही, बल्कि भाषा मे भी है। तत्सम शब्दो का नितान्त बहिष्कार करके एक अभिनव प्रयोग के रूप मे केवल देशज एव तद्भव शब्दो की शैली में कुछ महाकाव्यो की रचना हुई, जिनको 'अच्च तेलुगु काव्य' या 'शुद्धान्ध्र-काव्य' कहा जाता है। किन्तु यह प्रयोग बहुत कृत्रिम होने के कारण सफल नही हो सका। प्रबुद्ध पाठकवर्ग को ध्यान में रखकर सस्कृत के विद्वानो के द्वारा रचित होने के कारण अधिकांश महाकाव्यों में प्रधानत. तत्सम-प्रधान शैली के दर्शन होते हैं। साथ ही सरल तथा लघु देशज शब्दो से युक्त छन्द भी दृष्टिगत होते हैं।

आन्ध्र महाकाव्यों में सस्कृत साहित्य की विविध रचना-पद्धतियों के साथ प्रचुर परिणाम मे शब्द भी ग्रहण किये गये। अत: तेलुगु महाकाव्यों के स्वारस्य का अनुभव सम्यक् रूप से करने के लिए सस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। इसी

1. कुमारसभव 1–35 तथा बसवपुराण 1–65,67
2. नन्नेचोडुनि कवित्वम्, पृ 114

बात को दूसरे ढग से यो कहा जा सकता है कि तेलुगु महाकाव्यो का सुष्ठु अध्ययन करने से सस्कृत मे भी पाडित्य मिल जाता है। आन्ध्रभाषा संस्कृत से शब्द यथावत् स्वीकार नही करती। अपनी प्रकृति के अनुसार बनाकर अपने कारकचिह्न जोड़कर तब अपनाती है। तत्सम शब्दो की रूप-निष्पादन-प्रक्रिया का विवरण तेलुगु के व्याकरण-ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। तेलुगु कवियो ने छोटे-छोटे तत्सम शब्दो का ही नही, प्रत्युत लम्बे-लम्बे समासों का भी प्रयोग अपनी कृतियो मे किया है। उदाहरणार्थ दो छन्द प्रस्तुत हैं—

एव्वतेवीबु भीतहरिणेक्षण योटि चरिञ्चेदोट ले
किव्वनभूमि भूसुरुड ने प्रवराख्युड नोव तप्पितिन्
क्रोव्वुन निश्शगाग्रमुनकुन् चनुदेंचि पुरंबु जेर नि
केव्विधि गांतु तेल्पगदवे तेरुवेद्दि शुभबु नीकगुन्[1]

उपर्युक्त अवतरण मे प्रयुक्त तत्सम शब्द है—भीतहरिणेक्षण, चरिञ्चु, वनभूमि, भूसुरुड, प्रवराख्युड, नगाग्रमु, पुरबु, विधि, शुभबु। इन नौ तत्सम शब्दो के साथ अठारह देशज शब्दो का प्रयोग इस छन्द मे किया गया है। सर्वत्र इसी अनुपात मे शब्द-योजना नही की गयी। सुदीर्घ समास के लिए निम्न-लिखित छन्द द्रष्टव्य है।

"कांचेन् वेंण्णबु ऊर्ध्वयोजन जटाघाटीस्थशाखोपशा
खांचज्झाट चरन्मरुत्रय दवीयः प्रेषितोद्यच्छदो
दंचत्कीट कृत व्रणच्छलन लिप्यापादिताध्वन्यनि
स्संचारात्त महाफलोपम फलस्फायद् वटक्ष्माजमुन्"[2]

यहाँ पर काचेन्, वेंण्णबुडु—इन दो शब्दो को छोडकर बाकी सब एक समास है जो छन्द के चारो चरणों मे व्याप्त है।

सस्कृत का प्रभाव तेलुगु महाकाव्यो की भाषा पर सुदीर्घ समासो के प्रयोग मे ही नही, बल्कि सस्कृत साहित्य से वाक्य उद्धृत करने में भी दिखाई पड़ता है, जैसे—'आनन्दो ब्रह्म'[3] ज्ञातिश्चेदनलेन किम्'।[4] और सब कवियो ने सस्कृत से शब्द लेकर अपने काव्यों मे सयोजित किया, किन्तु श्रीकृष्ण देवराय ने स्वरचित सस्कृत वाक्यों की योजना तेलुगु छन्दो मे की है, यथा—नास्तिशाक बहुता, नास्त्युष्णता, नास्त्योदन सौष्ठवम्, कृपया भोक्तव्यम्[5] वाक्य-रचना पर भी सस्कृत का प्रभाव 'आमुक्तमाल्यदा' मे दिखाई पड़ता है।

---

1. मनुचरित्र 2–39 2. आमुक्तमाल्यदा, 6–15
3. मनुचरित्र, 2–62 4. वसुचरित्र, 3–101 5. आमुक्तमाल्यदा, 1–84

तत्सम शब्दों मे लंबे-लंबे समास बनते है। तद्भव एवं देशज शब्दों की तेलुगु मे शब्द छोटे होते है। ऐसी शैली मे महाप्राण वर्णों का प्रयोग बिल्कुल नही होता। इसीलिए तो चिन्नय सूरि नामक वैयाकरण ने यह सूत्र बनाया—"तेलुगु के छत्तीस वर्ण है।" यहाँ पर स्मरणीय है कि संस्कृत मे पचास वर्ण हैं और प्राकृत मे पैंतालीस। संस्कृत के तत्सम शब्दों के कारण ही तेलुगु मे पचपन वर्ण हो गये। तेलुगु महाकाव्यो मे उच्चारण की दृष्टि से सरल तथा साधारण जनव्यहार के अपेक्षाकृत अधिक निकट भाषा-शैली का भी प्रयोग मिलता है।

"चुरुकु जूपुन गालिन कोरत नुरुकु
नुरुकु जूपुल बुट्टिचु नेरुकु वारि
थिरुकु वलिगुब्ब पालिड्ल थिगुरु बोंड्ल
सेव किच्चेद नीकु विच्चेयु मय्य"[1]

इस छन्द मे सिर्फ एक तत्सम शब्द सेवा है। निम्नोक्त छन्द मे एक भी तत्सम शब्द नही मिलता।

"सोगसि नव्वक नव्वु नेम्मोगमु वाडु
कलमु लीनेडु तलकु कोंगटि वाडु
पेद सादल ब्रतिकिचु पेंपु वाडु
पालमुन्नीटि लोन चूपट्टे नपुडु"[2]

उपर्युक्त दोनो शैलियो के प्रयोग से तेलुगु महाकाव्यो की भाषा अतीव समृद्ध हुई है।

कवियो की व्यक्तिगत विशिष्टता के अनुरूप विविध कवियो के भाषा-प्रयोग मे अन्तर आ जाता है। प्रत्येक मनुष्य के उच्चारण की भांति, आचरण-पद्धति की भाति, वाक्प्रवृत्ति की एक विशिष्ट शैली होती है, जो उसकी अपनी कही जा सकती है। कंठस्वर के आधार पर जिस प्रकार व्यक्तियो को अंधेरे मे भी पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार भाषा-शैली के आधार पर पारखी लोग झुण्ड में मिल जाने पर भी काव्य-विशेष को ढूंढ़ निकाल सकते है। तेलुगु महाकाव्यों में तत्सम शब्दो मे कोमलकान्तता प्राय. बनी हुई है। पेद्दनार्य की अपेक्षा तिम्मनार्य मे इस कोमलत्व की मात्रा अधिक है। इसलिए काव्य-रसिक 'मुक्कु तिम्मनार्यु मुद्दु पलुकु' (तिम्मन की प्यारी बोली) कहकर उस काव्य-भाषा की प्रशंसा करते आ रहे है। इसके विपरीत भाषा-रीति श्रीकृष्णदेवराय

---

1 श्रीकालहस्ति ( ) 3 71 2 3–45

की है जो प्रधानत गौड़ी रीति है। आचार्य लक्ष्मीकान्तम् जी के अनुसार "एक जगह मुक्कु तिम्मन की भांति मधुर रचना करने मे समर्थ यह कवि दूसरी जगह गाढे नारिकेल पाक मे अपनी अनुरक्ति दिखाता है। उन स्थानो पर कवि भावव्यक्ति के लिए छटपटाता हुआ-सा लगता है। सहज रूप से सस्कृत कवि होकर कालक्रम में सभवत तेलुगु कवित्व का अभ्यास इस कवि ने किया हो—इस कथन के लिए ऐसे पद्य निदर्शन हैं।"[1]

रामराजभूषण के व्यक्तित्व मे सगीत-कला के रहस्यो का ज्ञान निहित है। निम्नलिखित गद्यखण्ड मे सगीततत्व की मनोहरता द्रष्टव्य है—"मरियु नवकुलाचल सन्तानबु सतान कुसुमवासना समागत सारग सगीत भृगी तरगबुलु-पागबुलगा पाडु वेल्पुगाणील पाणीरित माणिक्यवीणा मधुर क्वाणामृतबुल गरगि जरुगु कुरुविद कदलबुल जलबुल पदनैन गैरिकतलंबुल पोडमिन कारणगुणबुल पगडंबु डबु विडबिचु निगनिगनि तोगरु निगुड नेगडु"[2] आचार्य के. वी. आर. नरसिंहम जी ने लिखा कि वसुकार के गद्य तथा पद्य दोनो को स्वरकल्पना करके गानेवाले आज भी है।[3] महाकाव्यो की शैली में निखार कार्य है और उसके लिए कवियो का निरन्तर अभ्यास कारण। शैली की इस परिणति को शय्या-सौभाग्य के नाम से व्यवहृत किया गया है। इस प्रकार कवियो की व्यक्तिगत विशिष्टता के अनुरूप तेलुगु महाकाव्यो की भाषा में वैविध्य दिखाई पडता है।

तेलुगु के महाकाव्यो मे प्रसगोचित रूप में भाषा का प्रयोग दिखाई पडता है। कोमल प्रसगो की भाषा से उद्धत प्रसगो की भाषा भिन्न है। वर्ण-संघटन, गुण और समास के आधार पर काव्याचार्यो ने रीतियों का निरूपण किया था। वैदर्भी रीति की यह विशेषता है कि वह 'बन्धपारुष्य' से रहित 'शब्दकाठिन्य' से वर्जित और अतिदीर्घ समासो से मुक्त होती है। गौडी रीति इसके विपरीत 'ओज. कान्ति गुणोपेत' है। वैदर्भी रीति के लिए निम्नोक्त छन्द उदाहरण है।

"चिन्नि वेन्नेलकंदु वेन्नुदन्नि सुधाब्धि
पोडमिन चेलुव तोबुट्टु माकु
रहिदुट्ट जंत्रगात्रमुल राल् गरंगिचु
विमल गांधर्वंबु विद्य माकु"[4]

इसमे वरूथिनी नामक गधर्वागना प्रवर से वार्तालाप के अवसर पर

---

1. गौतमव्यासमुलु, पृ 38
2. वसुचरित्र, 2—11
3. आन्ध्रप्रबन्धमु-अवतरण विकासमुलु, पृ. 123
4. मनुचरित्र, 2—43

अपना परिचय देती है। छोटे-छोटे शब्दो से युक्त यह बंधपारुष्य-रहित शैली प्रसग के लिए सर्वथा अनुकूल है।

दक्षयज्ञ मे सतीदेवी के भस्मीभूत होने पर शकर की क्रोधाग्नि की व्यजना मे दीर्घसमास-बहुला, सयुक्ताक्षरो से युक्त भाषा-शैली का प्रयोग नन्नेचोड ने किया है, यथा—

"विविधास्त्रानीकजाताविरल बहुल सद्विस्फुलिंगाग्नि पुंद
त्पवमानाहारवक्त्रप्रकटित विष विभ्राजितोग्रानलंबुन्
सविकारात्मानि कोपोज्ज्वलतरविपुल ज्वाल धुंगुडि पर्वन्
भवकालाभील नेत्रोद्भव शिखि शिखलन् पद्मजाडबु दाकन्"[1]

हिन्दी महाकाव्यो मे भाषा-विषयक दृष्टि अपभ्रश काव्यो के समान प्राय लोकोन्मुखी है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी इसी दृष्टि का परिचय यों दिया है—

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई"[2]

रासोकाव्य अपभ्रंश के अधिक निकट हैं, अत: जनसाधारण के स्तर के अनुरूप उनकी भाषा-शैली है। सस्कृत के वर्णवृत्तो मे ही सस्कृताभास, तत्सम-बाहुल्य एव समास-योजना की प्रवृत्ति मिलती है। किन्तु अन्यत्र भाषा मे तत्सम शब्द बहुत कम है। डॉ माताप्रसाद गुप्त का यह निष्कर्ष है कि रासो की भाषा मे प्राकृत-अपभ्रश के रूढ रूपो के अवशेष अधिक हैं और नव्य भारतीय आर्य भाषा के रूप कम हैं।[3] इस कथन से यही व्यजित होता है कि रासोकाव्यों मे प्राकृत-अपभ्रश की भाषा-विषयक प्रवृत्तियो का पालन हुआ है।

वास्तव में, भक्ति आन्दोलन के कारण ही हिन्दी मे तत्सम शब्द बढते गये। डॉ. हरदेव बाहरी के शब्दों में "हिन्दी प्रदेश की बोलियो मे आनुपातिक दृष्टि से सब से अधिक संख्या तद्भव शब्दो की है। साहित्य मे भी 19वीं शती से पहले तद्भव शब्दो की ही प्रधानता थी। सच तो यह है कि तब तक जनभाषा ही साहित्यिक भाषा थी।········ कबीर, जायसी, तुलसी, बिहारी, भारतेन्दु महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद और पन्त की भाषा मे तद्भव शब्दो का क्रमिक ह्रास स्पष्ट लक्षित होता है। आज की परिनिष्ठित हिन्दी शब्द-भण्डार की दृष्टि से तत्समरूपप्रधान है ही।"[4]

---

1 कुमारसभव, 2—50 2. मानस-बालकाण्ड, 14—5

3 पृथ्वीराजरासउ, भूमिका, पृ. 157

4 हिन्दी साहित्य (प्रथम खण्ड) पृ 175

रामचन्द्रिका मे शास्त्रीय दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक है। केशव ने सस्कृत साहित्य से अविकल रूप मे कई अश ग्रहण किये थे। अत तत्सम शब्दों का बाहुल्य स्वाभाविक है। समूह रूप मे विचार किया जाय तो, हिन्दी महाकाव्यो की भाषा तद्भव शब्दप्रधान है और इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि हिन्दी कवियो के सामने अपभ्रंश की परपरा थी। डॉ रामसिह तोमर का अधोलिखित कथन सच है कि—"भावधारा के लिए मध्ययुगीन अनेक हिन्दी कवियो ने संस्कृत साहित्य की ओर देखा, किन्तु काव्य के बाह्य समस्त रूपो के लिए वे अपभ्रश की ओर झुके है।"[1] भाषा भी काव्य के बाह्य रूपों में से एक है।

कवियो की प्रेरक परिस्थितियाँ, युग तथा रुचि-वैशिष्ट्य के अनुरूप उनकी काव्य-भाषा मे अन्तर है। गोस्वामी जी और जायसी ने अपने महाकाव्यो मे अवधी भाषा का प्रयोग यद्यपि किया है, फिर भी तुलसी की अवधी और जायसी की अवधी मे भेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार "जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है सस्कृत का माधुर्य नही। वह सस्कृत की कोमलकान्त पदावली पर अवलबित नही है। उसमे अवधी अपनी स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।.........जायसी की पहुंच अवध में प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुच दीर्घ सस्कृत कवि-परपरा द्वारा परिपक्व चाशनी के भाण्डागार तक भी पूरी-पूरी थी।"[2]

तुलसी और केशव ने रामकथा के आधार पर महाकाव्य-रचना की। किन्तु दोनों की भाषा मे भारी अन्तर है। यह अन्तर अवधी और व्रजभाषा का ही अन्तर नही है, प्रत्युत् सादगी और कृत्रिमता का अतर है। "तुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य उसकी ऋजुता, उसकी अल्पालकार-प्रियता, उसकी रमणीयता, उसके लालित्य और उसके प्रवाह मे है और ये गुण रामचरितमानस मे चरम उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं।"[3] केशव की भाषा मे इस प्रकार का सौन्दर्य दिखाई नही पडता। वहाँ पर श्लिष्ट शब्दो की योजना से सबधित चातुर्य दिखाई पडता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषा के संबध में डॉ. नामवर सिंह का यह कथन द्रष्टव्य है। वे कहते है—"निश्चय ही चन्द बिहारी की भांति एक-एक शब्द

---

1. प्राकृत और अपभ्रश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ. 210
2 जायसी ग्रथावली की भूमिका पृ 197 3 तुलसीदास पृ 369

बहुत तराश खरादकर, बहुत सोच-विचार के साथ प्रयोग करनेवाले जडाऊ या शिल्पियो मे से न थे। वे मस्तमौला की तरह् शब्दों का बेलाग प्रयोग करते थे।"[1] इस प्रकार कवियो के भिन्न व्यक्तित्वो के अनुसार हिन्दी महाकाव्यो की भाषा वैविध्य से पूर्ण है।

तुलसी के महाकाव्य मे संस्कृत भाषा काण्डो के आरंभ मे निबद्ध श्लोको के रूप मे दिखाई पडती है। इसके अलावा स्तोत्रो मे भी दिखाई पडती है, जैसे–

मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महा रनधीर अजे॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भवरोग महागदमान अरी॥[2]

जायसी, लाल, मान आदि के काव्यो मे संस्कृत श्लोक बिल्कुल नही है। भाषा भी प्राय. तद्भवशब्द-प्रधान है। तेलुगु महाकाव्यो की भांति 'शीताशोर-मृतार्पणम्' 'आनन्दोब्रह्म' 'कृपया भोक्तव्यम्' जैसे वाक्य हिन्दी महाकाव्यो मे तद्भव शब्दो के साथ प्रयुक्त नही हैं। वास्तव में लबे लंबे समास हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है। आधुनिक काल मे हरिऔध जी ने 'रूपोद्यानप्रफुल्लप्राय-कलिका राकेंदुबिबानना' आदि सुदीर्घ समासो का प्रयोग किया है, किन्तु यह शैली लोकप्रिय नही बन सकी। तेलुगु महाकाव्यो मे पद्य के तीन या चारो चरणों मे परिव्याप्त एक ही समास का प्रयोग दिखाई पडता है। तुलसी ने भी इतने लबे समासो का प्रयोग नही किया है। इस प्रकार तत्सम शब्दो के प्रयोग मे तेलुगु के कुछ महाकाव्य हिन्दी से बहुत आगे बढ गये है।

हिन्दी के कुछ महाकाव्यों मे प्रसंगानुकूल रूप मे भाषा-प्रयोग दिखाई पडता है। मानस की निम्नलिखित पंक्तियो की तुलना, रावण पर युद्ध करने-वाले राम के वर्णन की पक्तियों से करने पर यह विशेषता स्पष्ट होती है।

"सुंदरता कहुं सुंदर करई। छबिगृह दीपसिखा जुन बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौ बिदेहकुमारी॥"[3]

वाटिका-प्रसग की उपर्युक्त पंक्तियो का सन्दर्भ कोमल है, क्योकि राम अपने मन मे सीता के सौन्दर्य की सराहना करते हैं। यहाँ पर भाषा कोमल है, द्वित्व वर्णों की आवृत्ति बिल्कुल नही है। अब राम के क्रोध का वर्णन करनेवाला छन्द भी द्रष्टव्य है।

---

1. संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो, परिशिष्ट (क), पृ. 196, 197
2. मानस–उत्तरकाण्ड, 13 (क)—9
3. मानस–बालकाण्ड, पृ. 230

"भए क्रुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे ।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे ।।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे ।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हंसे ।।"[1]

जोधराज ने मीर महिमाशाह एव कुसुमविचित्रा के मिलन के अवसर पर सुकुमार शैली का प्रयोग किया है, जैसे—

"कचनलता सी थहरात अंग अग मिलि
सीकर समूह अंग अगनि मे दरसै ।
चुम्बन कपोल नैन खण्डन अधर नख
गहत पयोधर प्रचण्ड पानि परसै ।।
आनद उमंगन मे मुसुकात बाद तुत
रात बतरात सतरात रस बरसै ।
लपटनि झपटनि मसकनि अनेक अंग
रति रंग जंगतै अनग रंग सरसै ।।"[2]

यह सुकुमार शैली वीरोत्साहपूर्ण उद्धत शैली से तुलनीय है। तुलना करने पर प्रसगानुसार भाषा की योजना मे कवि की सिद्धहस्तता स्पष्ट होती है। द्वित्व वर्णों के प्रयोग से युक्त शैली के लिए निम्नोक्त पक्तियाँ उदाहरण है।

'गजराजन सज्जै अग्गौ रज्जै वीर गज्जै लखि लज्जै ।
नीसान फरक्कै धीर धरक्कै, हर हर बक्कै गल गज्जै ।।
दोउ ओर उमग्गै समर सुरड्डै, बढ़ि बढ़ि तडै नख खंडै ।
बहु तोपन छुट्टै बीर अहुट्टै, फिर फिर जुट्टै बल चंडै ।।"[3]

इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यो मे वर्ण्य-विषय के अनुरूप भाषा-शैली लक्षित होती है।

हिन्दी क्षेत्र मे मध्यकाल के कवियो की भाषा मे अव्यवस्था दिखाई पडती है, जिस पर खीझकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा—"भाषा जिस समय सैकडो कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची, उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो व्रजभाषा काव्य मे थोड़ा-बहुत सर्वत्र पाया जाता है।"[4] तुलसी की भाषा परिनिष्ठित है, किन्तु जायसी मे न्यूनाधिक मात्रा मे

1. मानस, लंकाकाण्ड, 91 2. हम्मीररासो, 242 3. वही, 783, 784
4 हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ 220

अव्यवस्था है। शुक्ल जी के अनुसार "जायसी की वाक्यरचना ''तुलसी के समान सुव्यवस्थित नहीं है। उसमें जो वाक्य-दोष मुख्यत. दिखाई पड़ता है, वह न्यूनपदत्व है। विभक्तियो का लोप, सम्बन्धवाचक सर्वनामो का लोप अव्ययों का लोप जायसी मे बहुत मिलता है। ''इस लोप के कारण प्रसाद गुण बिल्कुल जाता रहा है और अर्थ का पता लगाना दुष्कर हो गया है।"[1]

इस प्रकार की अव्यवस्था तेलुगु महाकाव्यो की भाषा में नहीं मिलती। कारण तिक्कना, पेद्दना, रामराजभूषण, सूरना, तिम्मना आदि महाकवि बड़े ही व्युत्पन्न थे। तेलुगु की काव्यभाषा अपने मूल रूप मे नन्नय भट्ट के द्वारा अनुशासित थी जिसका अनुसरण परवर्ती कवियो ने किया। हिन्दी महाकाव्यो मे बोलियों का वैविध्य भी मिलता है। रासो, मानस और रामचन्द्रिका मे शब्दो के रूप एक समान नही है। उनमे भिन्नता है। रासो मे प्राकृत-अपभ्रंश के पुराने रूप है, मानस मे परिनिष्ठित अवधी है और केशव की ब्रजभाषा पर बुन्देलखण्डी प्रभाव है। किन्तु तेलुगु के सभी महाकाव्यों की भाषा सरचना की दृष्टि से एक है। कवियो की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार शैली-भेद हो सकता है। शब्दयोजना भिन्न-भिन्न हो सकती है, शब्द-भण्डार में अन्तर भी स्वाभाविक है। इन सब के बावजूद आलोच्यकाल के तेलुगु महाकाव्यों मे प्रयुक्त भाषा का व्याकरण एक ही है। हिन्दी और तेलुगु की काव्य-भाषा का यह स्पष्ट अतर है।

तेलुगु और हिन्दी के महाकाव्यों में सस्कृत-गर्भित भाषा के अतिरिक्त तद्भव-देशज शब्दों के बाहुल्य की शैली भी दिखाई पडती है। हिन्दी मे प्राचुर्य की दृष्टि से तद्भवात्मक शैली प्रधान है, यद्यपि तुलसी और केशव के प्रकाण्ड पाण्डित्य के फलस्वरूप काफी सस्कृत शब्दों का प्रवेश हो गया है। तेलुगु मे प्रचुरता सस्कृत गर्भित भाषा-शैली की है। हिन्दी मे अपभ्रंश काव्यो की भाषा-विषयक प्रवृत्ति का पालन हुआ है, परन्तु भक्ति आन्दोलन आदि सास्कृतिक परिस्थितियो के कारण हिन्दी मे अपभ्रंश की तुलना मे तत्सम शब्दो की मात्रा बढती गयी। तेलुगु के महाकाव्यो मे कवियों की व्यक्तित्व-भिन्नता के बावजूद भाषा की सरचना एक है। हिन्दी क्षेत्र मे बोली-वैविध्य के कारण संरचना की एकता सभव नही थी। कोमल प्रसंगो मे श्रवण-रजक भाषा और उद्धत प्रसगो मे कठोर वर्णो की योजना की प्रवृत्ति दोनो क्षेत्रों मे समान है।

---

1. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ. 194

दशम अध्याय

उपसंहार

हिन्दी और तेलुगु आधुनिक भारतीय भाषाएँ है, जो लगभग एक हजार वर्ष के साहित्य से समृद्ध है। इन भाषाओ के साहित्य सपन्न होने से पूर्व इस देश मे प्राचीन एव मध्यकालीन भाषाओ मे यथेष्ट साहित्य-सर्जना हो चुकी थी। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, तमिल तथा कन्नड़ के साहित्यों मे प्राप्त विविध काव्यरूपो, कला सबधी परंपराओ और रचना-रीतियो को सम्मुख रखकर उनके आधार पर आलोच्य भाषा-कवियो ने साहित्य-सृजन किया। पूर्ववर्ती काव्यरूपों का अपूर्व विकास अपनी प्रतिभा के बल पर किया। हिन्दी 'मध्यदेश' की भाषा है जो सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी केवल भाषा की दृष्टि से ही नही, प्रत्युत् साहित्य के विषय में भी है। आन्ध्र प्रान्त की तेलुगु भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से दूसरे परिवार की भाषा होने पर भी साहित्य की दृष्टि से सस्कृत और प्राकृत से पर्याप्त प्रभावित रही है। साथ ही भौगोलिक दृष्टि से समीपस्थ तमिल तथा कन्नड की रचनाओ का प्रभाव तेलुगु पर न्यूनाधिक मात्रा मे पडना स्वाभाविक था। अपभ्रश के उत्कर्षकाल तक तेलुगु साहित्य का भी समानान्तर रूप से विकास हो रहा था और अपभ्रश साहित्य विशेषत गूर्जर प्रदेश और हिन्दी प्रदेश तक ही सीमित था। सस्कृत और प्राकृत के समान देश के दक्षिणी प्रान्तो में इसका प्रसार नही था। परि-वेशगत इस साम्य और अन्तर के अनुरूप महाकाव्य का स्वरूप हिन्दी और तेलुगु मे समझा जा सकता है।

भारतीय साहित्य-दृष्टि में महाकाव्य को कवि की कीर्ति का मूलाधार समझा जाता था, क्योकि मुक्तक रचनाओ से आरम्भ होकर कवि की कला निबद्ध काव्य मे परिणति को प्राप्त करती है। प्रकारान्तर से ड्रैडेन, जानसन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा कि इस प्रकार की रचना मे विविध शक्तियों की अपेक्षा होती है, जबकि अन्य काव्यरूपो मे बहुमुखी प्रतिभा की आवश्यकता नही पड़ती।

संस्कृत के आचार्यो ने अपने समय में उपलब्ध काव्य-ग्रन्थों के आधार पर महाकाव्यो के लक्षणों का निरूपण किया था। प्राकृत और अपभ्रश के सृजनात्मक साहित्य में इन लक्षणों का पूर्ण पालन सम्भव नहीं था, क्योकि मौलिक प्रतिभा के कलाकार नवीन विशेषताओं को समाविष्ट करने में दत्तचित्त होते है, आचार्यों के अकुश से सर्वथा अनुशासित नहीं होते। हिन्दी के रीतिकाल मे केशवदास, भिखारीदास आदि आचार्यों ने काव्य-भेदो की चर्चा ही नही की थी अधिक से अधिक ध्वनि के आधार पर उत्तम मध्यम और अधम

काव्यो की चर्चा अवश्य की थी। हिन्दी की इस प्रवृत्ति के विपरीत तेलुगु के लक्षणग्रन्थो मे 'प्रतापरुद्रीयम्' के आधार पर महाकाव्य का लक्षण निरूपित किया गया। इस लक्षण में अष्टादश वर्णनो की सूची उदाहरणसहित प्रस्तुत की गयी। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि आलकारिको के एक वर्ग ने इतिहास, पुराण आदि अन्य काव्यरूपो से महाकाव्य को पृथक करने के लिए वर्णनात्मकता को भेदक लक्षण के रूप मे स्वीकार किया होगा।

हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने परिस्थिति-सापेक्ष रूप मे अपनी धार्मिक, दार्शनिक और कलापरक मान्यताओं के अनुरूप कई निबद्ध काव्यो की सृष्टि की है, जिनमे से कुछ को साहित्यिक गरिमा, आदर्श चरित्रो की अवतारणा और वस्तुसंगठन के आधार पर महाकाव्य मानना सगत है। आधुनिक काल मे तेलुगु के आलोचको के द्वारा निरूपित 'प्रबन्ध' नामक विशिष्ट काव्य-विधा और महाकाव्य मे मौलिक अन्तर नहीं है। तेलुगु के विशेष सन्दर्भ मे इस 'प्रबन्ध' को अनन्तरकालीन महाकाव्य कहा जा सकता है। विकास की प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए रामचरितमानस, पद्मावत आदि प्रबन्धकाव्यो को महा-काव्य मानना युक्तियुक्त है, यद्यपि सस्कृत महाकाव्यो से ये कृतियाँ कतिपय अशों मे भिन्न है। भिन्न-भिन्न शैली-शिल्प के तथा पृथक् भाषा-क्षेत्रों के बहुत से प्रबन्धकाव्यो को महाकाव्य मानने का आधार उनके शाश्वत लक्षण है, जो वस्तु, नेता और रस से सम्बन्धित है। देश और काल के अनुसार विकसित बाह्य लक्षणो मे स्थिरत्व नहीं होता।

मध्यदेश मे हिन्दी के साहित्यारूढ होने से पूर्व कला और साहित्य को राजकीय सरक्षण प्राप्त था। कनिष्क, हर्ष, यशोवर्मा आदि नरेशो के विद्यानुराग के फलस्वरूप सौन्दरनन्द, बुद्धचरित, कादम्बरी, हर्षचरित, गउडवहो, नैषधीय-चरित आदि उत्कृष्ट कृतियो की सृष्टि हुई थी। गुणग्राहक प्रभुओ के द्वारा साहित्य को प्रदत्त आलम्बन की यह पूर्व-परम्परा हिन्दी और तेलुगु में अनुस्यूत रही। राजाश्रय ने महाकाव्य के स्वरूप को पर्याप्त प्रभावित किया है।

हिन्दी और तेलुगु मे राजाश्रय-विमुख सन्त कवियो का एक वर्ग दृष्टि-गत होता है, जिनका उद्देश्य प्राकृत जन गुणगान नही था। तुलसी इस प्रकार के महाकवि हैं, जिनको लोकनायक, उदारचेता एव समन्वयात्मक भावना के कवि कह सकते हैं। इनका महाकाव्य मानस में व्यापक स्तर पर सगुण-निर्गुण, शिव-केशव, भक्ति-ज्ञान के साथ साथ कलासंबंधी मान्यताओ का समन्वय दिखाई पडता है। तेलुगु मे तुलसी के समान भक्तिमय महान् व्यक्तित्व कविवर पोतन्ना का है। पोतन्ना के भागवत में अतीव मधुर भक्तिकवित्व की अमूल्य निधि है। किन्तु काव्य-रूप की दृष्टि से पोतनाकृत भागवत पुराण है महाकाव्य नहीं।

हिन्दी साहित्य का उत्कर्षकाल मुसलमान शासकों के राज्यकाल के अन्तर्गत आता है। इन विदेशी नरेशो के सरक्षण मे फारसी भाषा की विदेशी शैली के अतिरिक्त भारतीय शब्दो के अच्छे-खासे प्रयोग से फारसी की एक भारतीय शैली का भी विकास हुआ। साहित्य के क्षेत्र मे आदान-प्रदान के फलस्वरूप भारतीय कथाओ के आधार पर फारसी की मसनवी शैली मे ऐतिहासिक काव्य रचे गये। कालान्तर मे यह परम्परा जायसी, कुतुबन, मझन आदि प्रेमाख्यान काव्यकर्ताओं को प्राप्त हुई। भारतीय वेदान्त और इस्लाम के समन्वय से रूपायित सूफी साधनापरक रहस्यवाद और इस रहस्यवाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का श्रेय भारत मे मुसलमानी राजसत्ता की सुस्थिरता को दिया जा सकता है। पद्मावत जैसे महाकाव्य के सृजन के लिए प्रेरक परिस्थितियो की उपर्युक्त पृष्ठभूमि उत्तरदायी है।

मुसलमानो की भाषा, सगीत, साहित्य, शिल्प, धर्म आदि का जो समन्वय इस देश की स्वकीय भाषा, सगीत, साहित्य आदि से मध्यदेश मे सपन्न हुआ, उस व्यापक पैमाने पर दक्षिण के आन्ध्र प्रान्त मे नही। यही कारण है कि पद्मावत जैसा महाकाव्य, जिसमे सूफी दार्शनिक विचारधारा को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है, इस दार्शनिक पृष्ठाधार के कारण जिसमे प्रतीकतत्व का समावेश हुआ है, जिसपर फारसी की मसनवियो का भी प्रभाव है, तेलुगु मे रचा नहीं गया। इस प्रकार हिन्दी मे सूफी प्रेमाख्यान काव्यो के सद्भाव और तेलुगु मे उनके नितान्त अभाव के लिए इन भाषा-क्षेत्रो मे विद्यमान भिन्न राजनैतिक-सास्कृतिक परिस्थितियाँ ही उत्तरदायी है।

अलाउद्दीन, औरगजेब आदि शासकों के धार्मिक विद्वेष के कारण भारतीय जनता सत्रस्त हो गई तो उस अत्याचारी शासन का विरोध राजपूतों, जाटों और मराठों ने किया था। फलस्वरूप समकालीन एव अनन्तर-कालीन कवियों ने राजसिंह, सुजानसिंह, छत्रसाल, शिवाजी आदि प्रतापी नरेशो के वीर चरित्रो की अवतारणा करते हुए ऐतिहासिक महाकाव्यों की सृष्टि की। शहबुद्दीन से डटकर मुकाबला करनेवाले पृथ्वीराज चौहान की वीरगाथा के आधार पर रासो सरीखे ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना हुई। सस्कृत, प्राकृत आदि अन्य भाषाओ मे भी ऐतिहासिक महाकाव्यो की परपरा दृष्टिगत होती है। इन महाकाव्यो में इतिहास के तथ्यो को कल्पना के अशों से मिश्रित करके चारुत्व का समावेश किया गया। आन्ध्र प्रान्त मे विजयनगर साम्राज्य के पराक्रमी प्रभुओं एव काकतीय वश के विख्यात नरेशों ने उत्तर की राजसत्ता का प्रतिरोध करके जनता को सुखमय जीवन प्रदान किया। साथ ही साहित्य

सगीत आदि विद्याओं को प्रश्रय दिया। फलत कृष्णरायविजय, सिद्धेश्वर चरित आदि ऐतिहासिक महाकाव्यो की रचना हुई।

तेलुगु भाषियो के इतिहास मे विजयनगर साम्राज्य का युग वैभवयुग रहा है। इस युग मे राजनैतिक सुस्थिरता के कारण जनजीवन सुखपूर्ण था। परिणामस्वरूप सस्कृति एवं साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। तेलुगु साहित्य के इतिहास मे इसको स्वर्णयुग माना जाता है। महाकाव्य-विधा का भी यह उत्कर्षकाल है। कलात्मक प्रौढता से युक्त त्रिविध शैलियों के महाकाव्यो का प्रचुर रूप मे सृजन इस युग की विशेपता है। हिन्दी के भक्तिकाल का भी लगभग यही समय है, जिसको हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग ने पद्मावत और रामचरितमानस के रूप मे प्रौढ और उत्कृष्ट महाकाव्य हमे प्रदान किये है। तेलुगु क्षेत्र मे राजकीय सरक्षण के कारण महाकाव्य-सृष्टि हुई तो हिन्दी मे एक सूफी सन्त और एक वैष्णव सन्त ने इस काव्य-रूप का सवर्धन किया। पृष्ठभूमि की इस भिन्नता के अनुरूप 'मनुचरित्र' आदि तेलुगु महाकाव्यो तथा रामचरितमानस आदि हिन्दी महाकाव्यो मे शैलीगत अन्तर है।

आधुनिककाल से पूर्व के युगों में साहित्य का मेरुदण्ड एव प्राणतत्त्व धर्म को कहा जा सकता है। कवियो की वृत्ति इष्टदेवता की उपासना, धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, मनन एव चिन्तन में खूब रमती थी। महाकाव्य-रचना के लिए स्वीकृत इतिवृत्त और उस इतिवृत्त के निर्वहण पर धार्मिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। जायसी ने ईश्वरोन्मुख प्रेम को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने के लिए लौकिक प्रेमाख्यान को स्वीकार करके अपने महाकाव्य मे प्रतीकतत्त्व का समावेश किया। तुलसी ने वैष्णव धर्म भावना से परिचालित होकर मानस मे आध्यात्मिक सिद्धान्तो की काव्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत की। तेलुगु मे नन्नेचोड के कुमारसभव पर कालामुख शैव सम्प्रदाय का प्रभाव वस्तुयोजना एव वर्णन-विधान मे दिखाई पड़ता है। एक आलोचक का यह कथन है कि नन्नेचोड ने कालामुख शैव मत की दार्शनिक विचारधारा को काव्यात्मक रूप देने के लिए ही इस महाकाव्य की रचना की। सम्राट श्रीकृष्णदेवराय की आमुक्तमाल्यदा में स्वीकृत इतिवृत्त वैष्णवधर्म से सबंधित है। कवि ने पात्रो के माध्यम से स्थान-स्थान पर वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन इस महाकाव्य मे किया है। कविवर धूर्जटी के महाकाव्य का आरभ 'श्रीविद्या' शब्द से हुआ है। यह शब्द शाक्त साधना मे पारिभाषिक शब्द है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यारूढ होने से पहले ही समाप्त हो चुका था। फिर भी वैष्णव धर्म में उसके कुछ अश

विद्यमान हैं। यही कारण है कि तेलुगु के 'शृंगारनैषध' 'मनुचरित्र' 'पाडुरग माहात्म्य' आदि के अन्तर्गत दशावतार-स्तोत्र में बुद्ध भगवान की भी वन्दना की गई है। हिन्दी के महाकाव्यों पर जैन धर्म का प्रभाव वर्ण्य-विषय से उल्लेखनीय नही है। परन्तु पउमचरिउ आदि जैनो के अपभ्रश काव्यो के रचना-विधान का प्रभाव मानस, पद्मावत आदि महाकाव्यो पर लक्षित किया जाता है। तेलुगु में जैन कवियों की रचनाएँ आजकल उपलब्ध नही होती, यद्यपि तेलुगु-प्रदेश पर जैन-प्रभाव इतिहास-विदो ने प्रस्तर-मूर्तियाँ आदि के आधार पर स्वीकार किया है। संभव है कि जैन काव्य धार्मिक विद्वेष के कारण नष्ट कर दिये गये हो। अत तेलुगु के महाकाव्यो पर जैन धर्म के प्रभाव के विपय मे निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता।

तेलुगु के महाकाव्यो पर सस्कृत के महाकाव्यों और शास्त्रीय मान्यताओ का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव दिखाई पडता है। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि तेलुगु का अधिकांश साहित्य राजाश्रय में सस्कृत के पण्डित कवियो के द्वारा प्रणीत हुआ है। सस्कृत साहित्य के विपुल प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त गीर्वाण वाणी में साहित्य-सृजन के भी उस वातावरण मे तेलुगु महाकाव्य का उद्भव, विकास और उत्कर्ष सम्पन्न हुआ। इधर हिन्दी क्षेत्र के कवियो ने भावधारा के लिए सस्कृत साहित्य की ओर देखा है और काव्य के बाह्य रूपों के लिए वे अपभ्रंश की ओर झुके है। सस्कृत मे शास्त्रपक्ष की प्रधानता तथा प्राकृत-अपभ्रश मे लोक-दृष्टि की प्रमुखता उल्लेखनीय विशेषताएँ है।

तेलुगु महाकाव्यो पर सस्कृत के अलावा प्राकृत का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। साहित्यदर्पण के अनुसार महाकाव्य सस्कृत मे सर्गबद्ध, प्राकृत मे आश्वासबद्ध तथा अपभ्रंश मे कुडवकबद्ध होता है। तेलुगु के अधिकाश महाकाव्य आश्वासबद्ध है। कन्नड साहित्य के काव्यो मे भी आश्वास-विभाजन है। अतः कहा जा सकता है कि तेलुगु एव कन्नड पर आश्वास-विभाजन के रूप मे प्राकृत का प्रभाव है। तेलुगु महाकाव्यो मे मात्रिक छन्दों के प्रयोग मे भी प्राकृत की प्रवृत्ति लक्षित होती है। कुकवि-निन्दा की काव्य-रूढि का जो पालन तेलुगु क्षेत्र मे किया गया है उसका भी मूलस्रोत प्राकृत साहित्य है।

आलोच्य भाषाओं के महाकाव्यो मे वस्तु प्रायः पौराणिक, ऐतिहासिक तथा लोककथात्मक प्रख्यात स्रोतो से ग्रहण की गयी है। इतिवृत्तात्मक अशो के साथ मार्मिक प्रसगो की योजना करके वस्तु को कलात्मक रूप मे विन्यस्त किया गया है। रामकथा के आधार पर रचित महाकाव्य उभय क्षेत्रो मे मिलते हैं।

हिन्दी मे रामायणेतर पुराणकथाश्रित महाकाव्यों की विरलता है और तेलुगु मे हरिवंशपुराण, मार्कण्डेयपुराण, महाभारत आदि से वस्तु ग्रहण करके महाकाव्यो की रचना की गई। अपभ्रंश के कथा-काव्यो मे विशेष प्रभावित होने के कारण पृथ्वीराजरासो, रामचरितमानस और पद्मावत मे वर्णनात्मकता की अपेक्षा आख्यान-कथन की प्रवृत्ति मुख्य है। रामचन्द्रिका मे कथा-कथन गौण और वर्णनो की योजना पर विशेष आग्रह दिखाई पडता है, जिसको संस्कृत प्रभाव मान सकते है। तेलुगु के पूर्वकालीन महाकाव्यों मे आख्यान-कथन को और अनन्तरकालीन महाकाव्यो मे वर्णनो को मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है।

दोनो क्षेत्रो के महाकाव्यो मे प्राय राम को परब्रह्म रूप मे परिकल्पित किया गया है। इसका कारण यही है कि रामकथा के साथ भक्ति भावनाओ के समावेश के उपरान्त आधुनिक भाषाओ मे इन काव्यो की सृष्टि हुई। तेलुगु के अनन्तरकालीन महाकाव्यो मे युगधर्म के अनुसार पात्र-परिकल्पना शृंगाररस की दृष्टि से की गयी। स्वल्प कथानक और विस्तृत वर्णनो के कारण जीवन के व्यापक पक्ष मे चरित्र-चित्रण नही हो सका। हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यो मे आध्यात्मिक प्रेमसिद्धान्त के प्रतिपादन के फलस्वरूप प्रतीकात्मक दृष्टि ने चरित्रचित्रण को नियन्त्रित किया है। तुलसी, पिंगलि सूरना आदि प्रतिभाशाली कवियो की कृतियों मे सजीव पात्रकल्पना दृष्टिगत होती है।

अलंकार-प्रयोग के विषय मे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दोनो भाषाओ के महाकाव्य-स्रष्टाओ की कल्पना-शक्ति वैविध्यपूर्ण और उच्च कोटि की है। जीवन के विविध क्षेत्रो से गृहीत अप्रस्तुत कवियों के व्यापक अनुभव और पारदर्शी काव्य-प्रतिभा को प्रकट करते है। सास्कृतिक पृष्ठभूमि की समानता के कारण कवि-समय-सिद्ध उपमान दोनो क्षेत्रो मे समान है। कुछ काव्यो मे सचेष्ट प्रयास के फलस्वरूप और कुछ मे अनायास शब्दालकारों का प्रयोग हुआ है। दोनों स्थितियो मे इस परिणति के लिए उत्तरदायी शब्द-साधना प्रकट होती है। संस्कृत साहित्य के मूलस्रोत से अप्रस्तुतो को ग्रहण किये जाने पर भी शिल्प की दृष्टि से हिन्दी और तेलुगु के महाकाव्यो मे एक अन्तर है। यह अन्तर शास्त्रीयता और लोकोन्मुखता का अन्तर है।

तेलुगु के महाकाव्यो मे प्राय शृंगाररस के प्रसंग प्रभूत मात्रा मे संयोजित हैं। अंगीरस के रूप मे अधिकांश महाकाव्यों मे शृंगार सुप्रतिष्ठित है। इस प्रवृत्ति का कारण तत्कालीन नरेशों का भोगवादी दृष्टिकोण है और दूसरा कारण संस्कृत महाकाव्यो की परम्परा है। मानस मे व्यंजित शृंगार अत्यन्त

पवित्र है। पद्मावत, रासो, अपभ्रंश के चरितकाव्य आदि के अनावृत शृंगार से यह भिन्न है। हिन्दी के महाकाव्य-साहित्य मे वीररसात्मक स्थल अपेक्षाकृत अधिक है, यद्यपि तेलुगु मे वीररस के प्रसगो का अभाव नही है। दोनो क्षेत्रो के महाकाव्य-वाङ्मय मे नवरसो के अतिरिक्त रसाभास और मिश्रित रसो के उदाहरण भी प्राप्त होते है।

प्रसगोचित रूप मे छन्दविधान की प्रवृत्ति हिन्दी एवं तेलुगु मे समान है। हिन्दी महाकाव्यो मे प्राचुर्य की दृष्टि से वर्णिक छन्दो की अपेक्षा मात्रिक छन्द अधिक है। हिन्दी की तुलना मे तेलुगु क्षेत्र मे वर्णिक छन्दो का प्रयोग अधिक है। तेलुगु महाकाव्यो मे बहुधा व्यवहृत 'कदमु' हिन्दी मे प्रयुक्त गाथा छन्द से साम्य रखता है, क्योंकि इन दोनों छन्दो का मूलस्रोत प्राकृत साहित्य है। हिन्दी महाकाव्यो मे मात्रिक छन्दो की अधिकता और उनकी तुकान्तता अपभ्रंश की लोकोन्मुखी प्रवृत्ति का द्योतक है। तेलुगु महाकाव्यगत श्रुतिरजकता यतिनियम एव प्रासनियम के कारण है। तेलुगु के ये नियम अन्य साहित्यो मे दिखाई नही पडते।

हिन्दी मे अपभ्रंश काव्यों की भाषा-विषयक प्रवृत्तियो का पालन हुआ है। फिर भी भक्ति आन्दोलन आदि सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दी मे अपभ्रंश की अपेक्षा तत्सम शब्दो की मात्रा बढती गयी। तेलुगु के महाकाव्यो मे कवियो की व्यक्तित्व-भिन्नता के बावजूद भाषा की सरचना एक है। हिन्दी-क्षेत्र मे बोली-वैविध्य के कारण सरचना की एकता सभव नही थी। हिन्दी मे प्रचुर रूप मे तद्भवात्मक शैली प्रचलित है तो तेलुगु मे सस्कृत-गर्भित भाषा-शैली का प्राचुर्य है। कोमल प्रसंगो मे श्रवण-सुखद भाषा तथा उद्धत प्रसगो में कठोर वर्णों की योजना की प्रवृत्ति दोनो क्षेत्रो के महाकाव्यो मे समान है।

आरम्भ से मध्यकाल तक की समयावधि मे हिन्दी और तेलुगु के पृथक् भाषा-क्षेत्रो मे विकसित महाकाव्य-विधा का इतिहास तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत हुआ है। इतिहास मे प्रमुख घटनाओ, प्रधान व्यक्तियो एव मुख्य रचनाओ के आधार पर प्रवृत्तियो की व्याख्या की जाती है, विकास-क्रम पर ध्यान केन्द्रित रहता है और कार्य-कारण सम्बन्ध का अन्वेषण होता है। हर व्यक्ति को समा-विष्ट करने का प्रयत्न नही होता। इस अध्ययन मे भी सभी कवियो और रचनाओ की चर्चा के लिए अवकाश नहीं मिलना स्वाभाविक था। कवियो की व्यक्तिगत रुचि और साहित्य-सृजन की प्रेरक परिस्थितियों में जो अन्तर रहा है, वही आलोच्य महाकाव्यो के स्वरूप मे प्रतिफलित हुआ है। साम्य के लिए भारत की सास्कृतिक एकता उत्तरदायी है। इस प्रकार साम्य और अन्तर

यादृच्छिक नही है। आगे चलकर पाश्चात्य शिक्षा-सस्कारो के प्रभाव से भारतीय महाकाव्य की धारा में एक मोड़ उपस्थित हुआ जो स्पष्ट रूप से बीसवी शताब्दी के महाकाव्यो मे दृष्टिगत हुआ, जैसे छायावादी युग मे प्रगीत-तत्व का अधिक समावेश आदि। आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता, बुद्धिवाद, गद्य की प्रचुरता और मनुष्य के पास समयाभाव ऐसे कारण हैं, जिनको महत्त्व देते हुए वर्तमान युग को महाकाव्य-रचना के लिए उपयुक्त नही माना जाता। परिवर्तित परिस्थितियो से महाकाव्य का रूप अवश्य प्रभावित होगा, किन्तु इस काव्य-विधा की रचना समाप्त नही होगी।